राम-परम्परा के नाटक और प्रकृति

भास, भवभूति, मुरारि, शक्तिभद्र, हनुमान्, राजशेखर, जयदेव प्रभृति नाटककार



डॉ० श्रीमती दुर्गेश सिंहल

प्रस्तुत ग्रन्थ के महत्त्वपूर्ण बिन्दु

* 'प्रकृति' शब्द का व्याकरण, कोश, साहित्य, काव्यशास्त्र आदि की दृष्टि से अर्थ एवं महत्त्व।
* भारतीय सस्कृति की दृष्टि से श्रीराम का महत्त्व।
* राम-परम्परा के प्रमुख नाटकों का परिचय।
* कवि-हृदय का प्राकृतिक-पदार्थों वन, नदी, पर्वत आदि के प्रति सहज आकर्षण का कारण बतलाते हुऐ प्रकृति का आलम्बन रूप मे वर्णन।
* प्राणिमात्र के मनोभावो को स्वतः प्रभावित करने वाले प्रकृति के उद्दीपनात्मक प्रसगो का चित्रण।
* कवियो द्वारा नाटको मे कथावस्तु एव पात्रो के चरित्र के अनुकूल सगृहीत विविध प्राकृतिक उपमाओं का प्रदर्शन।
* प्रकृतिगत मानवीय भावों, चेष्टाओ, व्यापारो का विश्लेषण।
* रामाश्रित नाटको मे प्राप्त प्राकृतिक स्थलों का भौगोलिक परिचय।

राम-परम्परा के नाटक और प्रकृति

भास, भवभूति, मुरारि, शक्तिभद्र, हनुमान्,
राजशेखर, जयदेव प्रभृति नाटककार

डॉ (श्रीमती) दुर्गेश सिहल

पेनमैन पब्लिशर्स
दिल्ली

ISBN 81-85504-37-7

प्रथम सस्करण 2002
आवरण त्रिभुवनकुमार धीरज

भारत में मुद्रित

प्रकाशक
जवाहरलाल गुप्त, पीजीडीबीपी (सम्पा)
कृते पेनमैन पब्लिशर्स
7309/5, प्रेमनगर, शक्तिनगर,
दिल्ली-110007, दूरभाष (011) 3980319

अक्षर सयोजक
विशाल कम्प्यूटर्स
ए-20, श्रीनगर कालोनी, दिल्ली-110052

मुद्रक
तरुण आफ्सेट प्रेस, मौजपुर, दिल्ली

RĀMA-PARAMPARĀ KE NĀṬAKA AUR PRAKRTI
By Sinhal, Durgesh (Dr)

Rs 395/-

पुरोवाक्

आज के भौतिकवादी युग में मानव-चिन्तन मुख्यत अर्थ-प्रधान है। विद्या भी अर्थकारी हो गयी है। सस्कृत जैसी दिव्य भाषा को समाज ने कर्म-काण्ड, पूजा-पाठ की भाषा मान लिया है, उसे मूढजन तो मृत-भाषा का नाम भी देने लगे हैं, जिसके कारण ममाज सस्कार-विहीन, अनैतिक तथा दिग्भ्रमित होता चला जा रहा है। मेरी माता जी नियमित रूप से धार्मिक-आध्यात्मिक ग्रन्थों को पढती रही हैं। गीता प्रेस की कल्याण पत्रिका से वे बहुत प्रभावित रही हैं' परन्तु सस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव में ग्रन्थों में उद्धृत सस्कृत श्लोक आदि को न समझने के कारण वे दु खी हो जाती थीं। उन्होंने ग्रन्थों में पढे विविध कथा-प्रसगों को हमें यथासमय सुनाया तथा उनके माध्यम से हमें सुसस्कार दिए। साथ ही प्रारम्भ से ही सस्कृत भाषा के प्रति मेरी रुचि को जाग्रत किया। मैंने अपनी स्नातक परीक्षा सस्कृत विषय के साथ उत्तीर्ण की। सौभाग्य से मेरा विवाह सस्कृत के प्राध्यापक डॉ दिनेश कुमार सिहल से हो गया, जिन्होंने मेरी सस्कृत-रुचि को और अधिक प्रदीप्त किया, इस कारण मैंने स्नातकोत्तर उपाधि भी सस्कृत विषय में प्राप्त की। इसके साथ ही विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग द्वारा Natıonal Level Test (for junıor research fellowshıp and elıgıblıty for lecurershıp) किया और शोध करने का निश्चय किया।

परम श्रद्धेय गुरुवर डॉ० देवीचन्द्र शर्मा जी के श्रीचरणों में जाकर मैंने अपना शोध-विषयक विचार प्रस्तुत किया, जिन्होंने सहमति प्रदान कर मुझ पर अपनी कृपा-रस की वर्षा कर दी। मैंने अपने को धन्य माना। उन्होंने मेरी इच्छा के अनुकूल ही 'रामाश्रित नाटकों में प्रकृति-चित्रण' विषय पर शोध-कार्य करने का परामर्श दिया। मैंने उनके निर्देशानुसार कार्य का शुभारम्भ किया और सुयोगवश आज उसको पुस्तकाकार प्राप्त हो गया है।

शोधकार्य करते हुये विषय का चिन्तन-मनन करना सुकर एव सरल है, शोध-विषयक सामग्री का सकलन एव अनुकूल वातावरण की प्राप्ति दुष्कर एव कठिन। मेरे सुयोग्य पति डॉ० दिनेश कुमार सिहल ने जहॉ एक ओर विषय-सामग्री का सकलन कराया, वहीं गृहस्थ कार्यो में पूर्ण सहयोग देते हुए अध्ययन-अनुकूल परिवेश प्रदान किया। एतदर्थ उनका आभार प्रकट करना शब्दों द्वारा सम्भव नहीं है।

विद्वज्जनों के सहज-सुलभ सान्निध्य ने मेरे कार्य को गति प्रदान करने में उर्जा की भूमिका का निर्वाह किया है। मैं आभारी हूॅ प्रो० डॉ० धर्मचन्द्र जैन (प्राच्य विद्या सस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र) की, जिनके समय-समय पर प्राप्त शोध-विषयक परामर्शो ने मेरी ज्ञान-निधि की अभिवृद्धि की है। माननीया डॉ० किरण कला जैन (प्राचार्या, महिला महाविद्यालय, पूण्डरी) के प्रति आभार अभिव्यक्त करना अपना परम कर्तव्य समझती हूॅ जिनकी सत्प्रेरणा ने मुझे सतत कर्त्तव्य-पथ पर चलते रहने के लिये सजग रखा। डॉ० भीम सिह (रीडर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र) के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन करते हुये मन प्रसन्न है जिन्होंने समुचित दिग्दर्शन से मेरा शोध-मार्ग प्रशस्त किया।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा (सस्कृत प्रवक्ता, नेहरू राष्ट्रीय इन्टर कालेज, मगलौर टाऊन, सहारनपुर) के प्रति भी आभार अपेक्षित है जिनसे मुझे तीन आधुनिक नाटक अद्भुतदर्पण, पौलस्त्यवध तथा प्रसन्नहनुमन्नाटक प्राप्त हुए हैं।

शिष्य की ज्ञान-शिखा का प्रदीपन गुरु के शुभाशीर्वादात्मक स्नेह के बिना सम्भव नहीं है। परमादरणीय गुरुवर डॉ० देवीचन्द्र शर्मा के शुभाशीर्वाद के फलस्वरूप ही शोध-प्रबन्ध का यह मूर्तिमान् ग्रन्थ-रूप हस्तस्थ है। उनका कुशल-निर्देशन एव अनवरत उद्‌बोधन यदि मुझे प्राप्त न होता तो अल्पज्ञा मैं इतना दुष्कर कार्य न कर पाती। उनके प्रति आभार प्रदर्शन हेतु शब्द कहॉ से लाऊॅ?

अन्तत आभार व्यक्त करना चाहती हूॅ श्री जवाहरलाल गुप्त, पैनमैन पब्लिशर्स का, जिन्होंने मेरे इस ग्रन्थ को-प्रकाशित करने का गुरुतर भार वहन कर विद्वान् रसिकजनों तक पहुॅचाने का सत्प्रयास किया।

दुर्गेश सिहल

विषयानुक्रमणिका

संकेत-सूची

अ द	अद्भुतदर्पण
अभि	अभिषेकनाटक
अभि शा	अभिज्ञानशाकुन्तल
अ रा	अनर्घराघव
आ चू	आश्चर्यचूडामणि
उ च	उत्तररामचरित
का प्र	काव्यप्रकाश
का मी	काव्यमीमासा
कुन्द	कुन्दमाला
पौ व	पौलस्त्यवध
प्रति	प्रतिमानाटक
प्र रा	प्रसन्नराघव
प्र हनु	प्रसन्नहनुमन्नाटक
बा रा	बालरामायण
भा पु	भागवतपुराण
म च	महावीरचरित
मनु	मनुस्मृति
म.पु	मत्स्यपुराण
म भा	महाभारत
वा रा	वाल्मीकिरामायण
वि पु	विष्णुपुराण
स.ना भौ.	सस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश
सा.दा	साहित्यदर्पण
हनु ना.	हनुमन्नाटक

विषय-प्रवेश

मनोऽभिरामं नयनाभिरामं, वचोऽभिरामं श्रवणाभिरामम्।
सदाभिरामं सतताभिरामं, वन्दे सदा दाशरथिं च रामम्।।

(आनन्दरामायण)

लोकाभिराम भगवान् श्रीराम मन को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट करने वाले हैं, नयनों को अपूर्व आनन्द प्रदान करने वाले हैं, उनके नाम का उच्चारण वाणी को मधुमय बना देता है तथा श्रवण कानों को रुचिकर लगता है। सदा-सर्वदा सर्वरूपेण सुन्दर, सुखद, मनोहर, मोहक, सर्वजन-वन्दनीय, रघुवश-तिलक श्रीराम ने भारत-भू पर अवतरित होकर मानव-मात्र पर उपकार किया है। सम्पूर्ण भारतीय सस्कृति रामानुप्राणित है। राम का उदात्त चरित एव आदर्श प्रत्येक भारतीय के लिये अनुकरणीय है।

भारत की पावन भूमि पर जन्म लेने के साथ ही मानव का राम से सहज नाता जुड जाता है। सौभाग्य से मेरा जन्म भी सुसस्कृत रामनिष्ठ परिवार में हुआ। बाल्यकाल से लेकर आज तक सदा से राम की कथा-श्रवण का अवसर मिला है। राम लीलाए देखी हैं, दूरदर्शन पर रामायण धारावाहिक देखा है। विविध कक्षाओं के पाठ्यक्रमों में रघुवश एव रामायण के अश भी पढे हैं। एम०ए० के पाठ्यक्रम में भवभूति के 'उत्तररामचरित' को पढा और समझा है। उसमें कवि ने राम के उत्तरचरित को दिखाकर पत्थरों को भी रुला दिया है। इस नाटक में भवभूति ने प्रकृति का जिस रूप में वर्णन किया है, वह सहृदय के हृदय को छूने में सहज ही समर्थ है।

उत्तररामचरित के पठन-अध्ययन के साथ ही कवि के प्रकृति-चित्रण ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। मुझे उक्त नाटक की प्रकृति एवं राम में आत्मीय भाव का अनुभव हुआ तथा मन में विचार आया कि श्रीराम का तो सम्पूर्ण जीवन ही प्रकृति के साथ एकाकार रहा है। युवावस्था में विश्वामित्र के साथ राम उनके आश्रम चले जाते हैं तथा वनवास की दीर्घ-अवधि वे वन, पर्वत, नदियों के सानिध्य में व्यतीत करते हैं। अत रामकथाश्रित सभी नाटकों

में प्रकृति का वर्णन निश्चित ही हृदयस्पर्शी होगा। इसके साथ ही उक्त विषय पर शोध करने का विचार अकुरित हुआ।

श्रीराम के जीवनचरित को पूर्णत सजीव रूप में चित्रित करने वाला काव्य आदिकवि वाल्मीकि विरचित रामायण है। उसे उपजीव्य बनाकर भास, कालिदास, दिङ्नाग, भवभूति आदि परवर्त्ती कवियों ने अनेक दृश्य एव श्रव्य काव्यों की रचना की है। रामकथा पर आधारित शताधिक रूपकों की रचना हो चुकी है, जिनमें बहुत से नाटक हिन्दी-अनुवाद, व्याख्या आदि के साथ उपलब्ध हैं, कुछ मात्र मूल रूप में प्रकाशित हैं तथा कुछ अप्रकाशित भी हैं।

रामकथाश्रित बहुत से नाटकों पर साहित्यिक, सामाजिक, सास्कृतिक तथा पात्रादि की दृष्टि से विविध विश्वविद्यालयों में स्वतत्र-रूपेण तुलनात्मक अथवा समीक्षात्मक अध्ययन हो चुका है। उनके शोध-ग्रन्थों में इन नाटकों में चित्रित प्रकृति को अशत ही स्थान मिला है जिससे उनके रचनाकारों के प्रकृति-चित्रण का सूक्ष्म एव गम्भीर विवेचन नहीं हो सका है, अत मुझे इन नाटकों की प्रकृति-चित्रण का सूक्ष्म एव व्यापक अध्ययन कर उसको शोध कार्य के रूप में प्रस्तुत करने की इच्छा ही नहीं, अपितु आवश्यकता भी प्रतीत हुई और इसीलिये मैंने 'रामाश्रित नाटकों में प्रकृति-चित्रण' विषय को अपने शोध कार्य के लिये चुना।

रामाश्रित नाटकों की एक सुदीर्घ परम्परा है। सस्कृत साहित्य के ऐतिहासिक ग्रन्थों में प्रकाशित-अप्रकाशित लगभग २०० नाटकों का उल्लेख मिलता है। सभी नाटकों को उपलब्ध करना तथा उन पर शोध करना सीमित काल में असम्भव है, अत मैंने नाट्य-साहित्य में भवभूति से पूर्ववर्ती, भवभूति एव भवभूति के उत्तरवर्ती तथा आधुनिक कुछ प्रतिनिधि रामाश्रित नाटकों का शोध के लिये चयन किया है, क्योंकि इन नाटकों में प्रकृति के वैविध्य के साथ प्रस्तुतीकरण में भी वैभिन्न्य प्रतीत होता है। आलोच्य नाटकों की सूची प्रस्तुत है–

क. भवभूति के पूर्ववर्ती नाटक

१. महाकवि भास रचित **प्रतिमानाटक**

२. महाकवि भास रचित **अभिषेकनाटक**

३ महाकवि दिङ्नाग रचित **कुन्दमालानाटक**

ख. भवभूति एवं भवभूति के उत्तरवर्ती नाटक

४ महाकवि भवभूति रचित **महावीरचरित**

५ महाकवि भवभूति रचित **उत्तररामचरित**

६ महाकवि मुरारि रचित **अनर्घराघव**

७ महाकवि शक्तिभद्र रचित **आश्चर्यचूड़ामणि**

८ महाकवि दामोदर मिश्र रचित **अनर्घराघव**

९ महाकवि राजशेखर रचित **बालरामायण**

१० महाकवि जयेदव रचित **प्रसन्नराघव**

ग. आधुनिक नाटक

११ महाकवि महादेव रचित **अद्‌भुतदर्पण**

१२ महाकवि लक्ष्मणसूरि रचित **पौलस्त्यवध**

१३ महाकवि दयालुविश्वेश्वररचित **प्रसन्नहनुमन्नाटक**

प्रस्तुत ग्रन्थ को अध्ययन की दृष्टि से सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम व्याकरण, कोश एव साहित्य में प्रयोगादि की दृष्टि से 'प्रकृति' शब्द के अर्थ को स्पष्ट किया गया है तथा शोध की दृष्टि से प्रकृति का अभिप्राय बतलाया गया है। इसके साथ ही प्रकृति का परमतत्त्व एव मानव से सम्बन्ध दिखलाते हुए सस्कृत वाङ्मय–वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत, महाकाव्य, नाटक आदि में वर्णित प्रकृति को किञ्चित् मात्र प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के अन्त में काव्यशास्त्रीय दृष्टि से साहित्य में प्रकृति-चित्रण की आवश्यकता एव महत्त्व को प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत श्रीराम के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन करते हुए तदाश्रित आलोच्य नाटकों के रचयिताओं का सक्षिप्त परिचय, नाटक की अकानुसार कथावस्तु तथा मौलिकता आदि का वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय में आलोच्य रामाश्रित नाटकों में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण प्रस्तुत है। इसमें कवि-हृदय का प्राकृतिक पदार्थो-वन, नदी, पर्वत आदि के प्रति सहज आकर्षण का कारण बतलाते हुये प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन क्या होता है? इस पर प्रकाश डाला गया है। तदुपरान्त कवियों द्वारा चित्रित प्रकृति के अगों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में आलोच्य रामाश्रित नाटकों में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण प्रस्तुत है। इसमें बतलाया गया है कि प्राणी मात्र के मनोभावों को प्राकृतिक-दृश्य स्वत प्रभावित करते हैं, यथावसर भावनाओं को उद्दीप्त करते हैं। तदनन्तर नाटककारों द्वारा वर्णित प्रकृति के उद्दीपनात्मक प्रसगों को प्रस्तुत किया गया है।

पञ्चम अध्याय में आलोच्य रामाश्रित नाटकों में प्रकृति का उपमान के रूप में चित्रण प्रस्तुत है। यहाँ कवियों द्वारा नाटकों में कथावस्तु एव पात्रों के चरित्र के अनुकूल सगृहीत विविध प्राकृतिक उपमानों को प्रदर्शित किया गया है।

षष्ठ अध्याय में आलोच्य रामाश्रित नाटकों में प्रकृतिगत मानवीयों भावों, चेष्टाओं, व्यापारों का विश्लेषण किया गया है।

सप्तम अध्याय में आलोच्य रामाश्रित नाटकों में प्राप्त प्राकृतिक स्थलों का भौगोलिक परिचय द्रष्टव्य है। इसमें धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अयोध्या, काशी आदि को भी सम्मिलित किया गया है। मैंने भगवान् श्रीराम के चरणकमलों के स्पर्श से पवित्र अयोध्या, श्रीराम-जन्मभूमि, नन्दिग्राम, प्रयाग, सगम, भरद्वाज-आश्रम, वाल्मीकि-आश्रम, चित्रकूट में मन्दाकिनी नदी, स्फटिक शिला, अनसूया-आश्रम, गुप्त-गोदावरी, भरतकूप आदि स्थलों के दर्शन किए हैं तथा पुण्य-लाभ प्राप्त किया है।

इसके पश्चात् उपसहार है जिसमें सभी अध्यायों के विषय का सक्षेपण करते हुये तुलनात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है और अन्त में सदर्भ-पुस्तकों की सूची दी गयी है।

आशा करती हूँ कि प्रस्तुत ग्रन्थ सस्कृत के सुविज्ञ पाठकों, राम-भक्तों तथा प्रकृति प्रेमी विद्वज्जनों का ज्ञानवर्धन करने में समर्थ होगा।

प्रथम अध्याय

प्रकृति एवं साहित्य

(क) प्रकृति शब्द से तात्पर्य

सस्कृत साहित्य में 'प्रकृति' शब्द बहुत ही व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन दर्शन-ग्रन्थों से लेकर आज तक के उपलब्ध साहित्य में प्रकृति शब्द का प्रयोग अर्थ-वैभिन्न्य के साथ हुआ है। वाड्मय में प्राप्त सभी अर्थो को कोशकारों ने अपने कोशों में सगृहीत किया है। प्रकृति शब्द का अर्थ समझने के लिए कोश, काव्य आदि के आधार पर इसका विवेचन यहाँ अपेक्षित है-

राजा राधाकान्तदेव बहादुर ने अपने 'शब्दकल्पद्रुम' नामक शब्दकोष में सर्वप्रथम प्रकृति शब्द की व्युत्पत्ति की है- "प्रक्रियते कार्यादिकमनया इति (प्र+कृ+क्तिन्)" अर्थात् जिसके द्वारा कार्य आदि सम्पन्न किए जाते हैं, वह प्रकृति है। इसके साथ उन्होंने विविध कोशों एव ग्रन्थों के उद्धरण देते हुए 'प्रकृति' शब्द के निम्नलिखित अर्थ प्रस्तुत किए हैं–[१]

१ स्वभाव। यथा आहार, औषध और द्रव्यों का स्वाभाविक गुरु आदि मूल गुण या धर्म।[२]

२ राज्य के सविधायी सात तत्त्व या अग–राजा, अमात्य (मन्त्री), पुर (दुर्ग), राष्ट्र (राज्य), कोश, दण्ड (सेना), मित्रराष्ट्र।[३]

३ पुरवासी जन।[४]

४ स्वरूपावस्था अर्थात् स्वाभाविक स्थिति अथवा दशा। यथा-कुत्ते की पूँछ बारह वर्षो तक मालिश करने, रगडने एव रस्सी से लपेटने पर भी छोडे जाने पर अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो जाती है।[५]

५. 'प्रकर्षेण सृष्ट्यादिं करोति (प्र+कृ+कर्तरि क्तिच्) अर्थात् जो सृष्टि आदि का विस्तार करती है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर प्रकृति का अर्थ "भगवान् की माया नामक शक्ति" किया गया है। यह "परा' तथा "अपरा"

भेद से दो प्रकार की है। गीता में भगवान् कृष्ण स्वय अर्जुन से कहते हैं-

'भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।
अपरेयमितस्त्वन्या प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।[६]

यह प्रकृति सत्त्व, रज एव तम गुणों की साम्यावस्था है। इसे प्रधान तथा अव्यक्त भी कहते हैं।[७]

ईश्वर की यह प्रकृति 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, राधा, गगा, तुलसी, मनसा, षष्ठी, मगलचण्डी, काली तथा वसुन्धरा आदि रूपों में अनेक प्रकार की कही गयी है।[८]

उपर्युक्त अर्थो के अतिरिक्त शब्दकोशों में प्रकृति के परमात्मा, पञ्चभूत, करण, शिल्पी, योनि, जन्तु, नैसर्गिक स्वभाव, रूप, आकृति, वशपरम्परा, मूल-स्रोत, स्त्री, माता, चराचर-ससार, छन्द विशेष का नाम, प्रत्यय से पूर्व धातु एव नाम आदि अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं।[९]

सस्कृत कवियों ने अपनी रचनाओं में उपर्युक्त अर्थो में 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग किया है। यथा-महाकवि भास से 'प्रतिमानाटक' में 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग प्रजा-पुरवासी-अमात्यादि अर्थ में,[१०] भवभूति ने 'महावीरचरित' में प्रजा-अमात्यादि,[११] नैसर्गिक स्वभाव,[१२] त्रिगुणत्मिका प्रकृति[१३] तथा 'उत्तररामचरित' में स्वाभाविक रूप या गुण[१४], स्वभाव[१५], मूल प्रधान[१६] आदि अर्थ में, जयदेव ने 'प्रसन्नराघव'[१७] में तथा दिङ्नाग ने 'कुन्दमाला'[१८] में स्वभाव अर्थ में, शक्तिभद्र ने 'आश्चर्यचूडामणि' में प्रजा-अमात्य-सुहृद्,[१९] स्वरूप[२०] तथा स्वभाव[२१] अर्थ में किया है।

परन्तु आज जब किसी काव्य-नाटक आदि में प्रकृति के अध्ययन की बात आती है तो उपर्युक्त सभी कोष-काव्यगत अर्थो से भिन्न 'प्रकृति' का अर्थ होता है–मानवभिन्न दृश्यमान जगत् के तत्त्व–पर्वत, नदी, वन, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि। मानक-हिन्दी-कोश में प्रकृति का उक्त प्रचलित अर्थ इन शब्दों में दिया गया है- "वह सारा दृश्य जगत् जिससे हमें पशु-पक्षी, वनस्पतियाँ आदि अपने मौलिक या स्वाभाविक रूप में दिखाई देती है"।[२२] हिन्दी के आधुनिक कवियों एव आलोचकों ने 'प्रकृति' शब्द का यही अर्थ ग्रहण किया है। प अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध' ने प्रकृति को

नारी के रूप में देखा है। 'वैदही वनवास' नामक काव्य में तपस्विनी सीता के आश्रम का वर्णन करते हुए वे प्रकृति-नारी के विषय में कहते हैं-

"प्रकृति का नीलाम्बर उतरा, श्वेत साड़ी उसने पाई।
हटा घन घूँघट शरदाभा, विहँसती मही में थी आई।।"[२३]

मैथिलीशरण गुप्त ने भी हरिऔध के समान ही प्रकृति को देखा है। यथा "पञ्चवटी" काव्य में प्रभात-वर्णन में-

'इसी समय पौ फटी पूर्व में, पलटा प्रकृति पटी का रंग।
किरण कटकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अग।।[२४]

इसी प्रकार जयशकर प्रसाद,[२५] सुमित्रानन्दन पन्त[२६] आदि कवियों ने 'प्रकृति' शब्द को उपर्युक्त अर्थ में ग्रहण किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में वर्णन की दृष्टि से प्रकृति के दो रूप बताए हैं- १ मनुष्य की अन्त प्रकृति २ मनुष्येतर बाह्य प्रकृति। 'कविता क्या है?' निबन्ध में वे लिखते हैं- "हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रूपों एव व्यापारों को भावना के सामने लाकर कविता बाह्य-प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्त प्रकृति का सामजस्य घटित करती हुई उसके भावात्मक सत्ता के प्रकार का प्रसार करती है।"[२७] मनुष्येतर बाह्य-प्रकृति से प शुक्ल का अभिप्राय नदी, पर्वत आदि से ही है।[२८]

प हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसी अर्थ में 'प्रकृति' शब्द को ग्रहण किया है। महाकवि कालिदास की रचनाओं का साहित्यिक विवेचन करते हुए 'कालिदास की लालित्य योजना' ग्रन्थ में एक स्थान पर वे लिखते हैं- "मौटे तौर पर दो प्रकार की वस्तुओं को हम सुन्दर कहते हैं, एक तो वह जो प्रकृति -प्रदत्त है। दूसरी वह, जो मनुष्य द्वारा निर्मित है और हमें आनन्द देती है। प्रथम कोटि में नदी, पहाड, जगल, फल, फूल, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि आते हैं और दूसरी कोटि की सुन्दर वस्तुओं में मूर्ति, चित्र, सगीत, काव्य आदि आते हैं।"[२९]

डॉ किरण कुमारी गुप्ता ने अपने शोध-ग्रन्थ 'हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण' में प्रकृति का अर्थ इस प्रकार किया है- "प्रकृति या प्राकृतिक का अर्थ है स्वाभाविक, अत प्रकृति के अन्तर्गत वे ही वस्तुए आती है, जिन्हें मानव के हाथों ने सजाया या सम्भाला नहीं है और जो स्वय ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती हैं।"[३०]

डॉ गुप्ता द्वारा दिया गया अर्थ बहुत ही प्रासगिक है। वस्तुत दृश्यमान जगत् के प्राकृतिक पदार्थ मानव-निर्मित अथवा सशोधित पदार्थों की अपेक्षा अधिक हृदय-स्पर्शी होते हैं। कालिदास द्वारा शकुन्तला के नैसर्गिक सौन्दर्य का अकन इस तथ्य की पुष्टि करता है-

"शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः।।[३१]

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर यहॉ यह कहना अभीष्ट है कि प्रस्तुत शोधकार्य में 'प्रकृति' से हमारा अभिप्राय लोक-व्यवहार में प्रचलित अर्थ से ही है। वैसे भी शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ की अपेक्षा प्रचलित अर्थ ही अधिक ग्राह्य होता है।[३२]

(ख) प्रकृति एवं परमतत्त्व

भारतीय दर्शन के अनुसार परम-तत्त्व ब्रह्म से यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् आविर्भूत हुआ है। उसके सकल्प करने मात्र से ही तेज की उत्पत्ति हुई, तत्पश्चात् क्रमश तेज से जल, जल से अन्न पैदा हुआ है। इनके सम्पिण्डित अशों से तीन प्रकार के जीवों की बीज सृष्टि-अण्डज, जीवज और उद्भिज्ज पैदा हुई। इस सृष्टि में उसने जीव का सचार करके नाम और रूप दिए।[३३] इस प्रकार वह ब्रह्म अपनी माया शक्ति से सृष्टि की रचना करता है।[३४] उसकी यह माया 'प्रकृति' नाम से भी अभिहित है।[३५] साख्यदर्शन ने परम-तत्त्व को पुरुष कहा है तथा प्रकृति को शब्दश स्वीकार किया है। त्रिगुणात्मिका इस प्रकृति के गुणों की विषमावस्था को प्राप्त करने से २३ तत्त्वों की सृष्टि होती है- महत् (बुद्धि), महत् से अहकार, अहकार से मन, पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ (नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा), पॉच कर्मेन्द्रियॉ (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ), पॉच तन्मात्राए-गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द तथा इन तन्मात्राओं से क्रमश पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि पञ्चमहाभूत।[३६]

इससे स्पष्ट है कि दर्शन प्रकृति को जिस रूप में स्वीकार करता है, उसमें परोक्षत लोक-सम्मत अर्थ भी समाविष्ट ही है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने दार्शनिक चिन्तन के आधार पर प्रकृति में परमतत्त्व के दर्शन किए हैं। वे कहते हैं-

"When I bring to you coloured toys,
my child, I understand why there is such

a play of colours on clouds, on water,
and why flowers are painted in tints "[37]

इस परमतत्त्व को सृष्टि का सर्जनकर्ता, पालनकर्ता एव सहारकर्ता के रूप में क्रमश ब्रह्मा, विष्णु एव शिव कहा जाता है।[३८] इन तीनों देवताओं का प्राकृतिक पदार्थो से सहज सम्बन्ध है। ब्रह्मा का तो जन्म ही कमल से हुआ है, अत उन्हें 'पद्मयोनि' 'कमलासन' आदि कहा जाता है।[३९] हस को अपना वाहन बनाने से ये 'हसरथ', 'हसवाहन' कहलाते हैं।[४०] विष्णु जल पर निवास करने से 'नारायण' कहलाते हैं।[४१] वे हाथों में शख-कमल तथा वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि धारण करते हैं,[४२] शेषनाग उनकी शय्या[४३] तथा गरुड वाहन है।[४४] भगवान् विष्णु ने तो पशु-पक्षी के रूप में अवतार भी लिया है यथा पृथ्वी-उद्धार के लिए वराहावतार, वेदोद्धार के लिये मत्स्यावतार, क्षीर सागर के मथने के समय कूर्मावतार, देवताओं का भय दूर करने के लिए नृसिहावतार, नारदमुनि के प्रेमभाव से प्रसन्न होकर हसावतार।[४५]

शिव हिमालय पर वास करते हैं, चन्द्र एव गगा को सिर पर धारण करते हैं, सर्प उनके भूषण हैं, बैल उनका वाहन है, मृगचर्म उनका वेष है।[४६] उन्हें जल, अग्नि, यज्ञकर्ता, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी और वायु-इन आठ रूपों में विद्यमान माना जाता है।[४७] गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी दिव्य-विभूतियों में सूर्य, अग्नि, सुमेरु-पर्वत, समुद्र, हिमालय पर्वत, पीपल, उच्चै श्रवा अश्व, ऐरावत हाथी, कामधेनु, वासुकि, अनन्तनाग, पशुराज सिह, पक्षिराज गरुड, मगरमच्छ, गगानदी, वसन्त ऋतु आदि प्राकृतिक तत्त्वों का परिगणन किया है।[४८]

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध हो जाता है कि परम कारणभूत परमतत्त्व भी प्रकृति से भिन्न नहीं है। उसे ससार को प्राकृत रूप देने के लिये प्रकृति का सहयोग लेना पडता है।

(ग) प्रकृति एवं मानव

प्रकृति एव मानव का सहज शाश्वत सम्बन्ध है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त मानव प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में प्रकृति का साहचर्य प्राप्त करता है। प्रकृति के मूल पञ्च महातत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) से बना मानव शरीर[४९] माता के अङ्क से जैसे ही आविर्भूत हुआ, उसी क्षण उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ एव कर्मेन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में यथासमय प्रवृत्त हुई। जहाँ

एक ओर ज्ञानेन्द्रियों (कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका) ने आकाश आदि महाभूतों के गुणों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) को ग्रहण किया, वहीं दूसरी ओर कर्मेन्द्रियों-वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ने प्रकृति के बाह्य रूप का आश्रय लेकर ही वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग तथा आनन्द ग्रहण किया।[५०] इससे सिद्ध होता है कि मानव ने सर्वप्रथम प्रकृति के मूल तत्त्वों का ही प्रश्रय प्राप्त किया। आकाश ने उसे वृद्धि का अवसर दिया,[५१] वायु ने प्राणयुक्त करते हुए शक्ति दी,[५२] अग्नि ने चेतनता प्रदान की,[५३] जल ने जीवन दिया[५४] तथा पृथ्वी ने अपने ऊपर धारण किया तथा अन्न आदि दिया।[५५]

मनन-चिन्तन-रत भारतीय मनीषियों ने जीवन को समुचित एव व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए उसे जिन चार आश्रमों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एव सन्यास में विभक्त किया था, उनमें प्रकृति जीवन के साथ एकाकार दृष्टिगत होती है। यथा-ब्रह्मचर्य-आश्रम में मानव प्रकृति के शान्त वातावरण में स्थित गुरुकुल में वास करता था, उसका वेष एव भोजन प्रकृति प्रदत्त नैसर्गिक पदार्थ होते थे। वह मृगचर्म, सन, क्षौम और भेड की ऊन के बने वस्त्र पहनता था, मूज अथवा सन आदि की मेखला पहनता था, कपास, सन या भेड के बाल से बना यज्ञोपवीत धारण करता था, बेल, पलाश, वट, खैर या गूलर आदि का दण्ड धारण करता था।[५६] गुरुजी के लिए प्राकृतिक पदार्थ समिधा, जल, कुशा और पुष्प आदि लाकर देता था।[५७]

प्राचीन काल में विद्या के सभी केंद्र, गुरुकुल, ऋषियों के आश्रम ग्राम एव नगरों से दूर-सुदूर प्रकृति के प्रागंण में फल-फूलों से परिपूर्ण पवित्र वनों के एकान्त रमणीय प्रदेशों में, गगा-यमुना आदि पावन नदियों के तट पर प्रतिष्ठित थे। महर्षि भरद्वाज का आश्रम रमणीय एव विशाल वन में गगा-यमुना के सगम पर स्थित था। वहॉ एक पर्णशाला में शिष्यों, ऋषि-मुनियों और पशु-पक्षियों से घिरे महर्षि भरद्वाज विराजमान थे।[५८] इसी प्रकार अत्रिमुनि,[५९] शरभङ्ग मुनि,[६०] सुतीक्ष्ण मुनि,[६१] अगस्त्य मुनि,[६२] महर्षि वशिष्ठ,[६३] महर्षि जाबालि[६४] आदि के आश्रम भी प्रकृति के सुरम्य वातावरण में विद्यमान थे, जहॉ ब्रह्मचारी उनसे सभी प्रकार की शिक्षा ग्रहण करते थे तथा प्रकृति के सानिध्य में ही भौतिक एव मानसिक समुन्नति को प्राप्त होते थे।

गृहस्थ आश्रम में मनुष्य नित्यकर्मो के सम्पादन के लिए नदी, सरोवर, पर्वतीय झरनों आदि में स्नान करता था, पुष्प-धूपादि से देवादि का पूजन

करता था, श्वेत पुष्पों की माला पहनता था, वर्षा आदि के द्वारा होने वाले अन्न तथा फल-मूलादि का सेवन करता था तथा अपने कल्याण की इच्छा से वह पुष्कर आदि सरोवर, नैमिषारण्य, चित्रकूट आदि पुण्य स्थलों, आश्रमों तथा विविध प्राकृतिक स्थलों के दर्शन करने जाता था।[६५]

वानप्रस्थ आश्रम में तो मनुष्य वन में ही निवास करता था। सूर्य के ताप से पके हुए कन्द मूल, फलादि उसका भोजन होता था। अग्निहोत्र के अग्नि की रक्षा के लिए ही वह घर, पर्णकुटी अथवा पर्वत की गुफा का आश्रय लेता था। शीत, वायु, ताप, वर्षा आदि सहन करता था। कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, वल्कल वस्त्र और अग्निहोत्र की सामग्रियों को अपने पास रखता था। पृथ्वी पर शयन करता था। चर्म, काश और कुशाओं से अपना बिछौना तथा ओढने का वस्त्र बनाता था। वन में ही तपस्या में लगा रहता था।[६६]

सन्यास आश्रम में मनुष्य पृथ्वी पर इधर-उधर विचरण करता था। एक गॉव में एक रात ही ठहरता था। भूमि पर शयन करता था। प्राकृतिक पदार्थों का ही मुख्यत सेवन करता था।[६७]

मानव की मूल-प्रकृति आध्यात्मिक है। श्री. अरविन्द के अनुसार मनुष्य में एक ऐसा आध्यात्मिक तत्त्व है, जो अपने भौतिक, प्राणिक और मानसिक पहलुओं से ऊॅचा है। यही कारण शरीर है जो समस्त ज्ञान और आनन्द का वाहक है। यह मनुष्य के भावी विकास का माध्यम हैं।[६८]

प्रकृति मानव की इस आध्यात्मिक प्रकृति को उद्दीप्त करने में विशेष सहयोग देती है। अपने आत्मिक विकास की प्राप्ति हेतु मनुष्य प्राकृतिक प्रदेशों में निवास करता है, यथा कामायनी में मनु कहते हैं-

"वन गुहा कुंज मरु अंचल में हूँ खोज रहा अपना विकास।"[६९]

भारतीय मनीषी ऋषियों की चिन्तन-शक्ति का विकास पर्वतों की गुफाओं एव नदियों के सगम पर ही हुआ है।[७०] महाकवि भवभूति हिमालय एव कावेरी नदी के तटवर्ती भू-प्रदेशों का वर्णन इसी रूप में करते हैं। सप्तम अक में विभीषण अयोध्या लौटते हुए राम से कहते हैं- "ये हिमालय के पवित्र शिखर हैं जिनके चरण को गगा धो रही है और जो कर्पूर की तरह स्वच्छ हैं तथा जहॉ पुराने भूर्ज वल्कल हैं। यहॉ अध्यात्म-विद्या के प्रेमी तत्त्व-ज्ञान से अज्ञान को दूर हटा देने वाले ब्रह्मज्ञानियों के स्वभाव सुन्दर तेज बिखरे पडे हैं।' तथा 'ये कावेरी नदी की वीर भूमियॉ हैं। इनमें वृक्ष ऋषियों के आश्रम को लक्षित

कर रहे हैं जिनमें तपस्या और स्वाध्याय के बल से ब्रह्मज्ञानी कल्पस्थिति के साक्षी मुनिगण रहा करते हैं।,[७१] अपनी विमाता सुरुचि से अपमानित ध्रुव को नारदमुनि यमुना नदी के तटवर्ती परम पवित्र मधुवन में जाकर श्रीहरि को स्मरण करने का उपदेश देते हैं[७२] तथा ध्रुव भी मधुवन में जाकर तप करते हैं तथा श्रीहरि के दर्शन कर ज्ञान प्राप्त करते हैं।[७३] भगवान् बुद्ध[७४] एव महावीर[७५] ने भी भौतिक सुखों का परित्याग कर प्रकृति की गोद में ही जाकर कैवल्य प्राप्त किया था।

मानव के आत्मिक विकास में योग की विशेष भूमिका है।[७६] योगसिद्धि के लिए भी प्रकृति का उन्मुक्त वातावरण श्रेष्ठ बतलाया गया है। गीता[७७] में कहा गया है कि शुद्धभूमि में (जो स्वभाव से शुद्ध हो और झाड-बुहार कर, लीप-पोतकर अथवा धो-पोंछकर स्वच्छ और निर्मल बना लिया हो। गगा, यमुना या अन्य किसी पवित्र नदी का तीर, पर्वत की गुफा, देवालय, तीर्थस्थान अथवा बगीचे आदि, पवित्र वायुमण्डल युक्त स्थानों में से जो सुगमता से प्राप्त हो सकता हो),[७८] जिसके ऊपर क्रमश कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हों, जो न बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा हो-ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापित करके, उस आसन पर बैठकर, चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्त करण की शुद्धि के लिए योगाभ्यास करें।

प्रकृति के परिवेश में रहते हुए साधक ऋषियों ने प्रकृति के पदार्थो से योग की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी और कीट-पतग आदि का सूक्ष्म निरीक्षण किया तथा उनमें स्वास्थ्यवर्धन हेतु जो विशेष क्रिया दिखलायी दी, उसको स्वीकार किया।[७९] योगदर्शन में चित्त की एकाग्रता एव शरीर की आरोग्यता के लिए जिन आसनों का विधान है उनमें बहुत से विविध पशु-पक्षियों की क्रियाओं, अंग-विक्षेपों के अनुकरण हैं, अत उनके नाम पर ही रखे गये हैं। यथा-सिहासन, मत्स्यासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, मण्डूकासन, गरुडासन, वृषभासन, शलभासन, मकरासन, भुजगासन आदि।

मानव ने सदैव प्रकृति से शिक्षा प्राप्त की है। श्रीमद्भागवतपुराण में प्रह्लाद के एक प्रश्न के उत्तर में प्रसगवश दत्तात्रेय कहते हैं कि इस लोक में मेरे सबसे बडे गुरु अजगर और मधुमक्खी हैं। उनकी शिक्षा से हमें

वैराग्य और सन्तोष की प्राप्ति हुई हैं।[८०] कवि सुमित्रानन्दन पन्त मधुपकुमारी से अपने मीठे गान सिखा देने की प्रार्थना करते हैं-

'सिखा दे न हे मधुपकुमारि।
मुझे भी अपना मधुमय गान।।"[८१]

आज भौतिक सभ्यता और नागरिक जीवन के विकास के साथ मानव प्रकृति से दूर भाग रहा है तथा प्रकृति को मात्र भोग के साधन जुटाने की वस्तु समझ बैठा है। ग्राम नगर का रूप ले रहे हैं तथा नगर विस्तृत होते हुए महानगर बन रहे हैं। वन प्रदेशों को नष्ट किया जा रहा है। पर्वतों की नैसर्गिक सुषमा लुप्तप्राय होती जा रही है।[८२] कहॉ वह वातावरण को पवित्र करने वाला यज्ञधूम तथा कहॉ यह कल-कारखानों द्वारा उगला जाता हुआ प्रदूषित धुँआ, कहॉ वह कोयल की कर्ण-प्रिय कूक एव भ्रमर की मधुर गुजार और कहॉ यह मोटर-गाडियों की कर्णकटु एव कर्कश गडगडाहट, कहॉ वह कल-कल करती पवित्र नदियों का रमणीय प्रवाह तथा कहॉ यह गन्दगी के ढेर की दुर्गन्ध। स्वार्थी मानव ने उदारहृदया प्रकृति के साथ बडा खिलवाड किया है। प्रकृति के प्रति मानव के इस क्षुद्र व्यवहार को देखकर ही सम्भवत जयशकर प्रसाद कहते हैं-

"नीले नभ में शोभन विस्तार, प्रकृति है सुन्दर, परम उदार।
नर हृदय परिमित पूरितस्पार्थ, बात जंचती कुछ नहीं यथार्थ।।"[८३]

भौतिक भोग-विलास में निमग्न मानव जब अपने को क्लान्त अनुभव करता है, धन-वैभव के प्रसार में जब उसे सुख का आभास मात्र प्रतीत होने लगता है, अहर्निश की व्यस्तता जब उसे उद्वेलित कर देती हे, जब वह शरीर से शान्त तथा मन से भ्रान्त हो जाता है, तब वह आत्मिक सुख एव शान्ति के लिए पुन पर्वतों की शाद्वल अधित्यकाओं और अपत्यकाओं, कल-कल निनाद करती पावन नदियों के प्रवाहों, उन्नत शैल-शिखरों से गिरते धवल-प्रपातों, पत्र-पुष्प से रम्य एव पक्षियों के कूजन से परिपूर्ण वन प्रदेशो की ओर चलता है।

वस्तुत प्रकृति के साथ मानव का आन्तरिक शाश्वत सम्बन्ध है तभी तो वह उसके प्रति सहज आकृष्ट होता है।[८४] आश्चर्यचूडामणि नाटक में महाकवि शक्तिभद्र ने इस तथ्य को बहुत ही सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। दण्डकारण्य में रहते हुए राम कहते हैं - "नगर में निवास करने की अपेक्षा

वन में निवास करना मुझे अधिक अच्छा लगता है। यहाँ खिले हुए फूलों वाले वृक्षों से उत्पन्न सुगन्धि से युक्त वन-भूमि ही उद्यान है। स्वच्छ झरनों की हँसी से युक्त मेघ के समान श्यामवर्ण पर्वत ही बनावटी पहाड हैं। सारस पक्षियों के पखों से दूनी बढी हुई ही पखे की हवा है।"[८५] महावीरचरित में भवभूति ने भी इस भाव को अभिव्यक्त किया है। हिमालय के पार्श्ववर्त्ती रमणीय भू-भाग से आकृष्टमना लक्ष्मण राम से कहते हैं- "ये भूखण्ड दर्शकों को इतना आकृष्ट करते हैं कि उन्हें छोड किसी नवीन वस्तु को देखने का मन ही नहीं होता है।[८६]

आज अपने घर के आँगन-द्वार को सुसज्जित करने के लिए मानव पुष्पित-पल्लवित, पादप, लताओं आदि को लगाता है, पशु (कुत्ता, बिल्ली, गाय, बकरी, खरगोश) पक्षी (तोता, मैना, कबूतर, तितर, मुर्गा) आदि पालता है। प रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं- "हम पेड-पौधों और पशु-पक्षियों से सम्बन्ध तोडकर बडे-बडे नगरों में आ बसे, पर उनके बिना रहा नहीं जाता, हम उन्हें हर वक्त पास न रखकर, एक घेरे में बन्द करते हैं और कभी-कभी मन बलहाने के लिए उनके पास चले जाते हैं। हमारा साथ उनसे भी छोडते नहीं बनता। कबूतर हमारे घर के छज्जों के नीचे सुख से सोते हैं, गौरे हमारे घर के भीतर आ बैठते हैं, बिल्ली अपना हिस्सा या तो म्यावँ-म्यावँ करके माँगती है या चोरी से ले लेती है, कुत्ते घर की रखवाली करते हैं और वासुदेव जी कभी-कभी दीवार फोड़कर निकल पडते हैं।[८७]

अन्तत कहा जा सकता है कि प्रकृति मानव-जीवन का आधार है। माता-पिता के समान प्रकृति मानव की पालिका, पोषिका तथा सरक्षिका है, अत मानव उसका सदा-सर्वदा ऋणी रहेगा। यहाँ निष्कर्ष रूप में महोदवी वर्मा की ये पक्तियाँ उल्लेखनीय है- "दृश्य प्रकृति मानव जीवन को अथ से इति तक चक्रवात की तरह घेरे रही है। प्रकृति के विविध कोमल-परुष, सुन्दर-विरूप, व्यक्त-रहस्यमय रूपों के आकर्षण ने मानव की बुद्धि और हृदय को कितना परिष्कार और विस्तार दिया है, इसका लेखा-जोखा करने पर मनुष्य प्रकृति का सबसे अधिक ऋणी ठहरेगा। वस्तुतः सस्कार क्रम में मानव-जाति का भाव-जगत् ही नहीं, उसके चिन्तन की दिशा भी प्रकृति के विविध रूपात्मक परिचय द्वारा उसे उत्पन्न अनुभूतियों से प्रभावित है।"

(घ) प्रकृति एवं संस्कृत साहित्य

क्रान्तदर्शी मानव ही कवि है।[८८] वह लोकोत्तर वर्णन में निपुण होता

है।[५९] उसकी रसना पर सारस्वत नेत्र रहता है।[६०] बाह्य जगत् का प्रत्येक पदार्थ उसकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का विषय बनता है।[६१] प्राकृतिक तत्त्व तो उसे सहज ही आकृष्ट कर लेते हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं कि "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है। 'वीणा' और 'पल्लव' विशेषत मेरे प्राकृतिक साहचर्य काल की रचनाए हैं।"[६२]

वैदिक वाड्मय से लेकर आज तक के सम्पूर्ण साहित्य में प्राकृतिक सन्दर्भ सर्वत्र उपलब्ध हैं। वेदों का आधारभूत विषय ही प्राकृतिक तत्त्व हैं। वेदों के अनेकों सूक्त अग्नि, वरुण, मरुत्, सूर्य, उषा, सोम, पर्जन्य, आप, सरित्, रात्रि आदि प्राकृतिक पदार्थों के नाम पर हैं जिन्हें ऋषियों ने देवत्व प्रदान कर उनकी स्तुति की है। यास्क के अनुसार 'जो ऐश्वर्यादि प्रदान करता है, प्रकाशक है तथा प्रकाशमय है, वह देवता है।[६३] इस अर्थ की दृष्टि से अग्नि आदि का देवत्व उचित ही है। अग्नि आदि सभी प्राकृतिक पदार्थ प्राणि-जगत् को अनेक वस्तुए प्रदान करते हैं। विश्वामित्र ऋषि अग्नि की स्तुति करते हुए कहते हैं–

"अग्निमीलेपुरोहितं, यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।"[६४]

अर्थात् यजमान की कामनाओं को पूरा करने वाले यज्ञ के पुरोहित, दान आदि दिव्य गुणों से सम्पन्न, देवताओं के ऋत्विक् और होता एव रत्नों अर्थात् यज्ञ के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ पदार्थों को धारण करने वाले अग्नि देवता की मैं स्तुति करता हूँ।

वैदिक सूक्तों में यद्यपि प्रकृति का देवतापरक स्तवन किया गया, तथापि प्राकृतिक दृश्य भी कम हृदयस्पर्शी नहीं है। इनमें काव्य-सोन्दर्य अद्भुत एव रोचक है। उषासूक्त के मन्त्र काव्य-सौन्दर्य के उत्तम उदाहरण है। उषा की पुराणी युवती के रूप में बहुत ही सुन्दर कल्पना है –

"उषा वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे।।"[६५]

अन्न से अन्नवती हुई और धन से सम्पन्न हे उषा देवी ! तुम प्रकृष्ट ज्ञानवाली होती हुई स्तुति करने वाले के स्तोत्र को ग्रहण करो। सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वरणीय, दिव्य गुणों से सम्पन्न, उषा देवी तुम पुरातनी युवती के

समान हो अथवा सनातन काल से युवती ही बनी हुई हो, बहुत अधिक बुद्धिशालिनी हो और तुम हमारे यज्ञ आदि का नियम व्रत को लक्ष्य करके विचरण करती हो अर्थात् उनका पालन करती हो।[९६]

उपनिषद् साहित्य में दार्शनिक विषयों को अध्येता के हृदयगम कराने हेतु प्राकृतिक उपमानों को चुना गया। यथा 'मुण्डकोपनिषद्' में ब्रह्मज्ञानी की परमात्मा में लीनता को नदी एव समुद्र के उद्धरण से बहुत सुन्दर एव सरल रूप में स्पष्ट किया गया है -

"यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।"[९७]

जिस प्रकार बहती हुई नदियॉ अपने नाम एव रूप को छोडकर समुद्र में लय को प्राप्त करती हैं उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी नाम-रूप से विमुक्त हुआ परम तत्त्व को प्राप्त करता है।

गुरु-मन्त्र की सज्ञा को प्राप्त गायत्री मन्त्र[९८] में सूर्य के तेज को वरणीय बताते हुए बुद्धि को चिन्तन-शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। सूर्य से सम्बन्धित होने के कारण ही इस मन्त्र को सावित्री मन्त्र भी कहते हैं ।[९९] सर्वत्र शान्ति की कामना से उच्चारित शान्ति पाठ [१००] में परमात्मा से द्युलोक, पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति आदि द्वारा शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।

इस प्रकार वैदिक वाड्मय में प्रकृति के वर्णन सर्वत्र द्रष्टव्य हैं। वस्तुत वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के विशाल उन्मुक्त प्राड्गण में प्रकृति के साहचर्य में आत्म चिन्तन किया तथा प्रकृति का सहज साक्षात्कार किया। उन्होंने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर प्राकृतिक तत्त्वों का वर्णन किया।[१०१]

आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण के प्रादुर्भाव का बीज एक कारुणिक प्राकृतिक दृश्य ही था, जबकि मध्याह्नकालिक स्नान एव सन्ध्या के लिए महर्षि वाल्मीकि तमसा नदी पर गए तथा वहॉ उन्होंने परस्पर विहार करने वाले क्रौञ्च नामक पक्षियों के जोडे में से एक को किसी व्याध के द्वारा मारे जाते हुए देखा। इस करुण दृश्य को देखकर वाल्मीकि के मुख से सहज ही अनुष्टुप् छन्दोबद्ध वाणी आविर्भूत हुई -

"मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम् ।।"[१०२]

हे निषाद! तूने कामकेलिरत इस क्रौञ्च-मिथुन में से एक को मार डाला, अत तू शाश्वत वर्षों तक प्रतिष्ठा प्राप्त मत करना।

तभी ब्रह्मा जी ने वाल्मीकि के समक्ष प्रकट होकर उन्हें कहा- "तुम आदिकवि हो, राम के चरित्र का वर्णन करो" और तत्पश्चात् वाल्मीकि ऋषि ने रामायण नामक श्रेष्ठ काव्य की रचना की।[103]

प्रकृति रामायण की कथा का अग है। रामायण में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक प्रकृति का परिवेश व्याप्त है। बालकाण्ड में ही श्रीराम एव लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम में जाना प्राकृतिक दृश्यों से जुडा है।[104] अयोध्याकाण्ड में राम के वनगमन के प्रसग से लेकर अरण्यकाण्ड एव किष्किन्धा काण्ड तक तो सर्वत्र प्रकृति की कथा-विस्तार में मुख्य भूमिका है। इस विषय में डॉ० रघुवश का कथन द्रष्टव्य है- "रामायण में कथा मन्थर गति से प्रवाहित है और आदिकवि की कल्पना उसके साथ चतुर्दिक् फैली प्रकृति से वातावरण का निर्माण करती है। रामकथा का वनवास के बाद का घटनास्थल वन-पर्वत है और कवि ने इस क्षेत्र में कथा के प्रवेश के साथ प्रकृति का सकेत देना प्रारम्भ कर दिया है ---------- यहाँ प्रकृति घटना की स्थिति मात्र नहीं हैं, वरन् कथा-वस्तु की परिस्थिति है।"[105]

प्रकृति-वर्णन वाल्मीकि जी को अभीष्ट है। लक्ष्मण एव सीता के साथ राम जब वनवास के लिए निकलते हैं तो सर्वप्रथम भरद्वाज ऋषि के आश्रम में ले जाते हैं। भरद्वाज राम को चित्रकूट पर निवास करने के लिए कहते हैं। वाल्मीकि भरद्वाज के मुख से चित्रकूट की नैसर्गिक शोभा का वर्णन करते हैं–

"मयूरनादाभिरतो गजराजिनिषेवतः।
गम्यतां भवता शैलश्चित्रकूटः स विश्रुतः।।
पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूलफलायुतः।
तत्र कुञ्जरयूथानि मृगयूथानि चैव हि।।
विचरन्ति वनान्तेषु तानि द्रक्ष्यसि राघव।"[106]

सुविख्यात चित्रकूट पर्वत नाना प्रकार के वृक्षों से हरा-भरा है। मोरों के कलरव से वह और भी रमणीय प्रतीत होता है। बहुत से गजराज उस पर्वत का सेवन करते हैं। वह पर्वत परम रमणीय तथा बहुसख्यक फलमूलों से सम्पन्न है। वहाँ हाथी और हिरन के झुण्ड वन के भीतर विचरते रहते

हैं। रघुनन्दन! तुम उन सबको प्रत्यक्ष देखोगे।

इसी प्रकार रामायण में मन्दाकिनी नदी,[१०७] सन्ध्या,[१०८] हेमन्त ऋतु,[१०९] वर्षा ऋतु,[११०] शरद्-ऋतु,[१११] पम्पा सरोवर,[११२] चन्द्रोदय[११३] आदि का वर्णन बहुत ही मनोज्ञ है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राकृतिक दृश्यों के प्रति वाल्मीकि के मन मे एक आकर्षण है, जो प्रकृति के सौन्दर्य-रूप के साथ व्यक्त होता है और उसी की ओर वे सहृदय को भी आकर्षित करते जान पडते हैं।

रामायण की अपेक्षा महाभारत में प्रकृति-चित्रण को कम स्थान मिला है। महाभारत कथा-बहुत ग्रन्थ है जिसमें आधिकारिक कथा के साथ प्रासगिक कथाए निरन्तर आ रही है। कथाओं की इस विशाल सरिता में प्रकृति-वर्णन के विस्तृत अवसर नहीं आ सके हैं। यहॉ प्रकृति का वर्णन किसी घटना-विशेष अथवा मार्ग आदि का सकेत करने के लिए आया है। यथा आरण्यक पर्व में अर्जुन पाशुपत अस्त्र के लिए हिमवान् पर जाता है। इस सन्दर्भ में कवि ने हिमवान् के प्राकृतिक दृश्य का चित्रण सक्षिप्त वातावरण प्रस्तुत करने के लिए किया है ---

तत्रापश्यद् द्रुमान्फुल्लान्विहगैर्वल्गुनादितान्।
नदीश्च विपुलावर्ता वैदूर्यविमलप्रभाः ।।
हंसकारण्डवोद्गीताः सारसाभिरुतास्तथा ।
पुंस्कोकिलरुताश्चैव क्रौञ्चबर्हिणनादिताः ।।
मनोहरवनोपेतास्तस्मिन्नतिरथोऽर्जुन : ।।
पुण्यशीतामलजलाः पश्यन्प्रीतमनाभवत् ।।"[११४]

वहॉ अर्जुन ने सुशोभित बहुत से वृक्ष देखें, जो पक्षियों के मधुर शब्द से गुञ्जायमान हो रहे थे। उन्होंने वैदूर्यमणि के समान स्वच्छ जल से भरी हुई शोभामयी कितनी ही नदिया देखी, जिनमें बहुत सी भॅवरें उठ रही थी। हस, कारण्डव तथा सारस आदि पक्षी वहॉ मीठी बोली बोलते थे। तटवर्ती वृक्षों पर कोयल मनोहर शब्द बोल रही थी। क्रौञ्च के कलरव और मयूरों की केकाध्वनि भी' वहॉ सब ओर गूॅजती रहती थी। उन नदियों के आस-पास वनश्रेणी सुशोभित होती थी। हिमालय के उस शिखर पर पवित्र, शीतल और निर्मल जल से भरी हुई उन सुन्दर सरिताओं का दर्शन करके वीर अर्जुन का मन प्रसन्नता से खिल उठा।

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी प्राकृतिक दृश्यों का स्पष्ट चित्र नहीं

उभरा हैं, अपितु यहाँ वन आदि का सामान्य आभास मात्र ही होता है।

पुराण-साहित्य में प्रकृति को मुख्यत उपमान के रूप में स्थान मिला है। व्यास जी ने किसी पात्र के चरित्र की उत्कृष्टता बताने अथवा उपदेश वचन में प्राकृतिक उपमानों का आश्रय लिया है। श्रीमद्भागवत के पचम स्कन्ध में राजा रहूगण एव जड भरत के सवाद में इस जगत् को एक सघन वन के समान बहुत ही सटीक रूप से चित्रित किया गया है।[११५] विष्णुपुराण में वर्षा-ऋतु का वर्णन द्रष्टव्य है –

"प्ररूढनवशष्पाढ्या शक्रगोपाचितामही।
तथा मारकतीवासीत्पद्मरागविभूषिता ।।
ऊहुरून्मार्गवाहीनि निम्नगाम्भांसि सर्वतः।
मनांसि दुर्विनीतानां प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव ।।
न रेजेऽन्तरितश्चन्द्रो निर्मलो मलिनैर्घनैः ।
सद्वादिवादो मूर्खाणां प्रगल्भाभिरिवोक्तिभिः ।।"[११६]

उस वर्षाकाल में नवीन दूर्वा के बढ जाने और वीर-बहुटियों से व्याप्त हो जाने के कारण पृथिवी पद्मरागविभूषिता मरकतमयी सी जान पडने लगी। जिस प्रकार नया धन पाकर दुष्ट पुरुषों का चित्त उच्छृङ्खल हो जाता है उसी प्रकार नदियों का जल सब ओर अपना निश्चित मार्ग छोडकर बहने लगता है। जैसे मूर्ख मनुष्यों की धृष्टतापूर्ण उक्तियों से अच्छे वक्ता की वाणी भी मलिन हो जाती है, वैसे ही मलिन मेघों से आच्छादित रहने के कारण निर्मल चन्द्रमा भी शोभाहीन हो गया।

परवर्ती सस्कृत साहित्य में सभी विधाओं महाकाव्य, गद्यकाव्य, नाटक आदि में प्रकृति का वर्णन कवियों की वर्णना-शक्ति का पूर्ण परिचायक बना है।

कवि शिरोमणि कालिदास प्रकृति के अद्भूत चित्रकार हैं, उनका 'ऋतुसहार' 'मेघदूत' तो प्रकृति के ही काव्य हैं। 'ऋतुसहार' में कवि ने क्रमश ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त आदि भारतवर्ष की छ ऋतुओं का नैसर्गिक वर्णन किया है। यथा वसन्त का मनोरम चित्र –

"द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धि ।
सुखा प्रदोषाः दिवसाश्च रम्या सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते ।।"[११७]

मेघदूत में प्राकृतिक तत्त्व 'मेघ', जो कि धूम, विद्युत्, जल तथा वायु जड पदार्थों का पुञ्ज है, को चेतन का धर्म (दूतकर्म) सौंपा गया है।[११८] इसमें भारतवर्ष के उत्तर से दक्षिण तक के विविध प्राकृतिक स्थलों का हृदयहारी वर्णन हुआ है। "कुमारसम्भव" महाकाव्य का प्रारम्भ कवि ने हिमालय-पर्वत के गुणगान से किया है

'अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा ।
हिमालयो नाम नगाधिराजः ।।
पूर्वापरौ तोयनिधी ऽवगाह्य,
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।।[११९]

इस महाकाव्य में प्रकृति-पल्लवन का कवि को पूर्ण अवसर मिला है। "रघुवश" में भी प्रकृति ने अपना स्थान बनाए रखा है। नवम सर्ग में वसन्त-ऋतु के वर्णन में वायु से हिलायी गयी लता का वर्णन हृदयानुरञ्जक है -

'श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः ।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ।।"[१२०]

"उपवन में बढी हुई लताए नर्तकी के समान ऐसी सजीव जान पडती थी, मानों कानों को सुख देने वाले भ्रमरों की गुजार ही उनके गीत हों, खिले हुए कोमल फूल ही उनके हॅसी के दॉत हो और वायु से हिलायी गयी शाखाओं वाले हाथों से अनेक प्रकार के हाव-भाव दिखा रही हों।

महाकवि अश्वघोष ने अपनी कृतियों सौन्दरनन्द और बुद्धचरित में प्रकृति का वर्णन किया है। सौन्दरनन्द में कवि ने कपिल के आश्रम के वर्णन में अपनी कल्पना चातुरी का परिचय दिया है-

"चारुवीरुत्तरुवनः प्रस्निग्धमृदुशाद्वलः ।
हविर्धूमवितानेन यः सदाभ्र इवाबभौ ।।
मृदुभिः सैकतैः स्निग्धैः केसरास्तरपाण्डुभिः ।
भूमिभागैरसंकीर्णैः साङ्गराग इवाभवत् ।।"[१२१]

आश्रम सुन्दर लताओं और वृक्षों से युक्त वन वाला तथा चिकनी और कोमल हरी-हरी घास से युक्त था। होम के धुए के वितान से वह आश्रम सदा बादल के समान दिखाई पडता था। कोमल सिकतामय चिकने पवित्र तथा

केसरों की शय्या से पीले स्थलों से मानों वह आश्रम अङ्राग युक्त हुआ था।

भारवि ने अपने महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' में प्रकृति का बहुलता से चित्रण किया है। चतुर्थ सर्ग में शरद ऋतु, पचम सर्ग में हिमालय, नवम में सन्ध्या एव चन्द्रोद्रय के वर्णन मनोरम हैं। शरद् का सुहावना चित्र देखिए -

"मुखैरसौ विद्रुमभङ्गलोहितैः शिखा· पिशंगी कलमस्य बिभ्रती।
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमलाः धनुः श्रिय गोत्रभिदोऽनुगच्छति।।"[१२२]

शिरीष-पुष्प की भॉति कोमल हरे तोतों की पक्ति मूॅगे के टुकडों के समान लाल-लाल चोंचों से धान की पीली बालियों को लेकर आकाश में उड रही हैं। इससे वह आकाश में इन्द्रधनुष की शोभा को प्राप्त कर रही हैं।

महाकवि भट्टि ने अपने 'रावणवध' में प्रकृति का सुन्दर चित्राकन किया है। द्वितीय सर्ग में शरद् ऋतु का हृदयस्पर्शी वर्णन है। प्रकृति वर्णन के मूल्याकन में भट्टि की यह एकावली द्रष्टव्य है -

'न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजम्
न पंकजं तद् यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलम्
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ।।'[१२३]

उस सरोवर में ऐसा कोई जल नहीं, जहॉ सुन्दर कमल न हो, ऐसा कोई कमल नहीं था, जिसमें भौंरे न हों, ऐसा कोई भौंरा नहीं था जो सुन्दर गुञ्जार न कर रहा हो और ऐसा कोई गुजन नहीं था जो मन का हरण न करता हो।

कुमारदास ने अपने काव्य 'जानकीहरण' में प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में विशेष सफलता प्राप्त की है। वसन्त-ऋतु में रात्रि के छोटे होने और दिन के बढ जाने पर कवि की कल्पना द्रष्टव्य है। शिशिररूपी प्रिय के वियोग से रात्रि क्षीण हो गयी और ग्रीष्म के कठोर ताप से थका हुआ दिन धीरे-धीरे चलता है -

'प्रालेयकालप्रियविप्रयोगग्लानेव रात्रिः क्षयमाससाद ।
जगाम मन्द दिवसो वसन्त क्रूरातपश्रान्त इव क्रमेण ।।"[१२४]

माघ ने **'शिशुपालवध'** महाकाव्य में प्रकृति के विषयों का विस्तृत

वर्णन किया है। चतुर्थ अक में रैवतक पर्वत का चित्रण दर्शनीय है। रैवतक पर्वत के एक ओर सूर्योदय तथा दूसरी ओर चन्द्रास्त को देखकर विशालकाय हाथी के दोनों ओर लटकते हुए दो विशाल घण्टों की कल्पना के आधार पर ही कवि का 'घण्टामाघ' नाम पडा है -

"उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।
वहति गिरिरयं विलम्बितघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रेलीलाम्।।"[१२५]

श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित में प्रकृति का नैसर्गिक चित्राकन किया है। कवि ने प्रकृति में मानवीय चेतना का आरोप किया है। प्रथम अक में हस का विलाप इसका सुन्दर निदर्शन है। राजा नल द्वारा पकडा गया हस उसकी निन्दा करता हुआ कहता है-

"फलेन मूलेन च वारिभूरुहां मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः ।
त्वयाऽद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरणी हृणीयते।।"[१२६]

जल और वृक्षों से उत्पन्न कन्द और फल से मुनि के समान जिस मेरी जीविका है, ऐसे मेरे प्रति भी दण्ड धारण करने वाले राजा आप से पृथ्वी क्यों नहीं लज्जा करती है।

सुप्रसिद्ध कवि हाल ने अपने गीतिकाव्य 'गाथासप्तशती' में प्रकृति के सुमधुर, कोमल एव नैसर्गिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। पर्वतों मे स्थित गॉवों की झॉकी देखिए -

"प्रफुल्लघनकदम्बाः निर्धामशिलातलाः मुदितमयूराः ।
प्रसरन्तोज्झरमुखरा उत्साहन्ते गिरिग्रामाः ।।"[१२७]

प्रफुल्लित अविरल कदम्ब के वृक्षों से सुशोभित, स्वच्छ शिलातल, प्रसन्नचित्त मोरों से युक्त एव निर्झर समूह से शब्दायमान पर्वत प्रदेशीय ग्राम बडे ही कुतूहलवर्द्धक होते हैं।

जयदेव ने अपनी भक्तिरस की अनुपम कृति 'गीतगोविन्द' में भगवान् श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ रासलीला में प्रकृति को उद्‌दीपन के रूप में ग्रहण किया है। वसन्त ऋतु का एक चित्र अवतरित है -

"ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ।।
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते

नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ।।"[१२८]

सुन्दर लौंग की लताओं से स्पृष्ट, धीरे-धीरे बहते हुए मलयसमीर के सहित, भौंरों की पक्ति से गुजित एव कोयलों की कूजनयुक्त कुञ्ज वाले तथा वियोगिनियों को सन्तप्त करने वाले इस वसन्त ऋतु में श्रीकृष्ण तरुणी गोपियों के साथ नाचते तथा गाते है।

मन्दाकिनी गगा प्रकृति की अपूर्व देन है। सस्कृत वाङ्मय में उसके वैशिष्ट्य का प्रतिपादन बहुलता से हुआ है। पण्डितराज जगन्नाथ ने गगा की स्तुति में ही 'गगालहरी' नामक गीतिकाव्य की रचना की है तथा उसमें मातृत्व भाव का आधान किया है।[१२९]

सस्कृत के गद्य-कवियों ने भी अपनी रचनाओं में प्रकृति का नैसर्गिक तथा हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। दण्डी के दशकुमारचरित में वसन्त ऋतु का वर्णन मनोरम है -

"अथ मीनकेतनसेनानायकेन मलयगिरिमहीरुहनिरन्तरावासिभुजगम-भुक्तावशिष्टेनेव सूक्ष्मतरेण धृतहरिचन्दनपरिमलभरेणेव मन्दगतिना दक्षिणानिलेन वियोगिहृदयस्थं मन्मथानलमुज्ज्वलयन्,सहकारकिसलयमकरन्दास्वादनरक्तकण्ठानां मधुकरकलकण्ठानां काकलीकलकलेन दिक्चक्र वाचालयन्, मानिनीमान-सोत्कलिकामुपनयन्, माकन्दसिन्दुवाररक्ताशोककिंशुकतिलकेषु कलिकामुपपादयन्, मदनमहोत्सवाय रसिकमनांसि समुल्लासयन्, वसन्तसमयः समाजगाम ।"[१३०]

तत्पश्चात् वसन्त ऋतु आ गयी, जिसका सेनाधिप स्वय मीनकेतन कामदेव था। मलय पर्वत पर के चन्दन के वृक्षों पर निवास करने वाले सॉपों के पीने से अवशिष्ट तथा चन्दन की सुगन्ध से मिश्रित पवन शनै शनै चलता हुआ दक्षिण पवन के साथ विरहियों के अन्त करणों में कामोद्दीपन कर रहा था। आम की मञ्जरियों के परागों का आस्वादन कर लाल कण्ठ वाले कोकिलों की मधुर ध्वनि से तथा भ्रमरों की गुञ्जारों से कामदेव ने दिशाओं को मुखरित कर दिया था और मानिनी अगनाओं के हृदयों को उत्कण्ठित कर दिया था। आम, निर्गुण्डी, रक्ताशोक, पलाश तथा तिलकादि वृक्षों को अंकुरित करके मदन महोत्सव मनाने के निमित्त कामदेव ने रसिकों के हृदयों में एक विशेष रीति का उल्लास ला दिया।

महाकवि सुबन्धु ने प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में विशेष अभिरुचि दिखलाई है। तमालिका नामक सारिका से वासवदत्ता के हृदयगत भाव जानकर

कन्दर्पकेतु उसके प्रेम में डूब जाता है। इस प्रसग के साथ ही कवि ने सूर्यास्त, सायकाल,अधकार, चन्द्रोदय, तारावली आदि का विस्तार से वर्णन किया है। चन्द्रोदय का वर्णन देखिए -

"अथ क्षणेन क्षणदाराजकन्याकन्दुक इव, कन्दर्पकनकदर्पण इव, उदयगिरिबालमन्दारपुष्पस्तबक इव, प्राचीललनाललामललाटतटघटित-बन्धूककुसुमतिलकचक्राकार, कनककुण्डलमिव नभःश्रिय., दिग्वधूप्रसा-धिकाहस्तस्रस्तालक्तकपिण्ड इव शातकुम्भकुम्भ इव गगनसौधतलस्य --------------रजनीपतिरुदयमाससाद।"[१३१]

क्षणभर बाद, रात्रिरूपी राजकन्या की गेंद, कामदेव के स्वर्णमय दर्पण और उदयाचलरूपी मन्दारवृक्ष के नवीन पुष्पगुच्छा सा, युवतियों में श्रेष्ठ प्राची दिशारूपी अङ्गना के मस्तक पर बने हुए बन्धुजीव नामक पुष्प के तिलक का आकार धारण किये हुए, आकाश-लक्ष्मी का स्वर्णमयकुण्डल तथा दिग्वधुओं की प्रसाधिका-दासी के हाथ से गिरे हुए लाक्षापिण्ड के समान,आकाशरूपी प्रासाद के स्वर्णमय कलश के समान चन्द्रमा उदित हुआ।

बाणभट्ट ने अपनी दोनों गद्यकृतियों - हर्षचरित एव कादम्बरी में प्रकृति का वर्णन मुक्त-हृदय से किया है। उनकी प्रकृति के दृश्यो की प्रस्तुति वर्णनात्मक शैली में है।हर्षचरित मे कवि ने भ्रमण के समय अपने गॉव में पहुॅचने के प्रसग में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन अनेक पृष्ठों में किया है।[१३२] कादम्बरी में भी प्रकृति के दृश्य भरे पडे हैं। विन्ध्याटवी वर्णन की एक झलक देखिए -

"अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेलावनलग्ना मध्यदेशालंकारभूता मेखलेव भुवः, वनकरिकुलमदजलसेकसंवर्धितैरतिविकचधवलकुसुमनिकरमत्युच्चतया तारकागणमिव शिखरप्रदेशसंलग्नमुद्वहद्भिः पादपैरुपशोभिता, मदकलकुररकुलदश्यमानमरिचपल्लवा, करिकलभकरमृदिततमालाकिसलयामोदिनी मधुमदोपरक्तकेरलीकपोलच्छविना संचरद्वनदेवताचरणालक्तकरसरञ्जितेनेव पल्लवचयेन सछादिता ----------------विन्ध्याटवी नाम।"[१३३]

आधुनिक विख्यात गद्यकवि प० अम्बिका दत्त व्यास का प्रकृति-वर्णन बाण के समान विशद नहीं है। उन्होंने आवश्यकतानुसार प्रकृति को स्थान दिया है।वीर शिवाजी के दूत रघुवीर सिह की अद्भुत एव साहस की अभिव्यक्ति के लिए झञ्झावात का वर्णन पाठक को दृश्य की प्रत्यक्ष अनुभूति कराने में सक्षम है-

"तावदकस्मादुत्थितो महान् झञ्झावातः, एक सायंसमयप्रयुक्त- स्वभाववृत्तोऽन्धकार, स च द्विगुणितो मेघमालाभि-। झञ्झावातोद्धूतैर्रेणुभि शीर्णपत्रै कुसुमपरागै- शुष्कपुष्पैश्च पुनरेष द्वैगुण्य प्राप्तः। इह पर्वतश्रेणीत- पर्वतश्रेणीः, वनाद् वनानि, शिखराच्छिखराणि, प्रपातात् प्रपाता, अधित्यकातोऽधित्यका-, उपत्यकात उपत्यका, न कोऽपि सरलो मार्गः, नानुद्मेदिनीभूमि, पन्था अपि च न अवलोक्यते। क्षणे-क्षणे हयस्य खुराश्चिक्कण-पाषाणखण्डेषु प्रस्खलन्ति।"[१३४]

नाटकों में प्रकृति का वर्णन उतना विस्तार से नहीं मिलता, जितना महाकाव्य आदि में देखा जाता है। रूपकों में घटनाओं की गत्यात्मकता अपेक्षित होती है, वहाँ कवि का ध्यान वस्तु की अभिनेयता पर रहता है तथा विस्तृत प्रकृति-वर्णन से घटनाओं की स्वाभाविक गति में बाधा पडती है। सस्कृत नाटककारों ने कथा में प्रसगत आए प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अवसरानुकूल अवश्य किया है।सर्वप्रथम नाटककार भास ने अपने नाटकों में प्रकृति का रोचक एव यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने कथा प्रसग में आए प्राकृतिक दृश्यों को पूर्ण चित्राकन किया है। स्वप्नवासवदत्त में वनप्रान्त की सन्ध्या का वर्णन अलौकिक है -

"खगा वासोपेताः सलिलभवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्।।"[१३५]

पक्षी घोंसलों में चले गए हैं, मुनिजन जल में स्नान के लिए प्रविष्ट हो गए हैं, सायकालीन प्रज्वलित अग्नि सुशोभित हो रही है, तपोवन में धुआँ फैल गया है, सूर्य भी बहुत ऊँचे से गिरते हुए अपनी किरणों को समेटकर, रथ लौटाकर अस्ताचल की ओर जा रहे हैं।

इसी प्रकार भास ने अपने नाटकों में तपोवन,[१३६] ग्रीष्म ऋतु,[१३७] चन्द्रोदय[१३८] आदि प्राकृतिक विषयों का वर्णन बडी सहृदयता से किया है।

काव्यों के समान ही कालिदास ने अपने नाटकों में भी प्रकृति का यथास्थान सयोजन किया है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में उनकी प्रकृति मानवीय मनोभावों, सवेगों से समन्वित है, पूर्ण चेतन है। अन्य रचनाओं की अपेक्षा

इस नाटक में प्रकृति अधिक सवेदनशील है। शकुन्तला की विदाई के अवसर पर वृक्ष, लता, वनदेवता भी अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं। उस समय हरिणियों में कुश-कवल उगल दिए, मोरों ने नाचना छोड दिया, पीले पत्तों को गिराती हुए लताए मानों ऑसू बहा रही हैं -

"उद्गलितदर्भकवला मृगाः परित्यक्तनर्तनाः मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्राः मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।"[१३९]

शूद्रक ने मृच्छकटिक में प्रकृति का वर्णन अधिकाशत उद्दीपन के रूप में किया है। एक दो स्थलों पर कवि ने प्रकृति का स्वतन्त्र चित्र भी प्रस्तुत किया है। चन्द्रोदय का वर्णन देखिए-

"उदयति हि शशाकः कामिनीगण्डपाण्डुः
ग्रहगणपरिवारो राजमार्गप्रदीपः।
तिमिरनिकरमध्ये रश्मयो यस्य गौराः
स्रुतजल इव पंके क्षीरधाराः पतन्ति।।"[१४०]

हर्ष की नाट्यकृतियों में भी प्रकृति के दर्शन होते हैं। उन्होंने अनेक स्थलों पर प्रकृति का मानवीकरण किया है। रत्नावली में सूर्य अपनी प्रियतमा कमलिनी से विदा मॉग रहें हैं-

"यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया
प्रत्यायनामयामितीव सरोरुहिण्याः
सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति।।"[१४१]

कमलिनी के झुके हुए मस्तक पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरते हुए (अथवा, अस्ताचल के शिखर पर अपनी किरणें डालते हुए) सूर्य उसे सात्वनायुक्त विश्वास दिला रहे हैं कि हे कमललोचन! अब मैं जा रहा हूँ, मेरे जाने का समय हो गया है, किन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल प्रात जब तुम सोती ही रहोगी, मैं आकर तुम्हें जगाऊँगा।

भट्टनारायण ने अपने वेणीसहारनाटक में प्रकृति की प्राय उपेक्षा की है किन्तु शृगार से परिपूर्ण द्वितीय अक में प्रकृति के सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किए गए हैं। अपने कञ्चुकी विनयधर को प्रात. काल की रमणीयता का दृश्य दिखलाते हुए दुर्योधन कहता है-

"जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टै-
र्हस्तैर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः।
स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्यांगरागा
मुञ्चन्त्येते विकचनलिनीगर्भशय्या द्विरेफाः।।"[१४२]

कलियों के विकास के प्रारम्भ काल में फैली हुई पखुडियों के छोर रूपी खिडकियों के द्वारा प्रविष्ट सूर्यकिरणों के सस्पर्श से जगे हुए राजा के समान ये भौंरे अपनी भ्रमरियों के साथ अधिक पराग सलग्न होने के कारण शरीर का रग कुछ-कुछ उपलक्षित कराते हुए विकसित कमलिनी के भीतरी भाग रूपी शय्या को राजाओं की भॉति त्याग रहे हैं।

अन्य प्रमुख सस्कृत नाटककारों दिङ्नाग, भवभूति, मुरारि, शक्तिभद्र, हनुमान्, राजशेखर, जयदेव आदि ने भी प्रकृति का प्रसगानुकूल चित्रण किया है।[१४३]

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह सहज सिद्ध हो जाता है कि सम्पूर्ण सस्कृत वाङ्मय में प्रकृति के सभी दृश्यों का चित्राकन हुआ है तथा इसी प्रकृति वर्णन ने जहॉ कवि की काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है वहीं काव्य-कथानक को भी उत्कृष्टता प्रदान की है।

(ङ) प्रकृति एवं काव्यशास्त्र

सस्कृत आचार्यो ने अपने साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों मे प्रकृति की सत्ता को नाटक-काव्य आदि में स्वीकार किया है। उन्होने प्रकृति के तत्त्वों का उल्लेख भी किया है। आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में नाट्यमण्डप के रूपाकार के विषय में निर्देश देते हुए लिखा है कि वह पर्वत-गुफा के आकार तथा दो भूमियों वाला होना चाहिए-

"कार्यः शैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाट्यमण्डपः।"[१४४]

नाट्यमण्डप के कक्ष्याविभाग की उपयोगिता के विषय में वे लिखते हैं- "कक्ष्या-विभाग की परिधि में (जो पात्र के किसी विभाग पर स्थित होने से जानी जाती हो तथा जिस दृश्य का निरूपण करना इष्ट हो) गृह, नगर, उद्यान आदि से युक्त प्रदेश, ग्राम तथा नगर, नदी, आश्रम, वन, पृथ्वी, समुद्र, पर्वत आदि आ जाते है।"[१४५] उन्होने चित्राभिनय प्रकरण में दिन, चन्द्रिका, सूर्य, अग्नि, सिह आदि पशु शरद्-हेमन्त आदि ऋतुओं के अभिनय की विधि का

प्रतिपादन किया है।[१४६] आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने नाटक लक्षण में लिखा है कि इसमें नदी, समुद्र, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वसन्त आदि ऋतु, प्रभात, पर्वत आदि का वर्णन स्वल्प मात्रा में (एक, दो पद्यों में) ही करना चाहिए।[१४७]

इससे स्पष्ट है कि आचार्यों ने नाटक आदि में प्राकृतिक-तत्त्वों के वर्णन की आवश्यकता का सकेत किया है।

महाकवि दण्डी[१४८] तथा आचार्य विश्वनाथ[१४९] ने महाकाव्य का स्वरूप बताते हुए स्पष्ट लिखा है कि इसमें ऋतु, पर्वत, समुद्र, चन्द्रोदय, सूर्योदय, सन्ध्या, रात्रि आदि का वर्णन होना चाहिए। आचार्यो ने रस-निष्पत्ति के प्रकरण में उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्रकृति की स्पष्ट चर्चा की है। आचार्य शिङ्गभूपाल ने 'रसार्णवसुधाकर' मे कहा है कि आलम्बन को भली-भॉति आश्रय देने वाला, भेद से गुण, चेष्टा, अलकृति तथा तटस्थ चार प्रकार का उद्दीपन होता है[१५०] और फिर तटस्थ के अन्तर्गत प्रकृति के कुछ उपादानों को गिनाया है-

"तटस्थाश्चन्द्रिकाधारागृहचन्द्रोदयावपि।
कोकिलालापमाकन्दमन्दमारुतषट्पदाः।।
लतामण्डपभूगेहदीर्घिका जलदारवाः।
प्रासादगर्भसंगीतक्रीडादिसरिदादयः।।"[१५१]

आचार्य भट्टलोल्लट ने भरतमुनि के रस-सूत्र[१५२] की व्याख्या में उद्दीपन-विभाव में उद्यान आदि का सकेत किया है[१५३] तथा आचार्य विश्वनाथ ने उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत चन्द्रोदय, चन्दन, कोकिलों का आलाप और भ्रमरों की गुजार आदि को लिया है।[१५४]

साहित्याचार्यो ने प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में काव्य-परम्पराओं का उल्लेख 'कवि-समय' के रूप में किया है। ये सभी परम्पराए वृक्ष, पशु, पक्षी आदि को लेकर स्थापित की गई है। 'अशास्त्रीय (शास्त्र से बहिर्भूत), अलौकिक (लोक व्यवहार से बहिर्भूत), केवल परम्परा प्रचलित जिस अर्थ का कविजन उल्लेख करते हैं- वह कविसमय है।"[१५५] ये परम्परा प्रचलित अर्थ अनेक हैं- यथा- नदी में कमल की उत्पत्ति, जलाशय मात्र में हस, पर्वत मात्र पर रत्न, समुद्र में मकर, ताम्रसीपी में मुक्ता, मुष्टिग्राह्य और सूचीभेद्य अधकार, मलयपर्वत पर चन्दन, हिमालय मात्र पर भोजपत्र, चक्रवाक के जोडे का रात्रि में वियोग, चकोर का चन्द्रिका-पान, कोकिला का वसन्त में ही

बोलना, मयूर का वर्षा में ही बोलना, कुन्दकली और कामिनी के दॉत का लाल होना, कमल कली का हरा-भरा होना, प्रियगु पुष्पों का पीला होना, माणिक की लालिमा, पुष्पों की शुक्लता, मेघों की श्यामता, काम की मकर-पताका, चन्द्रमा के शशि और हरिण की एकता, अत्रि-नेत्र और समुद्र से चन्द्र की उत्पत्ति आदि।[१५६]

आधुनिक हिन्दी आचार्यों ने प्रकृति-रस की कल्पना भी की है।[१५७] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसके प्रबल समर्थक है। वे प्रकृति के प्रत्यक्ष और काव्य निबद्ध दोनो रूपों के आस्वाद में रस की सत्ता स्वीकारते हुए कहते हैं- "जिस समय दूर तक फैले हरे-भरे टीलों के बीच से घूम-घूमकर बहते हुए स्वच्छ नालों, इधर-उधर उभरी हुई बैडोल चट्टानों और रग-बिरगे फूलों से गुथी हुई झाडियों की रमणीयता में हमारा मन रमा रहता है, उस समय स्वार्थमय जीवन की शुष्कता और विरसता से हमारा मन कितनी दूर रहता है। यह रस-दशा नहीं, तो क्या है? ------जबकि प्राकृतिक दृश्य हमारे भावों के आलम्बन है, तब इस शका के लिए कोई स्थान ही नहीं रहा कि प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में कौन सा रस है?" [१५८] प्रकृति रस के आलम्बन, उद्दीपन विभावों का हिन्दी आचार्यों ने कोई स्पष्ट विवेचन नहीं किया हैं।

पुराणों में स्वप्न एव शकुन के शुभ-अशुभ परिणाम के पूर्वाभ्यास में भी प्राकृतिक उपादानों का उल्लेख मिलता है। अग्निपुराण के अनुसार नाभि के सिवा शरीर के अगो में तृण और वृक्षों का उगना, लाल फूल से भरे हुए वृक्षों को देखना, सूर्य ओर चन्द्रमा का गिरना, अन्तरिक्ष और भूलोक में होने वाले उत्पातों का दिखायी देना, लाल फूलों की माला पहनना, लाल चन्दन लगाना- से सब दु स्वप्न हैं। पृथ्वी अथवा आकाश में सफेद फूलों से भरे हुए वृक्षों को देखना, चन्द्रमा, सूर्य और तारों को पकडना, हाथी, घोडा, बैल, गाय को देखना, बैल, हाथी, पर्वत, शिखर तथा वृक्ष पर चढना- ये शुभ स्वप्न हैं।[१५६] स्वच्छ जल, फल से भरा हुआ वृक्ष, निर्मल आकाश, खेत में लगे हुए अन्न और काला धान्य- इनका यात्रा के समय दिखायी देना अशुभ है। श्वेत पुष्पों का देखना, मेघ की गम्भीर गर्जना, बिजली की चमक- शुभ शकुन हैं।[१६०]

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से सिद्ध होता है कि सस्कृत साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकृति के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। काव्याचार्यों ने प्रकृति को नाटक-काव्य आदि में आवश्यक माना है, परन्तु उसके स्वतन्त्र वर्णन पर कोई विशेष बल नहीं दिया है।

सन्दर्भ

१　द्र , शब्दकल्पद्रुम, तृतीयकाण्ड, पृ　२४२-२४५।

२　तत्र प्रकृतिरुच्यते स्वभावो य　स पुनराहारौषधद्रव्याणा स्वाभाविको गुर्वादिगुणयोग । वही, पृ　२४२।

३　(क)　स्वाम्यमात्यौ पुर राष्ट्र कोषदण्डौ सुहृत्तथा।
　　सप्त प्रकृतयो ह्येता　सप्ताङ्ग राज्यमुच्यते।। मनु , ६ २६४।

(ख)　स्वाम्यमात्यसुहृत्कोश राष्ट्रदुर्गबलानि च। राज्याङ्गानि प्रकृतय ।
　　अमरकोश, १२ ८ १७-१८।

४　पौराणा श्रेणय । वही, २ ८ १८

५　स्वेदितो मर्दितश्चैव रज्जुभि　परिवेष्टित ।
मुक्तो द्वादशभिर्वर्षै श्वपुच्छ प्रकृति गत ।। हितोपदेश, २/१६६

६　गीता, ७ ४-५

७　(क)　सत्त्व रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम्।
　　साम्यावस्थितिरेतेषा प्रकृति　परिकीर्तिता।।
　　केचित् प्रधानमित्याहुरव्यक्तमपरे जगु ।।
　　एतदेव प्रजासृष्टि करोति विकरोति च।। म पु , ३/१४-१५

(ख)　द्र., साख्यकारिका ३ पर कौमुदी टीका।

८　द्र , शब्दकल्पद्रुम, पृ　२४२-२४५

६　क-द्र , हलायुधकोश, पृ. ४४८-४४६
ख-द्र , अमरकोश, १ ४.२६, १ ८ ३७-३८, ३ ३ ७३।
ग-द्र , आप्टे कोश, पृ　६४०-६४१।
घ-द्र , बृहत् हिन्दी कोश, पृ., ८६७

१०　महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षम्　। प्रति　अक १-पृ. २८ तथा द्र., वही, ३/११, ३/१६, अक ३, पृ　११८, अक ४-पृ　१२१, अक ७-पृ. २१० आदि।

११　सर्वा प्रकृतयस्त्वा विज्ञापयन्ति। म.च　अंक ४-पृ　१८०, तथा द्र , वही, अक ४-पृ　१५०-१५१ तथा ७ ३०।

१२ प्रकत्यैव रामोऽस्मि जामदग्न्य। वही, अक ३-पृ १३०।

१३ इद हि तत्त्व परमार्थभाजामय हि साक्षात्पुरुष पुराण।
त्रिधा विभिन्ना प्रकृति किलैषा त्रातु भुवि स्वेन सतोऽवतीर्णा।। वही, ७ २

१४ प्रकृतिरियमभ्युदयानाम्। उ च, अक ७-पृ ५०४।

१५ प्रकृत्या कल्याणी मति । वही, २ २

१६ नियोजय यथाधर्म प्रिया त्व धर्मचारिणीम्।
हिरण्मय्या प्रतिकृते पुण्या प्रकृतिमध्वरे।। वही, ७ २० पर घनश्याम टीका द्रष्टव्य।

१७ एतयो प्रकृतिरम्यरूपयो । प्र रा, ३/२०
तथा द्र, वही अक २-पृ ६६, अक ४-पृ २०८, अक ४-पृ २१० आदि।

१८ अहो, अविश्वसनीयता प्रकृति-निष्ठुरभावाना पुरुषहृदयानाम् । कुन्द अक २-पृ ४६ तथा द्र, वही, ६ २३, ६ ३७ आदि।

१९ यावदार्यस्तीर्णप्रतिज्ञ प्रकृतिमण्डल गुरुजन भरत च न पश्यति । आ चू, अक १-पृ १७

२० प्रकृति व्रजन्ति सहसा क्षपाचरा। वही, ३/१०

२१ परिवर्तते प्रकृतिरापदि हि। वही, ३/२९

२२ मानक हिन्दी कोश (तीसरा खण्ड), पृ ५९०

२३ वैदेही वनवास, दशम सर्ग

२४ पचवटी, पद्य ६४।

२५ प्रकृति के यौवन का शृगार, करेंगे कभी न बासी फूल। कामायनी, श्रद्धा सर्ग।

२६ प्रकृति गोद में छिप, क्रीडाप्रिय, तृणतरु की बातें सुनता मन।। रश्मिबन्ध, हिमप्रदेश।

२७ चिन्तामणि, पहला भाग, पृ १००

२८ द्र, वही, पृ ९७-९८

२९ कालिदास की लालित्य योजना, पृ ११८

३० हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण, पृ १०

३१ अभि शा., १/१५

३२ द्र, सा द, २ ५ वृत्ति

३३ छान्दोग्य उप ६/१/७

३४ (क) प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया। गीता, ४/६

(ख) मायाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। वही, ९/१०

३५ मायान्तु प्रकृति विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्। श्वेताश्वतर उ , ४/१०

३६ द्र , साख्यकारिका, २२-२६

३७ गीताजलि

३८ 'सृष्टिस्थित्यन्तकारिर्णी ब्रह्माविष्णुशिवात्मिकाम्।
स सज्ञा याति भगवानेक एव जनार्दन ।। वि पु , १/२/६६

३९ द्र , भा पु , ३/८/१४-१६, अ रा , ७/१४, कुन्द , अक ५-पृ १२७, बा रा , ३/१, प्र रा १/३

४० द्र हलायुधकोश, पृ ४८५, ब्रह्मविमानहसा बा रा अक ५, पृ १६५

४१ (क) आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव ।
अयन तस्य ता पूर्व तेन नारायण स्मृत ।। वि पु , १/४/६।

(ख) अम्बुधिजले निद्राति नारायण । प्र रा , ७/४५

४२ द्र , भा पु , ३/१८/१३-१४

४३ द्र , वही, ३/८/२३, आ चू १/१

४४ द्र वही , ४/६/१

४५ द्र , वही , स्कन्ध २, अध्याय ७

४६ दिगम्बरो वहति भुजङ्गभूषण कपालवान् कलयति दामकौणपम्।
वृषप्रियो रचयति भस्मगुण्ठनामुमापतेश्चरितमचिन्त्यकारणम्।। बा.रा २/३ तथा द्र अ रा ७/३८, कुन्द , १/२, आ चू २/३, बा रा १/४७, ४/१३

४७ सूर्यो जल मही वायुर्वह्निराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मण सोम इत्येतास्तनव क्रमात्।। वि पु १/८/७

४८ द्र , गीता, अध्याय १०

४९ छिति जल पावक गगन समीरा। पच रचित यह अधम शरीरा।।
रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड, दोहा११ चौ २

५० द्र , साख्यकारिका २६ एव २८

५१ आकाशस्य सर्वावकाशतया । वेदान्तसार (विमल प्रकाशन) पृ ५६ पर

उद्धृत।

५२ (क) द्र , भा पु २/५/२६, ५/११/१४

(ख) यया प्राणिन प्राणवन्त , अभि शा १/१

५३ द्र , ऋग्वेदीय अग्नि सूक्त।

५४ जलति जीवयति लोकान्। हलायुधकोश, पृ ४०

५५ द्र , वि पु , १/१२/८, १/६/२१-२५

५६ द्र , मनु , २/४१-४५ तथा द्र , भा पु , ७/१२/१-४

५७ द्र ,वि पु ३/६/६

५८ द्र , वही, अयो ५४/१-२०, ८६/२३

५९ द्र , वही, अयो , सर्ग ११७

६० द्र , वा रा , अरण्य , ५/१-२५

६१ द्र , वही, अरण्य , ५/३६

६२ द्र , वही, अरण्य , ११/७८-८०, १२/२१-२२

६३ द्र , रघुवश, १।४६-५१

६४ द्र , कादम्बरी, पूर्वभाग (साहित्य भण्डार प्रकाशन), पृ १४१-१५३

६५ द्र , वि पु , ३/११/२५, ४१, ८४, ३/१२/३ तथा भा पु ७/१४/७,९

६६ द्र , वही ३/९/१९-२२

६७ द्र , भा पु , ७/१३/१, ७/१५/३१

६८ द्र , कल्याण, शिक्षाक, श्री लज्जाराम तोमर का लेख शिक्षा के भारतीय मनावैज्ञानिक आधार, पृ २३५

६९ कामायनी, इडा सर्ग

७० उपहृवरे गिरीणा सगमे च नदीना धिय विप्रोऽजायत। ऋग्वेद, ८/६/२८

७१ म च , ७/१३, ७/२७

७२ द्र , भा पु , ४/८/४२-४३

७३ द्र , वही, स्कन्ध ४, सर्ग ८-९

७४ द्र , अश्वघोष, बुद्धचरित, सर्ग ७, १२-१४

७५ द्र , सकलकीर्ति, वीरवर्धमानचरित, १२/८६-१००

७६ आत्मज्ञानेन मुक्ति स्यात्तच्च योगादृते नहि।

स च योगश्चिर कालमभ्यासादेव सिध्यति।। स्कन्द पुराण

७७ द्र , गीता, ६/११-१२

७८ द्र , रमेशकुमार, जयेन्द्र योग-प्रयोग, पृ ३३

७९ द्र , दामोदर सातवलेकर, आसन, पृ १५२-१५४

८० मधुकारमहसर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ।
वैराग्य परितोष च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम्।। भा पु , ७/१३/३४

८१ पल्लव, पृ ८०

८२ द्र , धर्मयुग, वर्ष ४५, अक २२, १६ से ३० नवम्बर १९९४

८३ झरना (कविता-असन्तोष), पृ ३७

८४ रम्याणि वीक्ष्य मधुराश्च निशम्य शब्दान्,
पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोऽपि जन्तु ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि।। अभि शा ५/२

८५ आ चू , १/१२

८६ म च , अक ७, पृ ३१८

८७ चिन्तामणि (पहला भाग) 'कविता क्या है' पृ १०३-४

८८ कवय क्रान्तदर्शिन । बलदेव उपाध्याय, सस्कृत आलोचना पृ १३ से उद्धृत।

८९ लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्य प्रकाश, १/२ वृत्ति

९० रसनासु व सुकवीना निवसति सारस्वत चक्षु । बा रा , १/७

९१ शक्ति प्रतिभान वर्णनीयवस्तुविषयनूतनोल्लेखशालित्वम्। ध्वन्यालोकलोचन, का पृ १/३ पर डॉ. श्रीनिवास द्वारा उद्धृत

९२ द्र , आधुनिक कवि-३ की भूमिका पृ १ एव ३

९३ देवो दानाद्वा। दीपनाद्वा। द्योतनाद्वा। निरुक्त, ७/४ पृ ३५५।

९४ ऋग्वेद १/१/१

९५ वही, ३/६१/१

९६ द्र , ऋक्सूक्तसग्रह, उषस् सूक्त, पृ ७८

९७ मुण्डकोपनिषद्, ३/२/८

९८ ॐ भूर्भुव स्व । तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो न प्रचोदयात्।। यजुर्वेद, ३६/३ (नाग प्रकाशन, दिल्ली १९९४)

९९ द्र , हिन्दू धर्म कोश, पृ २३२।

१०० द्यौ शान्तिरन्तरिक्ष शान्ति पृथिवी शान्तिराप शान्तिरोषधय शान्ति वनस्पतय शान्तिर्विश्वे देवा शान्तिर्ब्रह्मशान्ति सर्व शान्ति शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि।। यजुर्वेद, ३६/१७

१०१ ऋषि वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा माने जाते हैं (ऋषयो मन्त्रद्रष्टार)। वे मन्त्रों के वक्ता भी कहलाते हैं। जिस जिस ऋषि ने अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए देवता की स्तुति की, उस उस ऋषि को उन-उन मन्त्रों का ऋषि मान लिया गया। द्र डॉ कपिल देव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, पृ १ ३

१०२ बा रा , बालकाण्ड, २/१५

१०३ द्र , वही, सर्ग २, उ च अक २

१०४ द्र , वही, सर्ग २२-२३

१०५ प्रकृति और काव्य (सस्कृत साहित्य), पृ १२७

१०६ बा रा , अयोध्या, ५४/४०

१०७ द्र , वही, अयोध्या०, सर्ग ९५

१०८ द्र , वही, अयोध्या०, ११९/४-९

१०९ द्र , वही, अरण्य०, १६/४-२६

११० द्र , वही, किष्किन्धा०, सर्ग २८

१११ द्र , वही, किष्किन्धा०, ३०/२-१२

११२ द्र., वही, किष्किन्धा०, १/३-२८

११३ द्र , वही, सुन्दर०, २/५७-५८

११४ महाभा , आरण्यक पर्व, ३८/१९-२१

११५ द्र , भा पु , ५/१३/१-१८

११६ वि पु , ५/६/३७-३९

११७ ऋतुसहार, ६/२

११८ धूमज्योति सलिलमरुता सन्निपात क्व मेघ ।
सन्देशार्था क्व पटुकरणै प्राणिभि प्रापणीया ।। पूर्वमेघ, ५

११६ कुमारसम्भव, १/१

१२० रघुवश, ६/३५

१२१ सौन्दरनन्द, १/६-७

१२२ किरातार्जुनीय, ४/३६

१२३ रावणवध, २/१६

१२४ जानकीहरण, ३/१३

१२५ शिशुपालवध, ४/२०

१२६ नैषधीयचरित १/१३३

१२७ गाथासप्तशती ७/३६ का सस्कृत रूपान्तर।

१२८ गीतगोविन्द, प्रथम सर्ग

१२६ 'अपारस्ते मातर्जयति महिमा कोऽपि जगति।' गगालहरी, श्लोक १६
'नरानूरीकर्तु त्वमिव जननि त्व विजयसे।' वही, श्लोक १७

१३० दशकुमारचरित, पूर्वपीठिका पञ्चमोच्छ्वास, पृ १०२-१०४

१३१ वासवदत्ता (चौखम्बा विद्याभवन), पृ १७३-१७५

१३२ द्र , हर्षचरित (चौखम्बा विद्याभवन), द्वितीय उच्छ्वास, पृ, ७६-८६

१३३ कादम्बरी, (साहित्य भण्डार) पूर्वभाग, पृ ६७-७५

१३४ शिवराजविजय (साहित्य भण्डार), चतुर्थ नि श्वास, पृ ३५०

१३५ स्वप्नवासवदत्तम्, १/१६

१३६ द्र , वही, १/१२

१३७ द्र , अविमारकम्, ४/४

१३८ द्र , चारूदत्तम् १/२६

१३६ अभि शा , ४/१२

१४० मृच्छकटिकम्, १/५७

१४१ रत्नावली, ३/६

१४२ वेणीसहार, २/८

१४३ इन सब नाटककारों की कृतियों का प्रकृति-चित्रण प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में द्रष्टव्य हे।

१४४ नाट्यशास्त्र, २/८५

१४५ कक्ष्याविभागे ज्ञेयानि गृहाणि नगराणि च।
उद्यानारामसरितस्त्वाश्रमा अटवी तथा।।
पृथिवी सागराश्चैव त्रैलोक्य सचराचरम्।
वर्षाणि सप्त द्वीपाश्च पर्वता विविधास्तथा।। वही, १४/४-५

१४६ द्र , वही, २६/१-८

१४७ द्र , नाट्यदर्पण, १/१४ तथा वृत्ति।

१४८ नगरार्णवशैलर्तु चन्द्रार्कोदयवर्णनै । उद्यानसलिलक्रीडा-मधुपानरतोत्सवै ।।
अलकृतम् ।। काव्यादर्श, १/१६

१४६ सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासरा । प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागरा ।।
वर्णनीया । सा द , ६/३२२

१५० द्र , रसार्णवसुधाकर, १/१६२

१५१ वही, १।१८७-१८६

१५२ विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्ति ।

१५३ विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणै । का प्र ४/२८ वृत्ति।

१५४ आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा। कालादीत्यादिशब्दाच्चन्द्रचन्दन कोकिलालापभ्रमर-झकारादय । सा द , ३/१३२ तथा वृत्ति।

१५५ अशास्त्रीयमलौकिक च परम्परायात यमर्थमुपनिबन्धन्ति कवय स कविसमय । काव्यमीमासा, अध्याय १४, पृ १६६

१५६ द्र , वही, अध्याय १४-१६ तथा द्र , सा द , ७/२२-२५

१५७ डॉ नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, पृ २४४-४५

१५८ रस मीमासा, पृ १४३

१५६ द्र , अग्निपुराण, अध्याय २२६

१६० द्र , वही, अध्याय २३०

द्वितीय अध्याय

राम-परम्परा के नाटकों का परिचय

श्रीराम भारतीय सस्कृति के मूल मन्त्र हैं। वे भारतीय जन-मानस के साथ समवाय सम्बन्ध से विराजते हैं। वे अत्यन्त पूजनीय, गुणों के आश्रय, अपने प्रताप से पयोधिमण्डल को आवेष्टित करने वाले, सारे सौभाग्यों की सिद्धि के दाता, अध्यात्म विद्याजन्य आनन्द के मूल स्रोत, कलिकाल के दोष समूह का विनाश करने वाले, सौम्य प्रकृति, सबकी आत्मा स्वरूप, त्रिभुवनवासियों के एकमात्र शरण हैं।[1] उनका नाम निखिल मगलों का आश्रय स्थान, त्रिलोकी को पवित्र करने वालों को भी पवित्र करने वाला, मुक्तिमार्गियों के साधन-पथ का सम्बल, सज्जनों के जीवन का आलम्बन,धर्मकल्पतरु का बीज तथा ऐहिलौकिक विभूति प्रदान करने वाला हैं।[2] राम के उदात्त चरित के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन करते हुए महाकवि जयदेव कहते हैं - **"मेरा यह चित्त-चकोर तो रामचन्द्र में ही अत्यन्त आनन्दित है, जिनकी कीर्ति रूपी चाँदनी के सम्बन्ध से वाल्मीकि का भी वाङ्मय-सागर अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो गया।"**[3]

कविता के प्रथम अवतार महर्षि वाल्मीकि ने ही सर्वप्रथम रामायण में राम के चरित का विशद चित्राकन कर अपनी दिव्यवाणी का सफल प्रयोग किया है। परवर्ती सभी कवियों ने वाल्मीकि के काव्य रूप मूल-धन का उपजीवन कर अपने को उपकृत किया है।[4] **महाकवि मुरारि** कहते हैं -**"यदि मुरारि कवि प्राचीन वाल्मीकि आदि कवियों द्वारा वर्णित रामचन्द्र के चरित को अपनी काव्यकला का आधार न बनायें, तो दूसरा रामचन्द्र समान चरित नायक इस संसार में कहां पाया जायेगा और तब तत्तत् गुण की गरिमा तथा गम्भीरता से पूर्ण वाणी वाले कविगण अपने को महाचरित प्रदर्शन द्वारा कैसे उपकृत कर सकेंगे?"**[5]

भारतीय वाङ्मय में राम के चरित को आधार बनाकर शताधिक ग्रन्थों की रचना हुई है। सस्कृत साहित्य की सभी विधाओं महाकाव्य, खण्डकाव्य, चम्पूकाव्य, नाटक, गद्यकाव्य, स्तोत्र आदि में रामचरित को भरपूर स्थान मिला है[6] और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इनमें सभी कवियों ने वाल्मीकि

रामायण की कथा को मूल स्रोत एव उपजीव्य के रूप में ग्रहण किया है। यहॉ शोध हेतु सगृहीत राम-परम्परा के नाटकों का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है -

भास विरचित दो नाटक

भास सस्कृत साहित्य के प्रथम नाटककार माने जाते हैं। डॉ० नेमिचन्द्र जैन ने भास को चन्द्रगुप्त मौर्य की राज्यसभा का अमात्य कवि मानते हुए इनका समय ईसा पूर्व चतुर्थ शती माना है।[७] उनके अनुसार भास का जन्म उज्जयिनी में हुआ था।[८] महाकवि कालिदास, बाणभट्ट, राजशेखर, जयदेव, दण्डी, शारदातनय आदि कवियों ने अपनी रचनाओं में भास तथा उनके नाटकों का उल्लेख किया है। भास के तेरह नाटक प्राप्त होते हैं जिनमें 'अभिषेक नाटक' एव 'प्रतिमानाटक' राम-कथा पर आधारित हैं।

क. अभिषेकनाटक

अभिषेकनाटक में महाकवि भास ने वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धा काण्ड से लेकर लका काण्ड के उत्तरार्द्ध (सीता-हरण के पश्चात् राम-सुग्रीव मित्रता से लेकर राम के राज्याभिषेक) तक कथा को छ अकों में उपनिबद्ध किया है। नाटक की सक्षिप्त कथा इस प्रकार है-

प्रथम अक में सीता की खोज में लगे राम एव बाली द्वारा निकाले गये सुग्रीव में मित्रता हो जाती है। राम बाली का वध कर देते हैं और सुग्रीव को किष्किन्धा नगरी का राजा बना देते हैं। द्वितीय अक में हनुमान् सीता का अन्वेषण करते हुए लका पहुॅच जाते हैं और वहॉ सीता को देख लेते हैं। तृतीय अक में हनुमान् अशोकवाटिका का विध्वस करते हैं। अक्षयकुमार को मार डालते हैं। मेघनाद हनुमान् को पकडकर रावण के पास ले जाता है। रावण के आदेश पर हनुमान् की पूॅछ में आग लगा दी जाती है। विभीक्षण रावण को सीता को लौटाने के लिये समझाता है, जिस पर रावण विभीक्षण को राज्य से निकाल देता है। चतुर्थ अक में हनुमान् लका से लौट आते हैं। विभीक्षण राम की शरण में आ जाता है। राम सेना सहित लका की ओर प्रस्थान करते हैं। राम की शक्ति से भयभीत वरुण देव उन्हें लका जाने के लिये स्वय समुद्र के जल को दो भागों मे विभक्त कर मार्ग देते है। रावण के मन्त्री शुक एव सारण राम की सेना का बल जानने के लिये आते हैं। विभीक्षण उन्हें पहचान लेते हैं तथा राम से उन्हें दण्डित करने के लिये कहते हैं, परन्तु राम उनके माध्यम से रावण को युद्ध का सन्देश भेजते हैं। पचम

अक में युद्ध में रावण पक्ष के प्रमुख योद्धा मारे जाते है। रावण सीता के पास उसे पीडित करने के लिये राम एव लक्ष्मण के सिरों की प्रतिकृति ले जाता है जिससे सीता मूर्च्छित हो जाती है। रावण राम से युद्ध करने के लिये चला जाता है। षष्ठ अक में राम-रावण युद्ध में रावण की मृत्यु हो जाती है। राम अग्नि-परीक्षा के पश्चात् सीता को स्वीकार कर लेते हैं। वहीं राम का अभिषेक हो जाता है।

प्रस्तुत नाटक में सुग्रीव[९] तथा राम[१०] का अभिषेक होने से इस नाटक का नामकरण उचित है। कवि ने समुद्र-लघन, जटायु-राम मिलन, बालीवध आदि प्रसगो को कुछ परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है। नाटक के नायक रामचन्द्र धीरोदात्त हैं। नाटक का प्रधान रस वीर है। भाषा सरल है, प्राय समासरहित छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है।

ख. प्रतिमानाटक

इस नाटक में रामायण की सम्पूर्ण कथा को बहुत की सक्षिप्त रूप में सात अकों में सग्रथित किया है। प्रथम अक में राजा दशरथ की आज्ञा से राम के राज्याभिषेक की तैयारी चल रही है। अन्त पुर में सीता के पास एक चेटी नेपथ्यपालिनी आर्या रेवा के वल्कल वस्त्र को परिहास में चुराकर लाती है। सीता उससे वल्कल लेकर कौतूहलवश धारण कर लेती हैं। इसी बीच राम उपस्थित हो जाते हैं तथा वे भी वल्कल वस्त्र पहनना चाहते है। कैकेयी के आदेश से राम का अभिषेक रुक जाता है जिस पर लक्ष्मण क्रोध करता है। राम लक्ष्मण एव सीता के साथ वन के लिये प्रस्थान करते हैं। द्वितीय अक में राम आदि के विरह में दु खी दशरथ अपने प्राणों का त्याग कर देते हैं। तृतीय अक में भरत ननिहाल से अयोध्या के लिये लौट रहे हैं। मार्ग मे वे एक प्रतिमागृह को देवालय समझकर उसमें प्रवेश करते हैं। वहॉ पिता दशरथ की प्रतिमा देखकर उसे उनकी मृत्यु का पता लगता है। वह वस्तुस्थिति जानकर मॉ केकेयी पर क्रोध करते हैं तथा मन्त्री सुमन्त्र एव प्रजा के साथ राम को वन से लौटा लाने के लिये अयोध्या से प्रस्थान करते हैं। चतुर्थ अक में भरत दण्डकारण्य में स्थित राम के पास पहुँचते हैं तथा उनकी पादुकाए लेकर अयोध्या लौट आते हैं। पचम अक में पितृ-श्राद्ध के लिये चिन्तित राम के पास सन्यासी वेश में रावण आता है तथा अपने को श्राद्धकल्प में निष्पात बताते हुये राम से पितृ-श्राद्ध के लिये हिमालय के सप्तम शृग पर रहने वाले काञ्चन-पार्श्व नामक मृग को श्रेष्ट बताता है। तभी काञ्चनमृग वहाँ आ

जाता है तथा राम उसे पकडने के लिये जाते हैं। इधर रावण सीता का हरण कर लेता है तथा जटायु रावण पर प्रहार करता है। षष्ठ अक में रावण-जटायु युद्ध में जटायु की मृत्यु हो जाती है। इधर भरत को सीता-हरण आदि का दु खद समाचार मिलता है तथा वह कैकेयी पर बहुत क्रोध करता है। सुमन्त्र भरत को राजा दशरथ की शाप-कथा का सम्पूर्ण भेद बताता है। भरत-सेना सहित रावण पर आक्रमण करने के लिये तैयारी करता है। सप्तम अक में रावण वध करने के पश्चात् राम का जनस्थान पर भरत से मिलन होता है वहीं भरत राम को राज्यभार सौंपता हैं। कैकेयी के आदेश से राम राज्यभार स्वीकारते हैं तथा पुष्पकविमान पर आरूढ होकर अयोध्या को प्रस्थान करते हैं।

महाकवि भास ने प्रतिमानाटक में मूल कथा से कुछ परिवर्तन किए हैं तथा कुछ मौलिक उद्भावनाए की है। वल्कल वस्त्र, प्रतिमागृह, काञ्चन पार्श्वमृग, लका में राम का राज्याभिषेक आदि प्रसग कवि के मौलिक चिन्तन के परिचायक हैं। नाटक का नामकरण अयोध्या के बाहर बनाये गये प्रतिमागृह पर आधारित है। नाटक के नायक राम धीरोदात्त हैं। नाटक का प्रधान रस वीर है। करुण रस की भी मार्मिक अभिव्यजना हुई है। अभिषेकनाटक के समान प्रस्तुत नाटक की भाषा भी सरल है।

दिङ्नागकृत कुन्दमाला

कुन्दमालानाटक के रचयिता महाकवि दिङ्नाग हैं जो दक्षिण भारत स्थित अरारालपुर के रहने वाले थे।[११] यह दिङ्नाग बौद्धकवि धीरनाग से सर्वथा भिन्न हैं।[१२] इनका समय पचमी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के बीच माना जाता है।[१३] कवि ने कुन्दमाला नाटक के प्रारम्भ में मगलाचरण के रूप में श्रीगणेश एव भगवान् की स्तुति की है[१४] तथा भरत वाक्य में भी सर्वप्रथम शिव का स्मरण किया है जिससे प्रतीत होता है कि दिङ्नाग शैव थे।

महाकवि दिङ्नाग ने कुन्दमालानाटक में वाल्मीकीयरामायण के उत्तरकाण्ड के ४४वें सर्ग से ९९वें सर्ग तक की कथा को छ अकों में उपनिबद्ध किया है जिसके अन्तर्गत राम के राज्याभिषेक के पश्चात् सीता निर्वासन से लेकर पृथ्वी द्वारा सीता की पवित्रता घोषित करने एव राम से पुनर्मिलन तक की कथा वर्णित है। कुन्दमालानाटक की कथा सक्षेप मे इस प्रकार है ---

प्रथम अक में लक्ष्मण राम की आज्ञा से गर्भवती सीता को गगा तट

पर छोड आता है। अपने शिष्यों से सीता के विषय में जानकर वाल्मीकि उसे अपने आश्रम में ले आते हैं। गगा तट से चलते समय सीता गगा जी से प्रार्थना करती है कि यदि मैं सुखपूर्वक सन्तान को जन्म दूॅगी तो प्रतिदिन कुन्द नामक पुष्पों की माला बनाकर आपको उपहार दिया करूॅगी। द्वितीय अक में सीता ने लवकुश को जन्म दे दिया है। वाल्मीकि उन्हें रामायण की शिक्षा देते हैं। उधर राम नैमिषारण्य में अश्वमेध यज्ञ करने जा रहे हैं तथा उन्होंने उसमें वाल्मीकि आदि ऋषियों को आमन्त्रित किया है। आश्रम से सभी ऋषि यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये जा रहे हैं। सीता राम के दर्शन पाने के लिये व्याकुल है। अत वह भी वहॉ जाना चाहती है। तृतीय अक में लवकुश एव सीता नैमिषारण्य में पहुॅचते है। उधर गोमती के तट पर चलते हुये राम के चरणों के समीप में लहरों से कुन्द के पुष्पों की एक माला आ जाती है। राम उसे देखने मात्र से ही सीता द्वारा गुॅथी हुई समझते हैं। वे सीता का स्मरणकर उसके वियोग में दु खी होते हैं। इधर समीपवर्ती कुज में खडी सीता राम-लक्ष्मण को देख लेती है। वाल्मीकि शिष्य बादरायण राम-लक्ष्मण को वाल्मीकि के आश्रम में ले आता है। चतुर्थ अक में तिलोत्तमा नामक अप्सरा सीता का रूप धारण करके राम के सीता विषयक भावों को जानना चाहती है। राम आश्रम के सरोवर पर जल के मध्य में सीता का प्रतिबिम्ब देखते हैं तथा विरह से सन्तप्त हो मूर्च्छित हो जाते हैं। वाल्मीकि के प्रभाव से वहॉ स्थित भी सीता अदृष्ट है। वह अपने उत्तरीय से राम को चेतना में लाती है। पचम अंक में लवकुश को विदूषक राम से मिलता है। राम विविध प्रामाणिक सकेतों के आधार पर समझने लग जाते हैं कि ये बालक उन्हीं के पुत्र हैं। षष्ठ अक में लवकुश रामायण की कथा का गान करते हैं। राम कण्व के मुख से लव-कुश को अपना पुत्र जानकर मूर्च्छित हो जाते हैं। सीता उन्हें सचेत करती हैं। वाल्मीकि जी राम को बहुत डॉटते हैं। पृथिवी आकर सीता की पवित्रता बताकर अन्तर्धान हो जाती है। राम सीता को स्वीकार कर लेते हैं एव लव-कुश का राज्याभिषेक कर देते हैं।

नाटककार दिङ्नाग ने कुन्दमालानाटक में कुछ प्रसग अपनी कल्पना से भी जोडे है, जिसमें मुख्य है- वाल्मीकि के साथ जाते हुये सीता का गगा जी को कुन्द-पुष्पों की माला को उपहार रूप में देने का निवेदन तथा कुन्दमाला को देख राम का उसके प्रति आकर्षण। ये सन्दर्भ नाटक के केन्द्र-बिन्दु हैं। इन्हीं के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है। नाटक में चरित्र-चित्रण नैसर्गिक है। करुण रस की अभिव्यञ्जना हृदयस्पर्शी है। भाषा सरल तथा

सरस है। शैली प्रसादगुणयुक्त एव प्राञ्जल है।

भवभूति के दो नाटक

भवभूति रामचरित लेखन परम्परा के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनके पितामह का नाम भट्ट गोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जतुकर्णी था। ये दक्षिणपथस्थित विदर्भ प्रदेश के पद्मपुर के निवासी काश्यपगोत्री ब्राह्मण थे तथा व्याकरण, न्याय और मीमासा के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनके गुरु का नाम ज्ञाननिधि था। कवि का पैतृक नाम सम्भवत श्रीकण्ठ तथा उपाधि प्राप्त नाम भवभूति था।[१५]

महाकवि कल्हण (११५८-५६), वाक्पतिराज, राजशेखर (८८०-६२०) आदि ने भवभूति का नामोल्लेख किया है। वामन (८००ई०) ने उनके एक श्लोक को उद्धृत किया है, जिसके आधार पर उनका समय ७०० ई० के आस-पास माना जाता है।[१६] भवभूति विरचित तीन नाटक प्राप्त होते हैं– १ - महावीरचरित २- मालतीमाधव ३- उत्तररामचरित।

इनमें महावीरचरित एव उत्तररामचरित रामकथा पर आश्रित हैं। इन दोनो नाटकों का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं - -

क. महावीरचरित

महावीरचरित महाकवि भवभूति का प्रथम नाटक है। इसमें रामायण की सम्पूर्ण कथा सात अको में समाविष्ट है। कथा सक्षेप में इस प्रकार है-

प्रथम अक में महर्षि विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा हेतु राम लक्ष्मण को अपने आश्रम में लाते हैं। जनक के भाई कुशध्वज भी सीता और उर्मिला के साथ वहॉ आते हैं। राम अहिल्योद्धार करते हैं जिसे देख कुशध्वज सीता का विवाह राम से करना चाहते हैं, परन्तु पहले की गई धनुर्भंग की प्रतिज्ञा पर दु खी होते हैं। इसी बीच रावण एक दूत के द्वारा सीता से विवाह का प्रस्ताव भेजता है जो किसी को भी स्वीकार नहीं होता। राम ताडकावध करते हैं तथा शिव-धनुष भग करते हैं। राम आदि भाइयों का विवाह जनक एव कुशध्वज की पुत्रियों से निश्चित हो जाता है। राम सुबाहु एव मारीच का भी वध कर देते हैं। द्वितीय अक में रावण का दूत मिथिला का सम्पूर्ण समाचार रावण के मन्त्री माल्यवान् को देता है। वह राम को अपना शत्रु मानते हुये परशुराम को उकसाता है कि वह शिवधनुष को तोडने वाले राम को दण्डित करे। परशुराम राम को दण्ड देने के लिये उनके पास मिथिला में जाते हैं।

तृतीय अक में परशुराम के क्रोध को शान्त करने के लिये उन्हें वसिष्ठ, विश्वामित्र समझाते हैं, परन्तु वे नहीं मानते, इस पर दशरथ भी अस्त्र उठा लेते हैं। इतने में राम आ जाते हैं और गर्वोन्मत्त परशुराम को परास्त करने की प्रतिज्ञा सुनाते हैं। चतुर्थ अक में परशुराम राम से पराजित हो तप करने चले जाते हैं। माल्यवान् पुन राम को मारने के लिये एक योजना बनाता है। वह शूर्पणखा को कैकेयी की दासी मन्थरा के शरीर में प्रवेश कराकर राम के पास भेजता है। शूर्पणखा राम के समक्ष कैकेयी के वरदानों (भरत को राज्य एव राम को वनवास) की चर्चा करती है। राम वन के लिये प्रस्थान करते हैं। भरत उनकी पादुका लेते हैं और नन्दिग्राम में रहकर उसी की पूजा करने का सकल्प लेते हैं। पचम अक में रावण सीता का हरण कर लेता है। राम-लक्ष्मण को उसकी सूचना जटायु से मिलती है। वे किष्किन्धा की ओर चल पडते हैं। वहॉ रावण द्वारा भेजे गये बाली को राम मार देते है। मरते समय बाली राम एव सुग्रीव की मित्रता करा देता है। षष्ठ अक में हनुमान् लका जाकर सीता का पता लगा लेते हैं। राम वानर सेना को साथ लेकर लका पर चढाई कर देते हैं। सप्तम अक में राम विभीषण को लका का राजा बना देते हैं तथा सीता को अग्निपरीक्षा पूर्वक स्वीकार करके विमान से अयोध्या आ जाते हैं, वहा उनका ऋषिजनों द्वारा राज्याभिषेक किया जाता है।

महावीरचरित नाटक में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक भगवान् श्रीराम के महावीर स्वरूप का चित्रण होने से नाटक का नामकरण सार्थक है। भवभूति ने मूलकथा में कुछ परिवर्तन किए हैं। माल्यवान् की राम को मरवाने की योजनाए, शूर्पणखा का मन्थरा के रूप में मिथिला जाना, मिथिला से ही राम का वन गमन, रावण का बाली को राम को मारने के लिये भेजना, राम का प्रत्यक्ष युद्ध में बाली को मारना आदि कथा-प्रसग नवीन तथा परिवर्तन के साथ आए है। इन परिवर्तनों से कवि ने जहा एक ओर कैकेयी के चरित्र की रक्षा की है, वहीं नाटक के नायक राम के व्यक्तित्व को भी उनके महावीर रूप के अनुकूल अकित किया है। नाटक का प्रधान रस वीर है, अन्य रस भी यथास्थान आस्वाद्य हैं। भाषा सरल भी है और क्लिष्ट भी।

ख. उत्तररामचरित

उत्तररामचरित भवभूति का अन्तिम नाटक है। इसमें वाल्मीकीय रामायण के उत्तर काण्ड की कथा को सात अकों में प्रस्तुत किया गया है। नाटक की कथा सक्षेप में इस प्रकार है–

प्रथम अक में राम के राज्याभिषेक के पश्चात् पिता जनक के चले जाने पर सीता बहुत दु खी है। राम उन्हें सान्त्वना देते हैं। सीता के मनोविनोद के लिए लक्ष्मण एक चित्रवीथिका लाता है जिसमें उनके पूर्व चरित चित्रित हैं। उसे देखते हुये सीता गगा-दर्शन की इच्छा व्यक्त करती है। राम दुर्मुख नामक अपने गुप्तचर से सीता के विषय में प्रचलित लोकापवाद सुनकर न चाहते हुये भी सीता का परित्याग करते हैं, वे उसे लक्ष्मण के साथ वन भेज देते हैं। द्वितीय अक में आत्रेयी एव वासन्ती की बातचीत से ज्ञात होता है कि राम अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं, महर्षि वाल्मीकि किसी देवता द्वारा सौंपे गये दो सुन्दर एव कुशल बालकों का पालन कर रहे हैं। राम दण्डकारण्य में जाकर शूद्र तपस्वी शम्बूक का वध करते हैं तथा वहॉ पूर्व वृत्तान्तों का स्मरण कर दु खी होते हैं। तृतीय अक में तमसा एव मुरला नामक दो नदियों के सवाद से ज्ञात होता है कि सीता अपने प्राणों का त्याग करने के लिए गगा में कूद पडी है और वहीं उसने लव-कुश को जन्म दिया। गगा जी के वरदान से पृथ्वी पर कोई सीता जी को नहीं देख सकता। राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम से लौटते हुये पञ्चवटी में आते हैं तथा वहॉ के दृश्य देखकर सीता के साथ बिताए दिनों का स्मरण कर मूर्च्छित हो जाते हैं। सीता अपने सुखद स्पर्श से उन्हें सचेत करती हैं। चतुर्थ अक में वाल्मीकि के आश्रम में वशिष्ठ, अरुन्धती, जनक, कौशल्या आदि आते हैं। तभी वहॉ अन्य ऋषिकुमारों के साथ लव भी आ जाता है। रामसदृश लव को देखकर कौशल्या आश्चर्यचकित हो जाती है। इसी बीच राम के यज्ञ का अश्व आश्रम में आ जाता हैं, लव उसे पकड लेता हैं, अश्वरक्षक उसे ऐसा करने से मना करता है तथा अपने स्वामी चन्द्रकेतु की शक्ति का बखान करते हैं। लव भी अपने धनुष की शक्ति का वर्णन करता है। पचम अक में चन्द्रकेतु भी आश्रम में पहॅच जाता है जिसे देख सैनिक लव पर आक्रमण करते हैं। लव जृम्भकास्त्र के प्रयोग से सैनिकों को स्तब्ध कर देता है। चन्द्रकेतु अपने सैनिकों को युद्ध से रोकता हैं। लव एव चन्द्रकेतु मन ही मन एक दूसरे पर अनुराग करते हैं परन्तु अपने कर्तव्य एव क्षत्रियत्व के प्रति सजग हैं। दोनों में सम्वाद होता है जिसमें लव राम के चरित्र के कुछ प्रसगों पर आक्षेप करता है। अन्तत बात युद्ध तक पहॅुच जाती है। षष्ठ अक मे लव एव चन्द्रकेतु के युद्ध के बीच राम आ जाते हैं। चन्द्रकेतु लव का परिचय देता है तथा उसके द्वारा प्रयोग किए गए जृम्भकास्त्र के विषय में बताता है। राम के कहने से लव अस्त्र को शान्त कर देता है। इसी बीच कुश भी वहॉ आ जाता हैं। राम के हृदय में

लव-कुश के प्रति स्नेह भाव उमड पडता है। वे उन्हें सीता के पुत्र समझते हैं। तभी वशिष्ठ, अरुधन्ती, वाल्मीकि, कौशल्यादि रानियॉ तथा जनक वहॉ आ जाते हैं जिन्हें देख राम व्याकुल हो जाते हैं तथा उनका स्वागत करते हैं। सप्तम अक में राम, प्रजाजन तथा देवताओं की उपस्थिति में वाल्मीकि रचित नाटक का अभिनय होता हैं, जिसमें सीता-त्याग, सीता का गगा में कूदना, दो बच्चों का जन्म देना आदि दृश्य प्रस्तुत किये जाते हैं जिसे देख राम शोकमग्न हो मूर्च्छित हो जाते हैं। अकस्मात् अरुन्धती सीता को लेकर प्रकट होती है। सीता राम की सेवा कर उन्हें सचेत करती है। वाल्मीकि लव-कुश को लाते हैं। अन्तत सबके सुखद मिलन के साथ नाटक समाप्त हो जाता हैं।

उत्तररामचरित महाकवि भवभूति की उत्कृष्ट नाट्य कृति है। इसमें श्री राम के उत्तरचरित अर्थात् लका विजय के बाद का चरित बहुत ही मार्मिक रूप में चित्रित हैं। इस दृष्टि से नाटक का नामकरण उपयुक्त हैं। समालोचकों ने राम के उत्तरचरित के वर्णन में भवभूति को सर्वोपरि माना है।[१७] भवभूति ने मूलकथा को अधिक हृदयस्पर्शी, प्रभावोत्पादक तथा अभिनेय बनाने के लिये उसमें अनेक परिवर्तन एव परिवर्द्धन किए हैं यथा- प्रथम अक में चित्रवीथी की कल्पना कवि की प्रतिभाप्रसूत है। द्वितीय अक में शम्बूक-वध का प्रसग नए रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा इसके माध्यम से राम को पञ्चवटी पहुँचाया गया है। तृतीय अक में छाया (अदृश्य) सीता एव राम-वासन्ती का मिलन, चतुर्थ अक में वाल्मीकि आश्रम में वसिष्ठ, अरुधन्ती, जनक आदि का आगमन नूतन उद्भावना है। सातवें अक में गर्भाक (सीता सम्बन्धी चरित की नाटक रूप में प्रस्तुति) कवि की कल्पनाजन्य है। कवि ने नाटक के अन्त में सभी को मिलाकर सुखान्त बनाया है।

नाटक के नायक श्रीरामचन्द्र हैं जिन्होंने लोकानुरञ्जन के लिये सीता तक के परित्याग का सकल्प लिया है और उसको पूर्ण किया है।[१८] नाटक का अगीरस करुण है। स्वय भवभूति करुण को ही एकमात्र रस मानते हैं।[१९] कवि ने उत्तररामचरित में करुण-रस का प्राधान्य प्रस्तुत कर नाट्यशास्त्र की उस परम्परा को तोडा है जिसके अनुसार नाटक का प्रधान रस वीर अथवा शृंगार माना गया है।[२०] नाटक की भाषा विषय एव भाव के अनुरूप है। प्रकृति का मानवीकरण नाटक की प्रमुख विशेषता हैं।

मुरारिकृत अनर्घराघव

महाकवि मुरारि मौद्गल्य - गोत्रोत्पन्न वर्धमान के पुत्र थे। इनकी माता का नाम तुन्तुमती था।[२१] ये सम्भवत माहिष्मती नगरी के राजा करचुरि के आश्रित कवि थे।[२२] क्योंकि इन्होंने अपने नाटक में माहिष्मती नगरी का बडे आदर के साथ वर्णन किया हैं।[२३] मुरारि ने अपने को बालवाल्मीकि की सज्ञा दी।[२४] डा० राम जी उपाध्याय के अनुसार मुरारि का अनर्घवराघव राम-सम्बन्धी नाट्यविकास की दृष्टि से भवभूति के महाचरित एव राजशेखर (९०० ई०) के बालरामायण के मध्य पड़ता है। अत मुरारि को ८७५ई० के लगभग मानना समीचीन है।[२५] मुरारि की एकमात्र रचना अनर्घराघव प्राप्त है।

अनर्घराघव में वाल्मीकीय रामायण की सम्पूर्ण कथा (उत्तर काण्ड को छोडकर) को सात अङ्को में समाविष्ट कर कुछ नवीनता के साथ प्रस्तुत किया गया है। नाटक की सक्षिप्त कथा इस प्रकार है–

प्रथम अक में महर्षि विश्वामित्र आश्रम में होने वाले यज्ञ की रक्षार्थ राम एव लक्ष्मण को दशरथ से मागकर ले जाते हैं। द्वितीय अक में राम यज्ञ की रक्षा में लगे हैं। एक दिन सायकाल राक्षस आश्रम में उपद्रव मचाते हैं। राम ताडकावध करते हैं तथा अन्य राक्षसों का भी सहार करते हैं। विश्वामित्र रघुकुल का यशगान करते हैं। तृतीय अक में विश्वामित्र राम एव लक्ष्मण को साथ लेकर सीता-स्वयवर में सम्मिलित होने के लिये मिथिला जाते हैं। विश्वामित्र जनक से राम-लक्ष्मण का परिचय देते हैं। जनक अपनी धनुर्भंग प्रतिज्ञा पर दु.खी होते हैं। इसी बीच रावण का पुरोहित शौकल रावण के लिये सीता को मॉगने आता है। तभी राम विश्वामित्र के आदेश पर धनुर्भंग कर देते हैं, शौकल हताश होकर लौट जाता है। चतुर्थ अक में शिवधनु के भग हो जाने से क्रुद्ध परशुराम मिथिला आ जाते हैं। राम के विनय व्यवहार पर भी उनका क्रोध शान्त नहीं होता। अन्त में परशुराम द्वारा दिए गए वैष्णव धनु को चढ़ाकर राम उन्हें शान्त करते हैं। तभी सुग्रीव मित्र जाम्बवान् के कहने पर शरीर में प्रवेश-विद्या से मन्थरा के शरीर में प्रवेश कर सिद्धशबरी कैकेयी का दशरथ के नाम एक पत्र लेकर मिथिला पहुंचती हैं जिसमें राम-वनवास एवं भरत के लिये राज्याभिषेक की बात लिखी है। पत्र को माता की आज्ञा मानकर राम, लक्ष्मण एव सीता के साथ वन चले जाते हैं। पचम अक में भरत राम के पास चित्रकूट पहुॅचते हैं तथा कैकेयी पत्र को झूठा

बताते हुये अयोध्या का राज्य ग्रहण करने के लिये कहते हैं, राम के द्वारा मना कर देने पर भरत राम की पादुकाए लाकर नन्दीग्राम में उन्हें अधिष्ठित करके प्रजा-कल्याण में लग जाते हैं। इधर रावण सीता का हरण कर लेता है तथा सीता की रक्षा के लिये आये जटायु का वध कर देता हैं। आगे राम सुग्रीव मित्रता होती है और राम बाली का वध कर सुग्रीव का अभिषेक करते हैं। षष्ठ अक में वानर सेना सहित राम लका पर आक्रमण करते हैं। युद्ध में इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण आदि के मारे जाने के बाद राम के हाथों से रावण मृत्यु को प्राप्त करता है। सप्तम अक में सीता की अग्नि-परीक्षा के बाद राम पुष्पक-विमान पर आरूढ होकर अयोध्या के लिये प्रस्थान करते हैं तथा मार्ग में अनेकों नदी, पर्वत, नगर आदि स्थानों को देखते हुये अयोध्या पहुँचते हैं। वहाँ राम का राज्याभिषेक हो जाता है।

अनर्घराघवकार ने स्वय स्वीकार किया है कि मैंने वाल्मीकि विरचित रामायण को आधार बनाकर अपने नाटक की रचना की है, मेरी कविता गम्भीर, मधुर- उद्गारशालिनी हैं, नाटक के नायक वीर तथा उदात्त गुणमण्डित भगवान् रामचन्द्र ही हैं।[२६] नाटक का प्रधान रस वीर है तथा अन्य अद्भुत आदि रस भी आस्वाद्य हैं।[२७] मुरारि के नाटक पर भवभूति के महावीरचरित का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। मुरारि ने रामायण की कथा में जो परिवर्तन किए हैं उनमें भी महावीरचरित से साम्य देखा जा सकता है यथा महावीरचरित के समान ही रामवनवास का प्रसग अनर्घराघव में भी मिथिला में ही उठाया गया है। रावण मन्त्री माल्यवान् एव सुग्रीव के मन्त्री जाम्बवान् द्वारा की गयी योजनाए कवि की मौलिक उद्भावना है। सप्तम अक में नाटककार ने महाकाव्य के समान[२८] विविध नगरों, पर्वतों, नदियों का चित्रण कर डाला हैं। नाटक में नाटकीय कला की अपेक्षा पाण्डित्य का प्राधान्य है। भाषा भी क्लिष्ट एव पाण्डित्यपूर्ण है।

शक्तिभद्रकृत आश्चर्य-चूडामणि

नाटक की प्रस्तावना के आधार पर कहा जा सकता है कि शक्तिभद्र दक्षिण भारत के निवासी थे। विद्वानों ने इन्हें केरल प्रदेश का निवासी माना हैं।[२९] नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार एव नटी के पारस्परिक वार्तालाप से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'आश्चर्य-चूडामणि' नाटक दक्षिण देश का सर्वप्रथम प्रसिद्ध नाटक था तथा नाटककार शक्तिभद्र ने 'उन्मादवासवदत्ता' आदि अन्य किसी काव्य की रचना भी की है।[३०] मालवार की जनश्रुति के

अनुसार शक्तिभद्र श्री शकराचार्य (७८८-८२० ई) के शिष्य थे जिस आधार पर इनका समय नवीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जा सकता है।[31]

महाकवि शक्तिभद्र ने आश्चर्यचूडामणि नाटक में वाल्मीकीय रामायण की अरण्यकाण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक की प्रमुख घटनाओं को सात अकों में उपनिबद्ध किया है। नाटक की कथा इस प्रकार है--

प्रथम अक में लक्ष्मण ने श्री राम-सीता के लिये पर्णकुटी बनायी है। तभी शूर्पणखा उसके पास आकर अपना प्रणय प्रस्तुत करती है। लक्ष्मण उससे पुन मिलने का बहाना करके राम के पास चले जाते हैं। राम पर्णकुटी की ओर चलते हुए कैकेयी की प्रशसा करते हैं तथा लक्ष्मण को भी कैकेयी के प्रति आदरभाव का उपदेश देते हैं। लक्ष्मण पिता के प्राण-त्याग का कारण कैकेयी को बताते हैं कि राम पिता दशरथ के प्राणनाश में श्रवणकुमार के माता-पिता के शाप के रहस्य का उद्घाटन करते हैं। द्वितीय अक में शूर्पणखा राम के पास जाकर कहती है कि लक्ष्मण ने उसे अस्वीकार कर दिया। राम पुन उसे लक्ष्मण के पास भेज देते हैं। शूर्पणखा अपना विकराल रूप धारण कर लक्ष्मण को उठाकर आकाश में उड जाती है। यह देखकर राम दु खी होते हैं। तभी शूर्पणखा पृथ्वी पर गिरती है, लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट दिए है। द्वितीय अक में रावण के भय से आश्रम छोडकर जाने वाले मुनिजन राम के निवेदन पर वहीं रुक जाते हैं तथा प्रसन्न होकर राम, लक्ष्मण तथा सीता के लिये क्रमश ॲगूठी, कवच एव चूडामणि देते हैं जिनके स्पर्श से निशाचरों के कपटवेष का पता चल जाता है। तभी सीता के आग्रह पर राम स्वर्णमृग के वेष में स्थित मारीच के पीछे जाते हैं। राम का सा आर्तस्वर सुनकर सीता लक्ष्मण को भी भेज देती है। उधर शूर्पणखा सीता का रूप बनाकर रथ से सीता के पास पहुचता है। सीता को विश्वास में लेकर रावण उसे रथ में बैठाकर आकाशमार्ग से ले जाता है। सीता नीचे राम तथा सीता रूप शूर्पणखा एव राम ऊपर सीता एव राम रूप रावण को देख भ्रम में पड जाते हैं। इधर राम मारीच का वध कर देते हैं जिसे देख शूर्पणखा रो पडती है तथा अपने मूल रूप में आ जाती है एव वास्तविक भेद की बात बता देती है। चतुर्थ अक में राम रूपधारी रावण तथा लक्ष्मण रूपधारी सारथि सीता की चूड़ामणि के स्पर्श से अपने वास्तविक रूप में आ जाते हैं। सीता उन्हें देखकर घबरा जाती है तथा सहायता के लिए राम-लक्ष्मण को पुकारती है। उसके आर्तस्वर को सुन जटायु रावण से सीता को बचाने में ही अपने

प्राण गवा बैठता है। पञ्चम अक में अशोकवाटिका में बैठी सीता को लुभाने के लिये रावण वसन्तोत्सव करता है। कामाभिभूत वह सीता को अपना बनाने का प्रयास करता है। सीता के न मानने पर वह उसको मार देना चाहता है परन्तु मन्दोदरी के आ जाने पर वहा से चला जाता है। सीता निराश हो प्राणान्त करना चाहती है। षष्ठ अक में हनुमान् अशोकवाटिका में सीता के पास पहुच जाते हैं तथा अपना परिचय देने के साथ ही रामविषयक सम्पूर्ण वृत्तान्त राम-सुग्रीव-मित्रता, बालि-वध, सुग्रीव-राज्याभिषेक आदि सीता को बताते हैं। राम की अगूठी सीता को देकर तथा सीता से बदले में चूडामणि लेकर हनुमान् वापिस लौट आते हैं। सप्तम अक में राम रावण का वध करने के पश्चात् विभीषण को लका का राजा बनाते हैं तथा राम के आदेश से सुग्रीव सीता को ले आते हैं। सीता को आभूषणमण्डित देख राम उस पर आक्षेप करते हैं। सीता अग्नि में प्रवेश करती है। सीता पर पुष्पवर्षा के साथ अग्नि तिरोहित हो जाती है। तभी देवर्षि नारद प्रकट होकर सीता की चारित्रिक शुद्धता एव उनके आभूषणमण्डित होने का रहस्य उद्घाटित करते हैं कि अनसूया के वरदान से सीता के शरीर में सलग्न सभी चीजें तुम्हारी दृष्टि में आभूषण ही प्रतीत होंगी। राम सीता को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर अयोध्या लौट जाते हैं।

रामचरित पर लिखे गए रूपकों में 'आश्चर्यचूडामणिनाटक' का उत्तररामचरित के बाद महत्त्वपूर्ण स्थान है। नाटक का शीर्षक आश्चर्यभूत चूडामणि की घटना की प्रधानता के आधार पर रखा गया है। जैसा कि कथा में आया है कि चूडामणि के स्पर्श से रावण के कपटवेष का भेद खुल गया है। यह नाटक की प्रमुख घटना है।[३२] जो कवि की कल्पना शक्ति की उपज है। प्रस्तुत नाटक की अद्भुत घटनाओं एव शीर्षक-योजना के आधार पर इसका प्रधान रस अद्भुत प्रतीत होता है। परन्तु जटायु-रावण युद्ध वर्णन[३३] में वीर रस का भी अच्छा परिपाक हुआ है। नाटक में वैदर्भी रीति में प्रवाहपूर्ण गद्य-पद्य रचनाबन्ध की प्रधानता है। भाषा सरल है।

हनुमान्कृत हनुमन्नाटक

हनुमन्नाटक के रचियता कवि के विषय में विद्वानों में मतभेद है। चौखम्बा वाराणसी से प्रकाशित हनुमन्नाटक हनुमान् द्वारा विरचित कहा गया है। आजकल इसके दो सस्करण प्राप्त होते हैं। प्रथम श्री दामोदर मिश्र सकलित है, जिसमें १४ अक हैं तथा द्वितीय सस्करण 'महानाटक' नाम से

श्री मधुसूदन मिश्र सकलित है जिसमें ६ अक हैं। दोनों सस्करणों में मूल रचियता के रूप में श्री हनुमान् का नाम स्मरण किया गया है। एक जनश्रुति के अनुसार हनुमान् जी ने इस ग्रन्थ को पत्थरों पर खोदकर लिखा था तथा वाल्मीकि के निवेदन पर समुद्र में फेंक दिया था। राजा भोज ने उसे समुद्र से निकलवाकर अपने सभापण्डित दामोदर मिश्र द्वारा सकलित कराया था।[३४] इस नाटक में रामकथाश्रित काव्यों एव नाटकों के अनेक श्लोक उद्धृत किए गए हैं। प दामोदर मिश्र को विद्वानों ने भोज का समकालीन मानते हुये उनका समय ११वीं शताब्दी स्वीकार किया है।[३५]

हनुमान्नाटक में सम्पूर्ण रामायण की कथा १४ अकों में समाविष्ट है। प्रथम अक में भगवान् नारायण राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न रूप चार विग्रह करके राजा दशरथ के घर पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए। महर्षि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को यज्ञ-रक्षार्थ ले गए। मार्ग में राम ने ताटका नामक राक्षसी को मारा। यज्ञ-समाप्ति पर विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को सीता-स्वयवर दिखलाने हेतु मिथिला ले जाते हैं। सीता से विवाह का प्रस्ताव लेकर रावण का एक पुरोहित वहा आता है जिसे जनक अस्वीकार कर देते हैं। राम धनुष तोडते हैं। परशुराम राम पर क्रोध करते हैं तथा राम के वास्तविक रूप को जानकर उन्हें वैष्णव धनुष एव शिवप्रदत्त परशु देकर चले जाते हैं। इसके पश्चात् राम-सीता का विवाह हो जाता है। द्वितीय अक में राम-सीता की प्रणय लीलाओं का चित्रण है। तृतीय अक में श्रवण कुमार के पिता वैश्यमुनि के शाप के प्रभाव से कैकेयी ने राजा दशरथ से दो वर मागे, जिसके परिणामस्वरूप राम लक्ष्मण एव सीता वन चले गये। वहीं पर उपस्थित भरत को बडा दु:ख हुआ और वे नन्दिग्राम में रहकर राज्य चलाने लगे। इधर पचवटी में कनकमृग के आ जाने से सीता के आग्रह पर उसे पकडने राम एव उनके बाद लक्ष्मण चले जाते हैं। चतुर्थ अक में रावण सीता-हरण करता है। उसकी रक्षार्थ रावण से लडता हुआ जटायु घायल हो गया। पचम अंक में सीता-वियोग से दु खी राम सीता को ढूढने के लिये निकलते हैं। मार्ग में घायल जटायु से सीता की सूचना पाकर वे किष्किन्धा पहुॅचते हैं जहॉ उनकी भेंट हनुमान् जी से होती है। हनुमान्जी उन्हें सीता द्वारा गिराए गए आभूषण देते हैं तथा राम एव सुग्रीव की मित्रता कराते हैं। राम बाली को मारकर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाते है। षष्ठ अक में हनुमान् लका जाकर सीता का पता लगाते हैं तथा सीता को राम की मुद्रिका देते हैं। लका-दहन कर वे सीता द्वारा दी गई चूडामणि लेकर लौट आते है। सप्तम अक में

रावण द्वारा निष्कासित विभीषण राम की शरण में आता हैं। राम सेना-सहित समुद्र पारकर रावण पर विजय प्राप्त करने लका पहुँचते है। अष्टम अक में श्रीराम के दूत के रूप में गया अगद रावण को युद्ध की चुनौती देकर लौटता है। नवम अक में मन्दोदरी द्वारा समझाने पर भी रावण सीता को लौटाने को तैयार नहीं है। रावण के दो मन्त्री आकर उसे राम की सेना की अपार शक्ति के सम्बन्ध में बताते हैं। दशम अक में रावण अनेक माया-प्रपचों से सीता को भयभीत करता है, परन्तु सरमा नाम की साध्वी राक्षसी सीता को रावण की माया के विषय में बता देती है। एकादश अक में रावण द्वारा युद्ध के लिये भेजे गए कुम्भकर्ण को राम मार देते हैं। द्वादश अक में मेघनाद सबको नागपाश में बाध लेता है जिसे गरुड काट देता है। मेघनाद यज्ञ करने बैठता हैं, लक्ष्मण वानर सेना की सहायता से यज्ञ-विध्वस कर उसे मार देता हैं। त्रयोदश अक में मेघनाद के वध से क्रुद्ध रावण शक्ति-प्रयोग से लक्ष्मण को मूर्च्छित कर देता है। हनुमान् वैद्य सुषेण के निर्देशानुसार सजीवनी लाते हैं जिसके लेप से लक्ष्मण सचेत हो जाते हैं। चतुर्दश अक में राम रावण का वध करते हैं तथा अग्निपरीक्षा के बाद सीता को स्वीकारते हैं। विभीषण का राज्यभिषेक होता है। इसी बीच अगद पिता की हत्या का बदला लेने के लिये राम को ललकारता है। तभी आकाशवाणी होती है कि इस वैर का बदला तुम कृष्णावार में लोगे। अगद शान्त हो जाता है। राम सपरिवार अयोध्या पहुचते हैं तथ राजकार्य सभालते हैं। सीता को निष्कासित कर वे अपने परम धाम को चले जाते हैं।

हनुमन्नाटक में वाल्मीकीय रामायण की कथा को प्राय ग्रहण किया गया है। कुछ ही प्रसग परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। घटनाओं के वर्णन में मौलिकता है। इस नाटक में श्रीराम को साक्षात् नारायण के रूप में प्रस्तुत किया गया हैं।[३६] रामजी उपाध्याय के अनुसार हनुमन्नाटक नामक नाटक में हनुमान् का उत्कर्ष व्यक्त करने के लिये है।[३७] यह नाटक महानाटक की सज्ञा को प्राप्त हैं, क्योंकि यह महानाटक के लक्षण[३८] के अनुसार दश अकों से अधिक चौदह अकों का नाटक हैं। इस नाटक में गद्याश बहुत कम हैं। नाट्योचित सवाद भी प्राय· पद्यों में है। हनुमान्नाटक की शैली सगीतमय अनुप्रासों से अतिमण्डित है। पचवटी का वर्णन इस शैली में हुआ हैं।[३९]

राजशेखरकृत बालरामायण

महाकवि राजशेखर यायावरवश में उत्पन्न एक श्रेष्ठ कवि है।[४०] इनके

प्रपितामह का नाम अकालजद था जो बहुत ही विद्वान् तथा यशस्वी कवि थे।[४१] इनके पितामह सुरानन्द चेदि देश के मण्डन थे।[४२] इनके पिता का नाम दुहुक अथवा दुर्दक तथा माता का नाम शीलवती था[४३] तथा अपनी पत्नी का नाम अवन्तिसुन्दरी था जो परमविदुषी थी।[४४] राजशेखर ने अपने बालरामायण नाटक में महाराष्ट्र एव विदर्भ का बडी तन्मयता से वर्णन किया है[४५] जिसके आधार पर विद्वान् इन्हें महाराष्ट्री निवासी मानते हैं[४६] इन्होंने अपने ग्रन्थों के मगलाचरण में शिव की स्तुति की हैं।[४७] विद्वानों ने इनका समय नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध एव दसवी शताब्दी के पूवार्द्ध के मध्य माना है।[४८]

राजशेखर ने पॉच ग्रन्थों की रचना की है- कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका, बालरामायण, बालभारत तथा काव्यमीमासा। इनमें बालरामायण रामकथाश्रित नाटक है। इसमें १० अक है। कथानक सक्षेप में इस प्रकार है-

प्रथम अक में विश्वामित्र रामचन्द्र जी को लेने अयोध्या गए हैं। रावण सीता स्वयवर में भाग लेने हेतु मिथिला जा रहा है तथा उसने अपने एक चर को परशुराम से परशु लेने भेजा है। रावण शिव-धनुष तोडे बिना ही सीता से विवाह करना चाहता है जो जनक को स्वीकार नहीं है। रावण मिथिला मे ही दो-तीन दिन के लिये रुक जाता है। द्वितीय अक मे परशुराम रावण के लिये अपना परशु नही देते, अपितु उस पर क्रोध करते हैं तथा मिथिला पहुच जाते हैं जहा रावण से उनका विवाद हो जाता है। शिवगण भृगिरिटि दोनो को शान्त करते हैं। तृतीय अक में यज्ञ रक्षार्थ राम ने ताटका का वध कर दिया है। रावण के समक्ष सीता-स्वयवर नामक नाटक का अभिनय हो रहा है जिसमें राम शिवधनुष तोडकर सीता से विवाह करते हैं जिसे देख रावण उत्तेजित होता है तथा प्रतिहारी के समझाने पर शान्त होता है। चतुर्थ अक में धनुर्भंग के समाचार से क्रुद्ध परशुराम राम से युद्ध करने मिथिला आ रहे हैं। इधर सीता से विवाह कर राम अयोध्या प्रस्थान करने वाले है। वे परशुराम का विनम्रता पूर्वक सत्कार करते हैं। परशुराम शान्त नहीं होते, अन्तत उनके द्वारा दिए गए वैष्णव-धनुष को लक्ष्मण आरोपित करते है तथा जनक उर्मिला से उनका विवाह कर देते हैं। परशुराम राम-लक्ष्मण को मिथिला की समीपवर्ती भूमि में युद्ध के लिये आह्वान करते हुए चले जाते हैं। पचम अक में रावण लकानगर में सीता-वियोग से सन्तप्त है। उसके सन्तोष के लिये यन्त्र-सीता का निर्माण कराया जाता है, जिसे वह कुछ देर तक वास्तविक समझकर प्रसन्न होता है, पर अन्त में उसे कृत्रिम जान दु खी होता है। तभी शूर्पणखा नाक कटाकर लौटती है जिस पर रावण अत्यन्त

क्रोध करता है। षष्ठ अक में दशरथ एव कैकेयी देवलोक में इन्द्र के पास गए हुए हैं। पीछे राक्षस मायाजाल रचतें हैं, जिसमें मायामय और शूर्पणखा क्रमश दशरथ और कैकेयी बनकर अयोध्या पहुचते हैं। माया-कैकेयी माया-दशरथ से राम-वनवास एव भरत का राज्याभिषेक रूप दो वर मागती है। राम वन चले जाते हैं, इधर दशरथ को देवलोक से लौटने पर राम-वन-गमन, राम की पादुकाओं का नन्दिग्राम में भरत द्वारा स्थापन, सीता-हरण, जटायु-वध आदि की सूचना मिलती है। यह सुनकर दु खी दशरथ प्राण त्यागकर स्वर्गगमन की कामना करते हैं। सप्तम अक में राम वानरों की सहायता से लका पर आक्रमण करने के लिये सेतु निर्माण करते हैं। लका में युद्ध के समय रावण माया-सीता का सिर काटकर राम के सम्मुख भेजता है जिससे राम क्षणभर के लिये भ्रमित हो जाते हैं, बाद में वास्तविकता समझ जाते हैं। अष्टम अक में युद्ध में मेघनाद एव कुम्भकर्ण का वध होता है। नवम अक में युद्ध में राम-सेना के वीरों द्वारा रावण -सेना के वीरों का वध किए जाने का विस्तृत वर्णन है। अन्तत राम रावण का वध कर देते है। दशम अक में राम पुष्पक विमान द्वारा लका से चलकर मार्ग में विविध स्थानों से होते हुए अयोध्या पहुचते हैं जहा उनका राज्याभिषेक होता है।

बालरामायण की कथा का मूलाधार वाल्मीकीय रामायण है, इसका स्पष्ट सकेत राजशेखर ने स्वय किया है। मूलकथा में अनेक परिवर्तन एव परिवर्धन किए गए हैं जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माया-दशरथ एव माया-कैकेयी का प्रसग है जिसके आधार पर कवि ने कैकेयी पर लगे पारम्परिक कलक को धो दिया है। नाटक में पात्रों की बहुलता है। राम भगवान् विष्णु के अवतार हैं उनका चरित्र धीरोदात्त है।[६६] कवि ने नाटक में वीर और अद्भुत रसों की विशेष योजना की है। नाटक में गद्याश की अपेक्षा पद्याश अधिक है। भाषा पात्र एव परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है। सरल एव क्लिष्ट दोनों ही तरह की भाषा यहा द्रष्टव्य है।

जयदेवकृत प्रसन्नराघव

प्रसन्नराघव नाटक के रचयिता महाकवि जयदेव हैं। नाटक की प्रस्तावना में कवि ने अपना सक्षिप्त परिचय दिया हैं, जिसके अनुसार वे कुण्डिनगोत्र में उत्पन्न महादेव के पुत्र हैं, उनकी माता का नाम सुमित्रा है।[६७] यह जयदेव चन्द्रालोककार जयदेव ही हैं क्योंकि चन्द्रालोक के प्रत्येक मयूख के अन्त में ग्रन्थ के रचयिता ने अपने पिता का नाम महादेव तथा माता का नाम सुमित्रा

लिखा है।[५१] इनका अपर नाम पीयूषवर्ष था जैसा कि उन्होंने चन्द्रालोक के प्रारम्भ में लिखा है।[५२] यह कवि गीतगोविन्दकार जयदेव से सर्वथा भिन्न है क्योंकि गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव के पिता का नाम भोजदेव तथा माता का नाम राधा देवी था।[५३] जयदेव के आराध्यदेव भगवान् विष्णु की स्तुति की है।[३] जयदेव कवि होने के साथ न्यायशास्त्र में पारगत हैं।[५४] विद्वानों ने इनका समय १२५० ई० के आसपास माना है।[५५]

जयदेव की दो रचनाए उपलब्ध हैं- चन्द्रालोक एव प्रसन्नराघव। चन्द्रालोक अलकारशास्त्र का ग्रन्थ है तथा प्रसन्नराघव रामकथाश्रित नाटक है। इस नाटक में कवि ने रामायण की सीतास्वयंवर से लेकर राम द्वारा रावण का वध कर अयोध्या लौटने तक की कथा को सात अको में सग्रथित किया है। सक्षिप्त कथा इस प्रकार है---

प्रथम अक में बाणासुर एव रावण सीता-स्वयवर में भाग लेने के लिये मिथिला आए हैं। दोनों ही धनुष उठाने में असमर्थ हैं तथा वाद-विवाद करते हैं। बाणासुर नन्दवन उखाडने के लिये वहा से चला जाता है। रावण सीता-हरण का विचार बनाता है। द्वितीय अक में विश्वामित्र दशरथ से यज्ञ की रक्षा के लिये राम-लक्ष्मण को मॉगकर ले गए हैं। राम ताडका एव सुबाहु का वध करते हैं। वे लक्ष्मण के साथ मिथिला की शोभा देखते हुए चण्डिकामन्दिर में पहुॅचते हैं जहॉ सीता पूजा के लिये पहले ही आयी हुयी है। राम एव सीता प्रथम दर्शन मात्र से ही परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। तृतीय अक में विश्वामित्र मिथिला पहुॅचकर राम-लक्ष्मण का परिचय जनक से कराते है। इधर परशुराम का सन्देश लेकर एक मुनि आता है कि शिवधनुष को खींचने की प्रतिज्ञा के बिना ही सीता का विवाह किसी राजकुमार से कर दिया जाए। जनक उसे अस्वीकार कर देते हैं। राम धनुष तोडकर सीता से विवाह करतें है। चतुर्थ अक में शिवधनुष के टूटने से क्रुद्ध परशुराम मिथिला आते है। वे राम-लक्ष्मण के प्रति अपनी वीरता का बखान करते है परन्तु फिर राम द्वारा वैष्णव धनुष चढा दिए जाने पर उनके समक्ष नतशिर हो जाते हैं। राम के विनम्रतापूर्वक प्रणाम किए जाने पर परशुराम उन्हें शुभाशीर्वाद देकर चले जाते हैं। पचम अक में कैकेयी द्वारा राजा दशरथ से वर मॉगने से लेकर सीता-हरण तक के कथा प्रसगों को गगा, यमुना, सरयू, कलहस एव समुद्र के वार्तालाप के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। षष्ट अक में रत्नशेखर नामक विद्याधर के इन्द्रजाल द्वारा राम लका में सीता की स्थिति,

हनुमान् द्वारा अक्षकुमार को मारने, अशोक वध से सीता के समक्ष राम की अगूठी डालने तथा सन्देश देने, हनुमान् द्वारा लका-दहन आदि घटनाओं को देखते हैं। सप्तम अक में रावण द्वारा निष्कासित विभीषण राम की शरण में आता है। राम वानर-सेना के साथ समुद्र पाकर लका पहुचते हैं। युद्ध में कुम्भ-कर्ण, मेघनाद तथा रावण सभी मृत्यु को प्राप्त करते है। राम सीता एव लक्ष्मण के साथ पुष्पक-विमान द्वारा अयोध्या चले जाते हैं।

प्रसन्नराघवनाटक में जयदेव ने रामायण की कथा को अनेक परिवर्तनों के साथ चित्रित किया है। पचम अक में गगा-यमुना आदि नदियों के वार्तालाप से एव षष्ठ अक में इन्द्रजाल से अनेक कथा-प्रसगो का वर्णन हुआ है जो कवि का मौलिक चिन्तन है। नाटक का प्रधान रस वीर है। भाषा सरल तथा लालित्यपूर्ण है। कवि का पाडित्य-प्रदर्शन भी पर्याप्त है। प्रसन्नराघव में नाटकीय-सौन्दर्य की अपेक्षा सूक्ति-सौन्दर्य अधिक है।

महादेवकृत अद्भुतदर्पण

अद्भुतदर्पण के रचयिता महादेव कौण्डिन्यवश में उत्पन्न एक श्रेष्ठ कवि थे। इनके पिता का नाम कृष्णसूरि[५५] तथा गुरु का नाम बालकृष्ण था।[५६] ये दक्षिण देश में स्थित तञ्जौर के निकट कावेरी के तट पर पलमारनेरी के निवासी थे तथा अद्भुतदर्पण की रचना अपनी युवावस्था में लगभग १६०० ई० के आसपास की थी।[५७]

अद्भुतदर्पण अद्भुत घटनाओं से परिपूर्ण रामकथाश्रित १० अकों का महानाटक है। कथा सक्षेप में इस प्रकार है- प्रथम अक में राम लका पहुचकर रावण के पास अगद द्वारा सन्धि का प्रस्ताव भेजते हैं। इधर लका में रावण मय, शबर, विद्युद्जिह्व आदि मायावियों को बुलवाता है। ये सभी मायावी राक्षस विविध रूप धारणकर राम-सेना में भ्रान्तिया पैदा करते हैं। द्वितीय अक में शम्बर सुग्रीव-मन्त्री दधिमुख का रूप धारण कर राम से कहता है कि अगद रावण से मिल गया है तथा वानरों को पीडित कर रहा हे। सुग्रीव भी मारा जा चुका हे। यह सुनकर राम-लक्ष्मण वानरों की सहायतार्थ चल पडते हैं। तृतीय अक में शम्बर अगद का रूप धारणकर राम-लक्ष्मण के समक्ष सुग्रीव के कृत्रिम सिर को लाकर पटक देता है जिससे वे दु:खी होते हैं, परन्तु साथ ही वे छाया अगद के कृत्रिम व्यवहार को देखकर यह समझ लेते हे कि यह अगद नहीं है। तभी सुग्रीव आ जाता हे, राम प्रसन्न हो जाते हैं। चतुर्थ अक में रावण का सेनापति प्रहस्त अगद वेशधारी शम्बर को बन्दी

बना लेता है परन्तु बाद में वास्तविकता जानकर उसे छोड देता है। तभी जाम्बवान् आकर शम्बर को पकड लेता है। युद्ध में प्रहस्त मारा जाता है। पचम अक में माल्यवान् एव मय नामक राक्षसों की बातचीत से ज्ञात होता है कि रावण एव विभीषण में वैर हो गया है, इधर सुग्रीव के आक्रमण से रावण के मुकुट से गिरी अद्भूतदर्पण मणि को विभीषण ने राम को दे दिया है। उधर शूर्पणखा राम का कृत्रिम सिर सीता के सामने रखती है, जिसे देखकर सीता मूर्च्छित हो जाती है तथा त्रिजटा द्वारा राम की वीरता एव कुशलता का वृत्तान्त सुनने पर वह सचेत हो जाती है। षष्ठ अक में राम एव लक्ष्मण अद्भुतदर्पण-मणि द्वारा लका में रावण के दुश्चरित को देखते हैं। रावण का मन्त्री महोदर उसे कहता है कि माया-सीता बनाकर राम को लौटा दी जाए, परन्तु रावण उसे अस्वीकार कर देता है तथा सीता को मनाने का उपाय सोचता है। सप्तम तथा अष्टम अक में राम एव लक्ष्मण अद्भुतदर्पण मणि की सहायता से अशोकवाटिका का दृश्य देखते है। रावण राम का रूप धारण कर सीता की ओर जाता है परन्तु त्रिजटा एव सीता को परस्पर बातचीत करते देख छिपकर उनकी बातें सुनता है। त्रिजटा माया-योग से सीता को राम एव लक्ष्मण की वीरता दिखलाती है। इसी बीच रावण को कुम्भकर्ण एव मेघनाद के वध की सूचना मिलती है और वह स्वय युद्ध के लिये चला जाता है। नवम अक में लका एव निकुम्भिला के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि हनुमान् जी ने लका-दहन कर दिया है। राम विभीषण को लका का राजा बनाने वाले हैं। राम ने रावण का वध कर दिया है। दशम अंक में मय राक्षस शूर्पणखा की सहायता से छलपूर्वक सीता को पुन राम से अलग करना चाहता है, परन्तु सफल नहीं हो पाता है। इधर अग्नि में प्रविष्ट सीता को स्वय अग्निदेव राम को समर्पित करते हैं। राम, लक्ष्मण एव सीता पुष्पक विमान से अयोध्या पहुचते हैं जहा श्री राम का राज्याभिषेक होता है।

अद्भुतदर्पण अद्भुत घटनाओं से परिपूर्ण एक विचित्र नाटक है। नाटक का नामकरण नाटक के विशेष कथा-प्रसग के आधार पर हुआ है। रावण का श्वसुर मय उसे उपहार के रूप में एक अद्भुतदर्पण देता है जिसमें तीन योजन के घेरे में होने वाली सभी क्रियाओं को प्रतिबिम्बित देखा जा सकता था।[५८] नाटक में मायाजन्य घटनाओं का बाहुल्य है। राम का चरित्र अत्यन्त उदात्त है। अगीरस के रूप में अद्भुत रस आस्वाद्य है। भाषा सरल तथा भावाभिव्यक्ति के अनुकूल है।

लक्ष्मणसूरिकृत पौलस्त्यवध

पौलस्त्यवध के रचयिता लक्ष्मणसूरि का जन्म मद्रास के तिन्नेवल्ली जनपद में पुरुनाल में १८५६ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम मुथु सुब्बा भारती था जो एक उच्चकोटि के विद्वान् थे तथा सस्कृत-तमिल के लेखक थे। अपने गुरु सुब्बा दीक्षित से इन्होंने व्याकरण एव दर्शन की शिक्षा प्राप्त की। शिक्षोपरान्त इन्होंने अध्यापन कार्य किया। बाद में ये परिव्राजक बन गए तथा इन्होंने विविध तीर्थस्थानों पर भारतीय सस्कृति एव अध्यात्म दर्शन पर प्रवचन किये। सन् १६०३ में मैसूर के दीवान ने उनके तञ्जौर में शुभागमन के अवसर पर सूरि की उपाधि से विभूषित किया। उनके पाण्डित्य से प्रभावित होकर भारतीय सरकार ने १६१६ ई० में महामहोपध्याय उपाधि से समलकृत किया था। पोलस्त्यवध के अतिरिक्त लक्ष्मणसूरि ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है तथा अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थों पर टीकाए लिखी हैं।[५६]

पौलत्स्यवध छ अकों का नाटक है। इसमें कवि ने विराध की मृत्यु के बाद की रामायण की कथा को बिना किसी परिवर्तन के प्रस्तुत किया है। नाटक की सक्षिप्त कथा अकानुसार इस प्रकार है -

प्रथम अक में राम द्वारा विराध का वध, शूर्पणखा का राम एव लक्ष्मण के पास जाना तथा उनसे विवाह के लिये आग्रह करना, मना करने पर शूर्पणखा का सीता पर झपटना और अन्त में राम की आज्ञा से लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा का विरूपण आदि वर्णित हैं। द्वितीय अक में राम द्वारा खरादि राक्षसों का वध तथा रावण द्वारा सीता-हरण का वर्णन है। तृतीय अक में लक्ष्मण द्वारा कबन्ध का वध तथा राम की सुग्रीव से मित्रता का अकन है। चतुर्थ अक में राम द्वारा बाली वध करना, हनुमान् का लका पहुचना, राम की अगूठी सीता को देना तथा सीता की चूडामणि राम को देने का नैसर्गिक वर्णन हैं। पचम अक मे रावण द्वारा विभीषण का अपमान एव निष्कासन, विभीषण का राम की शरण में जाना तथा अगद का दूत रूप में रावण के पास जाना वर्णित है। षष्ठ अक में विश्वामित्र के आश्रम में एक उपरूपक खेला जाता है जिसमें राम एव रावण का युद्ध, भरत का माताओं सहित वहा आगमन, रावण का वध, सीता की अग्नि-परीक्षा तथा राम का अयोध्या लौटना आदि का अभिनय होता है। इधर राम का आगमन जानकर भरत द्वारा अभिषेक की तैयारी किए जाने का वर्णन है।

लक्ष्मणसूरि ने पौलस्त्यवध नाटक में राम-कथा को प्राय रामायण के आधार पर ही प्रस्तुत किया है। छटे अक में उपरूपक का सयोजन नवीन कल्पना है। नाटक के नायक राम सर्वगुणसम्पन्न धीरोदात्त हैं। अगीरस वीर है। भाषा क्लिष्ट तथा परिमार्जित है।

विश्वेश्वरदयालुकृत प्रसन्नहनुमन्नाटक

प्रसन्नहनुमन्नाटक के रचियता विश्वेश्वरदयालु बरालोकपुर (इटावा, उ०प्र०) के निवासी है। यह कवि 'अनुभूतयोगमाला' के सम्पादक तथा 'हरिहर नामक औषधालय के प्रर्वतक एक वैद्यराज थे जिन्हें 'अवनीतलाश्विनीकुमार' तथा 'आधुनिकधन्वन्तरि' की उपाधि प्राप्त थी। इन्हें इस बात का बडा कष्ट था कि आधुनिक युग में सस्कृत भाषा के प्रति लोगों की अरूचि है तथा नवीन साहित्य रचना के प्रति भी विद्धान् विशेष इच्छा नहीं रखते। सस्कृत भाषा की स्मृद्धि के उद्देश्य से ही विश्वेश्वर ने प्रसन्नहनुमान की रचना की है।[६०] इनकी दूसरी रचना 'मुकुन्दलीलामृतनाटक' है।[६१]

प्रसन्नहनुमन्नाटक में पाच अक हैं। इस नाटक में राम-सुग्रीव मित्रता से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा समाविष्ट है। कथा सक्षेप में इस प्रकार है-

प्रथम अक में हनुमान् जी का दिव्य तेज से जन्म तथा राम-सुग्रीव-मित्रता का भावात्मक वर्णन है। द्वितीय अक में राम द्वारा बाली का वध एव सुग्रीव का राज्याभिषेक तथा अगद का युवराज पद पर अभिषेक, सुग्रीव द्वारा सीता को ढूढने के लिए वानरों को भेजना, सुग्रीव द्वारा सीता के गिरे हुए आभूषण राम को देना तथा रामचन्द्र जी की मुद्रिका लेकर हनुमान् की पूछ में आग लगाने की आज्ञा, हनुमान् द्वारा लका-दहन, हनमान् द्वारा राम की अगूठी सीता को दिया जाना, सीता की चूडामणि लाकर राम को देना वर्णित है। चतुर्थ अक में सेना सहित राम का समुद्र पार करना, विभीषण का राम की शरण में जाना, रामदूत बनकर अगद का रावण के पास जाना, सीता को लौटाने के लिये आग्रह करना तथा युद्ध का आरम्भ होना वर्णित है। युद्ध में कुभकर्ण तथा मेघनाद का वध, मेघनाद की भुजा को सुलोचना के समक्ष गिराना वर्णित है। पचम अक में रावण द्वारा पाताल से अहिरावण को बुलाया जाना, अहिरावण द्वारा राम एव लक्ष्मण को पाताल में ले जाना, दोनों की बलि देने का आयोजन, हनुमान् द्वारा अहिरावण का वध, करके राम एव लक्ष्मण को पाताल से लाना वर्णित है। इसके पश्चात् विभीषण के परामर्श से

राम द्वारा रावण की नाभि पर बाण चलाना, रावण-वध सीता की अग्निपरीक्षा, राम, लक्ष्मण एव सीता सहित अयोध्या लौटना तथा राम का राज्याभिषेक वर्णित है।

प्रसन्नहनुमन्नाटक की कथा को कवि ने कुछ नवीन उद्भावनाओं के साथ प्रस्तुत किया है। यथा राम-सुग्रीव-मित्रता प्रसग में दिखलाया गया है कि हनुमान् तथा सुग्रीव को राम की दिव्यता का पहले से ही ज्ञान है। वे स्वय राम से मित्रता के इच्छुक होकर उनके पास जाते हैं। तृतीय अक में हनुमान् जी के माध्यम से सीता का चूडामणि के साथ एक लम्बा पत्र भेजना पूर्णत नवीन कल्पना है। नाटक के नाायक राम विष्णु के अवतार के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। नाटक का अगीरस वीर हैं, शृगार तथा करुण का भी मनोरम परिपाक हुआ है। प्रााय भाषा सरल है तथा वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ हैं।

सन्दर्भ

१ द्र , हनु ना , १/४

२ द्र , वही, १/२

३ मम तु रामचन्द्र एव निर्भरमानन्दितोऽय चित्तचकोर । यत्कीर्तिचन्द्रिका-चुम्बितोऽय वाल्मीकेरपि सारस्वतसागर समुल्लास । प्र रा. अक१, पृ ।४

४ सकलकविसार्थसाधारणी खल्विय वाल्मीकीया सुभाषितनीवी।
वाल्मीकि फलति स्म यस्य चरितस्तोत्राय दिव्या गिर । अ रा , अक१, पृ ८ तथा श्लोक ८

५ वही, १/६

६ द्र, क कल्याण, रामाक, वर्ष ४६, जनवरी १६७२, पृ ५३८-५६६
ख डॉ मजुला सहदेव, वाल्मीकि रामायण एव सस्कृत नाटकों में राम, पृ १-२३
ग डॉ प्रमिला अवस्थी, हिन्दी रामकाव्य- नये सन्दर्भ, पृ ५१-७४

७ द्र , महाकवि भास, पृ. ४२

८ द्र , वही, पृ १२-१७

६ सुग्रीवस्याऽभिषेक कल्प्यताम्। अभि , अक१ पृ.२२

१०. द्र, वही, ६/३२

११ आदिष्टोऽस्मि परिषदा-तत्रभवतोऽरारालपुरवास्तव्यस्य कवेर्दिङ्नागस्य कृति कुन्दमाला नाम। कुन्द , प्रथम अक, स्थापना।

१२ द्र , कुन्द (स श्री मदन मोहन शर्मा) भूमिका, पृ १२-१३

१३ द्र , वही, पृ १४-१६

१४ द्र् , वही, १/१-२

१५ द्र , म च , प्रथम अक, प्रस्तावना।

१६ द्र , उ च , भूमिका पृ १०-१४ (साहित्य भण्डार प्रकाशन)

१७ नाटके भवभूतिर्वा वय वा वयमेव वा।
उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।।
डा गगासागर राय, महाकवि भवभूति, पृ ३ पर उद्धृत

१८ स्नेह, दया च सौख्य च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।। उ च , १/१२

१९ 'एको रस करुण एव '। वही ३/४७

२० एक एव भवेदङ्गी शृगारो वीर एव वा।
सा द , ६/१०

२१ अस्ति मौद्गल्यगोत्रसम्भवस्य महाकवेर्भट्टश्रीवर्धमानतनुजन्मनस्तन्तुमतीनन्दनस्य मुरारे कृतिरभिनवमनर्घराघव नाम नाटकम्। अ रा अक १, पृ ९-१०

२२ द्र., चन्द्रशेखर पाण्डेय, सस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ २०७

२३ इय च करचुरिकुलनरेन्द्र-साधारणाग्रमहिषी माहिष्मती नाम चेदिमण्डलमुण्डमाला नगरी। अ रा , अक ७, पृ ४७८

२४ मुरारिनामधेयस्य बालवाल्मीके. । वही, अक१, पृ१३

२५ द्र , मध्यकालीन सस्कृत नाटक, पृ ५७

२६ द्र., अ रा., अक१, प्रस्तावना

२७ द्र , वही १/६

२८ सध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासरा।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागरा।। सा द , ६/३२२

२९. द्र, आ चू. (स प रमाकान्त झा), भूमिका पृ ११

३० उन्मादवासवदत्ताप्रभृतीना काव्याना कर्तु कवे शक्तिभद्रस्येद प्रज्ञाविलसितम्।।। वही, अक १, प्रस्तावना।

३१ द्र , वही, भूमिका, पृ १२

३२ द्र , आ चू , ३/८ तथा अक ४-पृ १२३-१२६

३३ द्र वही, अक ४-पृ १२६-१३२

३४ द्र , हनु ना , भूमिका, पृ ६-११

३५ द्र , वही. भूमिका, पृ १२-१४

३६ द्र वही, १/५

३७ द्र , मध्यकालीन सस्कृत नाटक, पृ १

३८ एतदेव यदा सर्वै पताकास्थानकैर्युतम्। अङ्कैश्च दशभिर्धीरा महानाटकमूचिरे।। सा द ६/२२३

३९ द्र, हनु ना ३/२२

४० फुल्ला कीर्तिर्भ्रमति सुकवेर्दिक्षु यायावरस्य। बा रा १/६

४१ द्र , वही, १/१३

४२ द्र , वही (डॉ गगा सागर राय) भूमिका, पृ २-३

४३ द्र , वही, भूमिका, पृ ४

४४ द्र , वही, भूमिका, पृ ५-६

४५ द्र , वही, १०/७५-७६

४६ द्र , वही, भूमिका, पृ ७

४७ द्र , बालभारत, १/१-२, विद्धशालभञ्जिका, १/३

४८ द्र , बा रा , भूमिका, पृ १४-१६

४९ धीरोदात्त जयति चरित रामनाम्नश्च विष्णो । वही, १/६

५० द्र , प्र रा , १/१४-१५

५१ महादेव सत्रप्रमुखमखविद्यैकचतुर सुमित्रा तद्भक्तिप्रणिहितमतिर्यस्य पितरौ। चन्द्रालोक, १/१६

५२ चन्द्रालोकमयं स्वय वितनुते पीयूषवर्ष कृती। वही, १/२

५३ श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु।। गीतगोविन्द, १२/५

५४ द्र , वही, १/१-३

५५ नन्वय प्रमाणप्रवीणोऽपि श्रूयते, वही, पृ. २२

५६ द्र , क- प्र रा प्रस्तावना, पृ ६
ख- प्र रा उपोद्घात, पृ २१

५७ द्र , अ द , अक १-पृ ४

५८ द्र , वही, ग्र क प्रशस्ति श्लोक ३, पृ १४५

५९ द्र , वही, अक १-पृ १ तथा राम जी उपाध्याय, आधुनिक सस्कृत नाटक, भाग १-पृ २०६

६० द , अ द १/२३

६१ द्र , रामजी उपाध्याय, आधुनिक सस्कृत नाटक, भाग २, पृ ७७०

६२ द्र , प्र हनु , प्रथम अक, पृ २-४

६३ द्र , रामजी उपाध्याय, आधुनिक सस्कृत नाटक, भाग २, पृ ११६३-६४

तृतीय अध्याय

रामाश्रित नाटकों में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण

काव्य-जगत् में कवि का स्थान प्रजापति के समान है। वह अपनी प्रतिभा का आश्रय लेकर विविध रूपात्मक एव भावात्मक काव्य की सृष्टि करता है।[1] उसकी सृष्टि प्रजापति की सृष्टि की अपेक्षा अधिक विलक्षण तथा आनन्ददायक है।[2] कवि-दृष्टि जब लोक में प्रवृत्त होती है तो वह उसके विशाल से विशाल पदार्थ का भी सूक्ष्म एव गहन अध्ययन करती है। कवि अपनी कल्पना-शक्ति से उस पदार्थ का ऐसा चित्राकन करता है कि वह लोकोत्तर लगने लगती है और सहृदय के हृदय को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। कवि का चेतन-मन लौकिक जगत् की प्रत्येक वस्तु को अपना विषय बनाता है परन्तु प्राकृतिक पदार्थो में वह अधिक रमता है। हिन्दी के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त के हृदय को नारी-सौन्दर्य की अपेक्षा प्राकृतिक-सौन्दर्य ने अधिक आकृष्ट किया है। वे कहते हैं–

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?।।'[3]

कवि जब एक कथा-चित्र को लेकर काव्य-सृजन में प्रवृत्त होता है तो प्रसगत प्राप्त-प्राकृतिक तत्त्व उसे अनायास ही मोहित कर लेते हैं। वह उसके सौन्दर्य में निमग्न हो जाता है। उस स्थिति में प्रकृति कवि की प्रतिभा का आधार बन जाती है तथा वह उसका सागोपाग वर्णन करता है। यह प्रकृति का शुद्ध एव स्वतन्त्र वर्णन है जिसे प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन कहा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बडे स्पष्ट तथा सरल शब्दों में इसका विश्लेषण किया है- **''किसी वर्णन में आयी वस्तुओं का मन में ग्रहण दो प्रकार का हो सकता है- बिम्ब ग्रहण और अर्थग्रहण। किसी ने कहा 'कमल'। अब इस 'कमल' पद का ग्रहण कोई इस प्रकार भी कर सकता है कि ललाई लिए हुए सफेद पंखुडियों और झुके हुए नाल आदि के सहित एक फूल की मूर्ति मन में थोड़ी देर के लिये आ जाए या कुछ**

देर बनी रहे और इस प्रकार भी कर सकता है कि कोई चित्र उपस्थित न हो, केवल पद का अर्थ मात्र समझकर काम चला दिया जाये। काव्य के दृश्य-चित्रण में पहले प्रकार का सकेत ग्रहण अपेक्षित होता है और व्यवहार तथा शास्त्र में दूसरे प्रकार का। बिम्ब वहीं होता है जहॉ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अग-प्रत्यग, वर्ण, आकृति तथा उनके आसपास की परिस्थिति का परस्पर सश्लिष्ट विवरण होता है। बिना अनुराग के ऐसे सूक्ष्म ब्यौरों पर न दृष्टि जा ही सकती है, न रम ही सकती है। अत जहॉ ऐसा पूर्ण सश्लिष्ट चित्रण मिले, वहॉ समझना चाहिए कि कवि ने बाह्य प्रकृति को आलम्बन के रूप में ग्रहण किया है।''[४]

सस्कृत कवियों ने अपनी कृतियों में प्रकृति के आलम्बन रूप का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। जहॉ उन्होंने वन-उपवन, सर-सरिता, खग-मृग, पुष्प-लतिका आदि मधुर एव कोमल प्राकृतिक उपादानों का हृदयस्पर्शी चित्राकन किया है, वहीं दुर्गम पर्वत, झझावात, समुद्र-गर्जन, प्रलय आदि प्रचण्ड एव भयावह विषयों को भी उतनी ही उदारता से स्थान दिया है। इस विषय में हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा की स्वानुभूत-परक ये पक्तियॉ उद्धरणीय है- **''उजले कमलों की चादर जैसी चॉदनी में मुस्कराती हुई विभावरी अभिराम है, पर अन्धेरे के स्तर को ओढकर विराट बनी हुई काली रजनी भी कम सुन्दर नहीं। फूलों के बोझ से झुक-झुक पड़ने वाली लता कोमल है, पर शून्य नीलिमा की ओर विस्मित बालक सा ताकने वाला ठूँठ भी कम सुकुमार नहीं।''**[५]

आलोच्य रामाश्रित सस्कृत नाटकों में प्रकृति के आलम्बन रूप का वर्णन प्रस्तुत है-

महाकवि भास ने अभिषेकनाटक में प्रमदवन, समुद्र, सूर्यास्त का वर्णन आलम्बन रूप में किया है। हनुमान् सीता का पता लगाने के लिए लकानगरी पहुचते हैं तथा वहॉ प्रमदवन की शोभा को देखकर कहते हैं- ''अरे प्रमदवन की कैसी समृद्धि है। यह प्रमदवनभूमि स्वर्णनिर्मित विद्रुम तथा इन्द्रनीलमणि से चित्रित बड़े वृक्षों से युक्त देशोंवाली, सुन्दर पर्वतों वाली तथा स्वच्छ है। यह आकाश में इन्द्र की क्रीडा-भूमि जैसी लग रही है।''[६] हनुमान् से सीता का समाचार पाकर राम सेना सहित लका पर चढाई करने के लिए समुद्र के पास पहुँचते हैं। समुद्र की शोभा को देखकर लक्ष्मण कहते हैं- ''ये

भगवान् वरुण हैं जो जलपूर्ण मेघ के समान नीले वर्ण के जल वाले हैं। ये फैले हुए फेनों के धार से सुन्दर माला युक्त हैं और ये आ रही सहस्रों नदियों के बाहु से युक्त सोये हुए भगवान् विष्णु की भाँति लग रहे हैं।"[७] इसी प्रसग में समुद्र के विचित्र रूप को देखकर राम कहते हैं- "समुद्र की कैसी विचित्रता है। यह कहीं तो फेनोद्‌गार कर रहा है, कहीं मछलियों से व्याकुल जल वाला है, कहीं शखों से व्याप्त है और कहीं नील बादल तुल्य है, कहीं तरगों की माला वाला है और कहीं घडियालों से भययुक्त है, कहीं भयकर भँवर वाला है और कहीं निश्चल जल वाला है।"[८]

नाटककार भास ने इन दो श्लोकों के माध्यम से जहाँ एक ओर समुद्र को देवत्व प्रदान किया है वहीं दूसरी ओर उसका सूक्ष्म तथा विस्तृत चित्राकन किया है। समुद्र पारकर राम लका पहुँचते हैं। वहाँ सुवेल पर्वत पर सेना का निवेश स्थापित करते हैं। वहीं सूर्य को अस्त होता देख राम कहते हैं- "अरे! भगवान् सूर्य अस्त हो रहे हैं। इस समय अस्ताचल के सिर पर गये, किरणों को समेटे हुये सूर्य हाथी के लाल तथा श्वेत वस्त्र से आवृत्त कुम्भ पर स्वर्णनिर्मित तिलक की भाँति लग रहे हैं।"[९]

प्रतिमानाटक में प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन बहुत कम है। कवि ने वल्कलवस्त्र, जल-सिचित वृक्ष एव काञ्चनपार्श्व-मृग का आलम्बन रूप में चित्रण किया है। प्रथम अक में वनगमन के समय वल्कल वस्त्रों का वैशिष्ट्य बताते हुये राम लक्ष्मण से कहते हैं "तपस्यारूप सग्राम में कवच हैं, सयमरूपी हाथी के वशीकरण में अकुश, इन्द्रियरूपी अश्वों के निग्रह में लगाम का काम करते हैं, यही सोचकर इन्हें ग्रहण करो।"[१०] पचम अक में भरत को वापिस भेजकर राम अपनी प्रियपत्नी सीता से मिलना चाहते हैं, वहाँ तत्काल सींचे गए पौधों के थावलों को देखकर सीता के समीपवर्ती प्रदेश में होने का अनुमान करते हैं। इस प्रसग में पेडों के थावलों का वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है- "पेडों के थावलों में पडे फेनिल जल अभी भी घूम रहे हैं और प्यासे पक्षी पास आकर भी इस मैले पानी को भी पी रहे हैं। जल से भीगे कीडे बिलों से बाहर भागे आ रहे हैं और पेडों की जड में कई वलयाकार रेखाए पड गयी हैं।"[११] पिता के श्राद्ध करने के इच्छुक राम से ब्राह्मण वेषधारी रावण श्राद्धकर्म हेतु काञ्चनमृग का महत्त्व बताते हुये कहता है- "हिमालय की सातवीं चोटी पर महादेव के माथे से गिरने वाली गगा का जल पीने वाला, वैदूर्यमणि की तरह श्याम-पृष्ठ, वायु के समान शीघ्रगामी

काञ्चनपार्श्व नामक मृग रहा करता है। वैखानस, बालखिल्य, नैमिषीय ऋषिगण ध्यान मात्र से ही उसे बुलाकर श्राद्धकर्म करते हैं।[१२]

महाकवि दिड्नाग ने कुन्दमालानाटक में प्रकृति के अगों का आलम्बन रूप में वर्णन अधिक नहीं किया है। कुछ प्राकृतिक दृश्य ऐसे हैं जिन्हें कवि ने स्वतत्र रूप में अपने नाटक में स्थान दिया है। नाटक के प्रारम्भ में सीता को लेकर गगातट पर पहुँचा हुआ लक्ष्मण सीता से कहता है- "कमलों के वन से मधु की गन्ध को लाकर, अत्यन्त मधुर कलहसों की ध्वनि को लाता हुआ, लहरों की शीतल बूँदों को बिखेरता हुआ यह गगा तट का वायु आपकी सेवा के लिये ही चल रहा है।"[१३] यहाँ गगातट के वायु के वर्णन में जहाँ एक ओर कवि की प्रतिभा की अभिव्यक्ति होती है वहीं दूसरी ओर कथा-प्रसग को विशेष बल मिलता है।

महर्षि वाल्मीकि जब सीता को गगा-तट से अपने आश्रम ले जाते हैं, उस उसय उसे जिस रूप में मार्ग का निर्देश करते हैं, उसमें कवि का उद्देश्य आश्रम के भू-भाग का वर्णन करना है। वाल्मीकि सीता से कहते हैं- "यह मार्ग चलने में विशेष दु खकर है, विशेषकर तुम्हारे लिए, इस कारण जैस-जैसे मार्ग निर्देश करता हूँ, वैसे-वैसे आ जाओ, आगे इस बिखरे कुशा तथा काटों वाले मार्ग में सभाल कर पैर रखो, यह डाली झुकी हुई है- अत धीरे से झुक कर निकल आओ, बाई ओर बडा भारी गड्ढा है - इस कारण अब दाहिनी ओर खडे ठूठे को हाथ से पकड लो, इस कमलों वाले पुण्य तालाब में अपने पैरों को धो लो।"[१४]

इसी प्रकार राम एव लक्ष्मण जब नैमिषारण्य की ओर जा रहे हैं तो मार्ग में गोमती नदी को देखकर लक्ष्मण राम से कहते हैं- "हे नरश्रेष्ठ ! आपके सामने मरकत-मणि सरीखे हरे जल का एक मात्र उत्पत्ति-स्थान, मदमाती कलहसी के मधुर सगीत से रमणीय तटों वाली, खिले नीले कमलों के समूहों से दिशाओं के कोनों को सुवासित करती हुई, यह गोमती दिखाई दे रही है।"[१५] इसी के साथ गोमती नदी के किनारे से निकलते हुए लक्ष्मण द्वारा राम को दिखाए गए मार्ग का वर्णन भी वहाँ के नैर्सिगक रूप को अभिव्यक्त करता है- "इस बेंत की लता को आप फॉद लें, यहाँ पर सीप है, अत पैर मत रखें, सिर को ढककर झुक जावें-क्योंकि आगे दूर तक पेड झुका हुआ है। आगे की इस टेढी शाखा को आप धनुष के अगले भाग से खींचकर परे कर दें, इधर सामने शेर आदि हिसक जीवों की पत्नियाँ डर

रही हैं, अत आप धीरे-धीरे चले।''[१६]

राम एव लक्ष्मण को वाल्मीकि के आश्रम का आभास वहाँ के वातावरण से ही हो जाता है जैसे कि - ''पतली होने के कारण ध्यानपूर्वक देखी जाने वाली वह धुए की रेखा दिशाओं में चल रही है, कोमल वायु से खिची जा रही साम-ध्वनि कानों में पड रही है।''[१७] वहीं मध्याह्न के व्यतीत हो जाने का अनुमान श्रीराम एक हाथी की गतिविधियों को देखकर करते हैं-

''मध्याह्नार्कमयूखतापमधिकं तोयावगाहादयं
नीत्वा वारिकणार्द्रकर्णपवनैराह्लाद्यमानाननः।
मन्दं मन्दमुपैति कूलमधुना वक्षः प्रणुन्नैर्जलै-
राक्रान्तं करघातझाङ्कृतिसरित्कल्लोलचक्रः करी।।''[१८]

अर्थात् यह हाथी मध्याह्न काल के सूर्य के प्रखर ताप को जल में स्नान से दूर कर, जल-कणों से भीगे कानों से ठण्डी वायु कर, मुख को सुख पहुँचाता हुआ, सूँड के आघात से झकारयुक्त नदी के जल में लहरों को बढाता हुआ, वक्षस्थल से छूते हुए जल से युक्त तट की ओर धीरे-धीरे चला आ रहा है। कवि ने यह कितना स्वाभाविक दृश्य प्रस्तुत किया है।

राम वाल्मीकि-आश्रम में पहुँच गए हैं। वाल्मीकि शिष्य कण्व उन्हें वनप्रदेश के विषय में पूछते हैं- ''सुगन्धि-युक्त पुष्पों की सुगन्ध से दिशाओं के मुखों को सुवासित कर रहे फलों के भार से झुके हुए सहस्रों वृक्षों से जिसका घेरा बना है और जल के किनारे सावली रेखाओं जैसे लग रहे हैं-ऐसा वनप्रदेश आपके हृदय को आनन्दित तो करता है?''[१९] राम कहते हैं- ''इस तपोवन के प्रति बहुत सम्मान से मेरा मन निरन्तर झुका जा रहा है, अत यह मुझे आनन्द दे रहा है अथवा नहीं, इस पर कुछ कहने का अवसर ही नहीं है। देखो- मैं नैमिष में जगलों की आग को यज्ञ और हवन की आग समझकर, पेडों को यज्ञ के यूप समझकर, पक्षियों की अस्पष्ट ध्वनि को मुनियों द्वारा गाए गए साम की लय समझकर और जगली हरिणों को तपस्वी समझकर सम्मान दे रहा हूँ। इस प्रकार जैसे-जैसे कष्ट से भूमि पर पैर रखता चला आ रहा हूँ।''[२०] कण्व पुन नैमिषारण्य की अलौकिकता एव महत्ता का वर्णन करते हुए श्रीराम से कहते है- ''इस नैमिषारण्य में रहते हुए शकर के शरीर के चाँद की चाँदनी से मिलकर गर्मी की तीव्र धूप कम गर्म होकर पेडों के पत्तों को मलिन नहीं करती, सरोवरों के जल को सुखाती और लोगों

को सताप नहीं देती, परन्तु ऑखों के लिये प्रकाश-मात्र करती हैं और विस्तृत यज्ञ वाले इस नैमिषारण्य में हरि सदा निकट रहते हैं, इस कारण नन्दन के चन्दन के पेडों को छोडकर हाथियों को बाधने के खम्भे बनकर, ऑखें ऊपर उठाकर देखे जाने वाले वृक्ष, मस्त हुए ऐरावत के गले की रस्सी के ककण पर रखने से घाव पाते हैं।"[२१]

चतुर्थ अक के अत में कवि ने राम के मुख से सूर्य के अस्ताचल की ओर जाने का बहुत ही नैसर्गिक चित्र खींचा हैं- "सूर्य के कष्ट में पडे हुए घोडे सारथि के इधर से लगाम खींच लेने के कारण और उधर से चाबुक के प्रहार से चलने का सकेत पाने के कारण न ये खडे रह सकते हैं और न ये चल सकते हैं, अत इनके चरण चकित हो रहे हैं और इन चरणों को कठिनता से खुरों के अगले भाग पर रखते हुए ऊबड-खाबड मार्ग में लडखडाते हुए अस्ताचल के शिखर से यह किसी प्रकार समुद्र की ओर बढे जा रहे हैं।"[२२]

महाकवि भवभूति ने महावीरचरितनाटक में चतुर्थ अक तक प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन नहीं किया है। उसके पश्चात् ही उन्होंने कुछेक स्थानों पर प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण किया है। यथा पञ्चम अक में सम्पाति बाह्य प्राकृतिक दृश्य के आधार पर यह अनुमान लगाता है कि वत्स जटायु मेरा अभिवादन करने के लिये मन्दराचल की गुहारूप मेरे निवास की ओर आ रहा है। इस सन्दर्भ में जटायु के पख-सचरण का प्रभावकारी चित्राकन हुआ है। यह दृश्य बहुत भयावह है- "पखों के समेटने और फैलाने के कारण दिशाए कभी दिखती और कभी लुप्त हो जाती हैं, मेघ चूरचूर होकर पाले की स्थिति में पहुँचा दिया गया है जिससे बिजली स्थिर तथा स्थायिनी बन गई है। सामने आने वाली शिलायें चकनाचूर होती हैं, इस प्रकार जटायु के पख चल रहे हैं, जिससे उसका आना ज्ञात हो रहा है[२३] और समुद्र का जल पक्षवेग से हटा दिया गया है, वडवानल दूर फेंक दिया गया है, उसी छिद्र से प्रविष्ट होने वाली वायु से पाताल भर दिया गया है, वह पाताल अकालप्रलय रात्रि की तरह शब्द कर रहा है, मालूम पडता है आदिवराह के कण्ठ की गुर्राहट हो रही है।"[२४]

इसी सन्दर्भ में सम्पाति से विदा लेकर मलयाचल से लौटता हुआ जटायु मार्गस्थ प्रस्रवण पर्वत का नैसर्गिक चित्र प्रस्तुत करता है- "यही है प्रस्रवण नामक वनमध्यस्थ पर्वत, जिसकी कन्दरायें सटे हुए वृक्ष की निरन्तर छाया से

हरी वनावली से युक्त गोदावरी द्वारा मुखरित की जाती हैं और जिस पर सर्वदा बरसते हुए मेघ श्यामल छाया फैलाते रहते हैं।''[२५]

मतङ्गाश्रमवासिनी श्रमणा शबरी राम एव लक्ष्मण से ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले हनुमान् तथा अन्य वानरों की शक्ति का परिचय देती है, जिसे पढकर सहृदय पाठक उनके प्रति श्रद्धा भाव के साथ ही प्रसन्नता का अनुभव करता है क्योंकि ये अद्वितीय वीर वानर ही राम के सहायक बनेंगे- ''हेमगिरिवासी वानरों के यूथप वृद्ध केसरी के क्षेत्रज पुत्र हनुमान् इस तरह के ही हैं, जिनके जन्म में वीर्यप्रद वायुदेव थे। केवल हनुमान् ही क्यों, जो वानर समुद्रजल को नारिकेल जल के समान पी सकते हैं, जो पर्वतों को फादना गूलर के फल के समान समझते हैं, वासवृक्ष की तरह जो ब्रह्माण्ड को तोड-मरोड सकते हैं, वैसे असख्य वानर बाली की सेवा में हैं।''[२६] श्रमणा आगे पम्पा सरोवर के समीपवर्ती वनभूमि से राम-लक्ष्मण को अवगत कराती है जहॉ प्रवाहित होती हुई पावन सरिताओं का शीतल एव स्वच्छ जल, पशु-पक्षियों के बैठने से हिलती हुई वानीर वृक्षों की शाखाओं से गिरे हुए पुष्पों से सुवासित हो जाता है तथा जिसमें पके हुए जामुन के फलों के गिरने से टप-टप शब्द सुनाई देता है। यहॉ कहीं भालुओं की गुर्राहट के प्रतिध्वनित होने से भयावह शब्द निकल रहा है और कहीं करि-कलभों द्वारा दलित शल्लकी के शीतल तथा कषाय रस की सुगन्ध चारों ओर फैल रही है।[२७]

इन प्रकृति-चित्रों के विन्यास में कवि का कल्पना-वैशिष्ट्य पूर्णत अद्भुत है। एक चित्र प्रकृति का कोमल एव मसृण दृश्य प्रदर्शित करता है जिसमें रसिकजन निर्झरिणी की कल-कल ध्वनि, पक्षियों के कूजन एव पुष्पों की परिमल का आस्वादन लेते हैं। दूसरा चित्र प्रकृति का कठोर एव परुष रूप प्रकट करता है जिसमें तरुण भालुओं की स्वाभाविक भयानक गुर्राहट पर्वत की कन्दराओं से प्रतिध्वनित होकर, पाठक के हृदय में भय का सञ्चार सा कर देती है।

सप्तम अक में राम लक्ष्मण एव सीता के साथ विमान द्वारा लका से अयोध्या प्रस्थान करते हैं। मार्ग में सीता के पूछने पर राम सागर के विषय में बताते हैं-

साक्षात्किलाष्टमूर्तेस्तस्यैषा मूर्तिरम्मयी प्रथमा।
गीतः सागर इति नृभिरपरिच्छेद्यात्मगाम्भीर्यः।।'[२८]

यह तो अष्टमूर्ति शिव की साक्षात् जल रूप प्रथम मूर्ति है जिसे अनन्त

गाम्भीर्य के कारण मनुष्य सागर कहते हैं। सागर के इस लघु चित्र से कवि ने एक साथ ही अपने अगाध पाण्डित्य का परिचय भी दे दिया है। विष्णुपुराण के अनुसार शिव की निम्नलिखित आठ मूर्तियाँ हैं- सूर्य, जल, पृथिवी, वायु, अग्नि, आकाश, यजमान और चन्द्रमा।[२९] तथा सागर भी सगर पुत्रों द्वारा बनाया हुआ है।[३०] इसका सकेत स्वय कवि ने सीता के मुख से करवाया भी है।[३१]

कावेरी-तीर के प्रान्त प्रदेश का यह दृश्य भी कम आकर्षक नहीं है- "इस प्रान्त में ताम्बूलीलताच्युत मकरन्दधारा से सन्तुष्ट सुपारी के पेड फैले हुए हैं, पुराने वृक्ष ऋषियों के आश्रम को लक्षित कर रहे हैं जिनमें तपस्या और स्वाध्याय के बल से ब्रह्मज्ञानी कल्पस्थिति के साक्षी मुनिगण रहा करते हैं।"[३२] यहाँ कवि ने प्रकृति के उदात्त सुरम्य भू-भागों को लोकोत्तर ज्ञान की प्राप्ति में सहायक बताया है। पम्पा सरोवर के पार्श्ववर्ती स्थल का वर्णन पूर्वघटित घटनाओं के सघटन के साथ हुआ है।[३३] इसीलिये विभीषण राम से कहते हैं - "यह वही पम्पा सरोवर प्रान्त है, जहाँ के अभिज्ञान चिरकाल तक देखे जाने पर बलपूर्वक आँखों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं।"[३४] विमान ऊँची गति के साथ सूर्य एव तारामण्डल के समीप पहुँच जाता है। सूर्य राम के वश का प्रवर्तक, तेजोराशि का पुञ्ज तथा देवत्रय का सार है[३५] तथा तारे आकाश रूपवाटिका के प्रफुल्लित पुष्प हैं।[३६]

इसी क्रम में विभिन्न पर्वतों का भी सक्षिप्त वर्णन है- उदयाचल तथा अस्ताचल की गोदों में क्रमश चन्द्र एव सूर्य विश्वासपूर्वक बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्था का सुख भोगते हैं। ऊँचाई और विशालता में समान कैलास एव अजनपर्वत कस्तूरी तथा चन्दन से लिप्त पृथिवी के स्तन से प्रतीत हो रहे हैं।[३७] हिमालय पर्वत का एक शब्दचित्र देखिए- "ये हिमालय के पर्वत शिखर हैं जिनके चरण को गगा धो रही है, जो कर्पूर की तरह स्वच्छ हैं और जहाँ पुराने भूर्ज वल्कल हैं। अध्यात्मविद्या के प्रेमी तत्त्व-ज्ञान से अज्ञान को दूर हटा देने वाले ब्रह्मज्ञानियों के स्वभाव सुन्दर तेज जहाँ बिखर रहे हैं।"[३८]

कवि भवभूति ने यहाँ हिमालय पर्वत की पावनता एव उत्कृष्टता की अभिव्यजना करते हुए उसके प्रति अपनी अगाध भक्ति को भी प्रदर्शित किया है। हिमालय के वैशिष्ट्य के प्रतिपादन में महाकवि कालिदास ने १८ श्लोक प्रस्तुत किए हैं[३९] उसे भवभूति ने मात्र एक श्लोक में उपनिबद्ध कर अपनी

अपूर्व वर्णना शक्ति का परिचय दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कालिदास के 'कुमारसम्भव' के प्रस्तुत श्लोक-

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य, स्थित· पृथिव्या इव मानदण्डः।।[४०]

में आए भावों का पोषक है।

नाटककार भवभूति ने अपने नाटक उत्तररामचरित में पर्वत, नदी, वनप्रदेश, सरोवर, आश्रम आदि प्राकृतिक पदार्थो का वर्णन आलम्बन रूप में किया है। प्रथम अक में चित्रवीथी में लक्ष्मण राम एव सीता को प्रस्रवण पर्वत दिखलाते हुए कहता है- "यह सघन पादपावलियों से निरन्तर स्निग्ध तथा श्यामवर्ण वाले वन के भागों से युक्त गोदावरी की तरगों से आस्फालित होने के कारण मुखरित गुफाओं वाला तथा लगातार बरसने वाले मेघों से और भी अधिक नीलिमा धारण करने वाला, जनस्थान के मध्य-भाग में स्थित प्रस्रवण नाम का पर्वत है।"[४१] इसी प्रसग में माल्यवान् पर्वत का वर्णन भी द्रष्टव्य है। लक्ष्मण कहता है- "अर्जुन पुष्पों से सुरभित यह वही माल्यवान् नामक पर्वत है जिसके शिखर पर नीला-नीला, नया-नया, मनोहर मेघ विश्राम ले रहा है।"[४२]

द्वितीय अक में वासन्ती के मुख से कवि ने ग्रीष्म ऋतु में दिन की कठोरता का बडा ही स्वाभविक वर्णन कराया है- "गोदावरी के तट पर स्थित वृक्षों की छाया में बैठे हुए पक्षी अपनी चोंचों से वृक्षों की छाल कुरेद-कुरेद कर कीड़े निकालकर खा रहे हैं और गर्मी से व्याकुल घोंसलों में बैठे हुए कबूतर, मुर्गे आदि पक्षीगण कूजन कर रहे हैं। इन वृक्षों के तनों से जब जगली हाथी खुजलाने के लिये अपने गण्डस्थलों को रगडते हैं तब उनकी रगड से हिलने के कारण धूप से मुरझाए हुए शिथिल बन्धनों वाले पुष्प गोदावरी के जल में गिर पडते हैं (तब ऐसा प्रतीत होता है कि) मानों ये वृक्ष गोदावरी की अर्चना कर रहे हैं।"[४३]

राम दण्डकारण्य जाकर शम्बूक का वध करते हैं। शम्बूक एक दिव्यपुरुष का रूप धारण कर राम को वन प्रदेश के विविध स्थलों को दिखलाता है, तब दण्डकारण्य को देखकर राम कहते हैं- "कहीं हरी-भरी घास से स्निग्ध और श्याम, कहीं भयकर दृश्यों से रूखे, स्थान-स्थान पर झरनों के कल-कल निनाद से मुखरित दिशाओं वाले, तीर्थ, आश्रम, पर्वत, नदी, गड्ढों तथा सघन वनों से मिश्रित ये पूर्व परिचित भूमि वाले दण्डकारण्य के

भाग दिखलाई दे रहे हैं।''[८४] जनस्थान की सीमाओ में भयकर वन के भागों, महावनों, पर्वतों, नदियों आदि का वर्णन करते हुए शम्बूक राम से कहता है- ''भयकर वन के सीमान्त-प्रदेशों में कहीं एक दम निस्तब्धता छायी हुई है और कहीं हिसक पशुओं का घोर गर्जन सुनाई पड रहा है। कहीं स्वेच्छा से सुखपूर्वक सोये हुए मोटे-मोटे सर्पो की फुकारों से आग धधक उठी है। कहीं-कहीं गड्ढों में थोडा सा पानी पडा हुआ है और कहीं प्यास से व्याकुल गिरगिट अजगर के पसीने को पीकर अपनी प्यास बुझा रहे हैं।''[८५] अब महाप्रभावशाली आप-मद से मधुर कूक करने वाले मयूरों के कोमत कण्ठों की कान्ति के समान समीपस्थ प्रदेशों से व्याप्त, सघनता से खडे हुए नीली-नीली शोभा वाले छायादार वृक्षों के समूहों से सुशोभित, निर्भय विचरण करने वाले भॉति-भॉति के हरिणों के झुण्डों वाले, शान्त एव दुर्गम हिसक पशुओं के निवास-स्थान इन महावनों को देखिये।[८६] वहॉ मस्त पक्षियों से आश्रित वेतस से गिरे हुए पुष्पों से सुगन्धित शीतल और स्वच्छ जल वाली तथा फलसमूह के परिपाक से श्यामवर्ण वाले घने जामुन-कुञ्जों में गिरने से शब्दायमान अनेकों प्रवाहों वाली नदियॉ बहती हैं। यहॉ पहाडों की गुफाओं में रहने वाले तरुण रीछों के थूकने का शब्द प्रतिध्वनित होकर और अधिक बढ रहा है और यहॉ हाथियों के द्वारा तोडी तथा इधर-उधर फैलाई हुई सल्लकी लताओं की ग्रन्थियों के रस का शीतल, तीक्ष्ण तथा कषाय गन्ध फैल रहा है।[८७] गूजते हुए कुटीरों में उल्लुओं के समूह के घू-घू शब्दों के समान ध्वनि वाले कीचकों के शब्दों से मूक कौवों के कुल वाला यह क्रौञ्च नामक पर्वत है। यहॉ उडते हुए मोरों के कूजन से भयभीत सर्प चन्दन के वृक्षों की शाखाओं में लिपट रहे हैं। गिरि-कन्दराओं में कल-कल निनादिनी गोदावरी के जल से युक्त तथा मेघों के लिपटने से नीले-नीले शिखरों वाले ये दक्षिण दिशा के पर्वत हैं और परस्पर आघात-प्रतिघातों से चञ्चल तरगों के कोलाहल से त्वरित-गति से अथाह जल वाले पवित्र नदियों के सगम हैं।[८८]

प्रकृति का यह सम्पूर्ण वर्णन विशुद्ध आलम्बन रूप में हुआ है। यहॉ कवि का उद्देश्य प्रकृति के विविध पक्षों का नैसर्गिक चित्र खींचना है। गर्मी की कडकती दोपहरी एव दण्डकरण्य की भीषणता का वर्णन पूर्णत सजीव है। क्रौञ्ज पर्वत के वर्णन के माध्यम से इस लौकिक सत्य का उद्घाटन हुआ हे कि ससार में प्रत्येक जीव एक दूसरे से डरा हुआ है। गिरि-कन्दराओं में गद-गद नाद के साथ बहने वाली गोदावरी का वर्णन नैसर्गिक है। इसके पढने मात्र से ही सहृदय का हृदय गद्गद हो उठता है।

चतुर्थ अक में दण्डायन नामक तपस्वी सोधातकि नामक दूसरे तपस्वी से महर्षि वाल्मीकि के आश्रम की शोभा का वर्णन करते हुए कहता है- "आज आदरपूर्वक ठहराये गये अनेक अतिथियों से सुशोभित भगवान् वाल्मीकि के पवित्र आश्रम की स्वागत-सत्कार के लिये किये जाते हुए बहुत से कार्यो से बढी हुई शोभा को तो देखो। जैसा कि तपोवन का मृग सद्यप्रसूता प्रिया के पीने से बचे हुए नीवार-निर्मित ओदन से गरम-गरम एव मधुर माड को पर्याप्त मात्राा में पी रहा है ओर दूसरी ओर घी पडे भात के उडते हुए गन्ध के साथ मिलकर बदरी-फल मिश्रित शाकों के पकाने का आमोद (गन्ध) चारों और फैल रहा है।"[४६]

वाल्मीकि आश्रम में श्री राम के अश्वमेध यज्ञ का घोडा प्रवेश करता है। लव के पूछने पर वटुगण उस घोडे का स्वरूप बताते हुए कहते हैं- "उसकी पिछली ओर बहुत लम्बी पूँछ लटकती है और वह उसे निरन्तर हिलाता रहता है। उसकी गर्दन लम्बी और खुर भी चार ही होते हैं। वह घास खाता है, आम्र फलों जैसा मलत्याग करता है। अब अधिक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं, वह घोडा दूर निकाला जा रहा है। आओ! चलें।"[५०]

षष्ठ अक में चन्द्रकेतु द्वारा प्रयुक्त वायव्यास्त्र के प्रभाव के वर्णन के माध्यम से प्रलयकाल में हुई जगृत की स्थिति का वर्णन करते हुए एक विद्याधर कहता है- "प्रलयकालीन पवन से क्षुब्ध, गम्भीर गड-गड शब्द करने वाले मेघों से समृद्ध, सघन अन्धकार से पूर्णतया वधा हुआ सा, एक बार ही ससार को निगलने के लिए करालकाल की मुख-कन्दरा में घूमता सा, प्रलय-काल में योग-निद्रा से सर्वत निरुद्ध-द्वार 'नारायण' के उदर में प्रविष्ट-सा होकर यह जगत् नष्ट हो रहा है।"[५१]

महाकवि मुरारि ने अनर्घराघव में प्रकृति के विविध उपादानों का आलम्बन रूप में चित्रण किया है। उन्होंने नाटक में प्रात , सूर्योदय, मध्याह्न, सायकाल, सूर्यास्त, अन्धकार, रात्रि, चन्द्रोदय, तारामण्डल, आश्रम, गगा-यमुना आदि नदियों, सागर, हिमालय, मन्दराचल, सुमेरु, माल्यवान्, प्रस्रवणगिरि आदि का वर्णन किया है।

द्वितीय अक में विश्वामित्र का शिष्य शुन शेप प्रवेश करता है, उस समय रजनी प्रभातकल्पा है, चन्द्रमा अस्ताचल की ओर जा रहा है। इस प्राकृतिक दृश्य को देखकर वह कहता है- "चन्द्रमा के क्षीण हो जाने के कारण ज्वलित होने वाले सूर्यकान्त मणि से धूम की तरह प्रतीत होने वाले अन्धकारों से

दिशायें घिरती जा रही है, अयस्कान्तमणिवत् कमलों के अन्दर छिपे भ्रमररूप अन्त शल्य को बाहर खींचने वाले प्रभानाथ का अभी उदय नहीं हो रहा है।[६२] तारे पके हुए प्याज की तरह पीताभ मधुर कान्ति वाले हो गये और कमलों को जीवित करने वाली कान्तियाँ प्राची दिशा में अकुरित हो रही हैं। मकडे के जाल के समान गोल बिम्ब को धारण करने वाला चन्द्र निस्तेज होकर प्रात काल में अस्ताचल को छू रहा है।''[६३]

सूर्योदय के साथ कमल खिलने लगते हैं तथा भ्रमर कमलगृहों से बाहर निकलने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। प्रकृति के इस नितान्त सम्बन्ध को इन पक्तियों में देखिए- ''दिशाओं के मुकुट में शोभा पाने वाले पद्मराग के सदृश भगवान् सूर्य के गर्भित हो जाने पर भी सुखशयन की जिज्ञासा करने वाले भ्रमर से सरोवर के पकजवन वाचाल हो रहे हैं।''[६४] ''प्राची दिशा के विलासार्थ कर्णाभरण के नवदलतुल्य सूर्य की दो-तीन किरणें आकाश में विचर रही हैं, थोडा-थोडा खिलने वाले ये कमल उत्सुकतावश कोष से बाहर निकलने वाले भ्रमरों के सभ्रम से खिल रहे हैं।''[६६]

इसी बीच प्रात काल हो जाता है जिसे देखकर शुन-शेप कहते हैं 'अये, प्रभातिकी भुवनस्य लक्ष्मी' साथ ही प्रभात का दार्शनिक वर्णन करते है-'' तत्काल प्रज्वलित सूर्यकान्त-मणियों से नीराजित सूर्यकिरणें विद्रुमदण्ड की तरह रक्ताभ दिखती हैं तथा प्राची दिशा को अलकृत करती हैं, प्रौढ अन्धकार से आवृत्त अपने शरीर की छाया के रूप में यह जगत् अन्धकार रूप अपना निर्मोक त्याग कर रहा है।''[६५] ''कमल-कोषरूप शुक्तियों ने रात्रि के अन्धकाररूप जल को पी लिया और निकलते हुए भ्रमर-समुदायरूप मुक्ता को निकाल रहे हैं, अन्धकाररूप जल से बनने वाले भ्रमररूप मुक्तागण कारणगुण-समान कार्य होते हैं- इसलिये काले हैं।''[६७]

शुन शेप विश्वामित्र जैसे ऋषि के शिष्य हैं अत उनके चरित्र के अनुकूल ही कवि ने उनके मुख से प्रभात का दार्शनिक वर्णन कराया है। जगत् का अन्धकार रूप निर्मोक को त्याग-कर प्रकाश को ग्रहण करना आत्मा के पुराने शरीर को त्यागकर नए शरीर को ग्रहण करने के समान हैं।[६८] यह गीता-दर्शन का सार है। अन्धकार एव भ्रमर का कारण-कार्य भाव साख्य दर्शन सम्मत है जिसके अनुसार कार्य कारण के गुणों के स्वभाव वाला होता है।[६९]

चतुर्थ अक के प्रारम्भ में पुन कवि ने माल्यवान् के मुख से प्रभात का नैसर्गिक चित्राकन किया है -''अरे, रात समाप्त हो गयी, क्योंकि

थोडा-थोडा प्रकट होने वाले सूर्य के तेज से दिशाओं में चन्द्रमा की किरणें अस्तोन्मुख हो रही हैं और चक्रवाकियों के हृदय से गृहस्थधर्म के प्रति उत्पन्न निन्दा समाप्त होती जा रही है, अभी भी अपने नीडद्रुम के शिखर पर बैठकर काकगण शब्द करते हुए अपने साथियों के स्वरों को डर-डरकर पहचान रहे हैं।[६०] "दिशाओं के वल्लभ सूर्य देव के प्राची दिशा रूप वासकसज्जा नायिका के पास पहुँच जाने पर उनकी वह किरणें-जो सूर्यकान्तमणि की आग्नेय नाडी को दीप्त करती हैं, रात्रि में सम्भावित सभोग तथा निद्रारस को कोकसमुदाय तथा कुमुदवतीवन में निक्षेप के रूप में रख रही हैं।"[६१]

यहाँ कवि की कल्पना चातुरी ने 'रात्रि में चक्रवाक के जोडे का वियोग'[६२] एव 'कुमुदवती का दिन में न खिलना'[६३] इन कवि समयों को बहुत ही सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है।

मध्याह्न वर्णन भी सजीव है। वैतालिक माध्यन्दिन सन्ध्या में दशरथ की मगलकामना के साथ दोपहर का वर्णन करता हुआ कहता है- 'सूर्य चारों तरफ अपनी किरण फेंक रहे हैं, अतिशय छोटी यह जन-जन की छाया स्थल-कमठ की तरह लगती है, गजपतियों के मुख से निर्गत जल-बिन्दुओं से शीतल तथा सुखद जलसमीपस्थ देश में हरिणगण सो रहे हैं।"[६४] द्वितीय अक में रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र ऋषि के तपोवन की विहार-भूमियों में भ्रमण कर रहे हैं। उन्हें ऋषि के माध्यन्दिन यज्ञ में बुलाने हेतु नेपथ्य से आवाज आती है- "रामभद्र, तपोवन की विहारभूमियों को कितनी देर तक आप देखते रहेंगे? अब सूर्य अपनी किरणों को यजुर्वृत्ति में परिणत कर रहे हैं अर्थात् मध्याह्न हो रहा हैं, शमीजन सावित्री मन्त्र का जप कर रहे हैं, हमारे गुरुदेव माध्यन्दिन यज्ञ को करने के लिए यज्ञभूमि में आपको देखना चाहते हैं।"[६५]

पुराण के अनुसार सूर्य प्रात काल ऋक्रूप, मध्याह्न में यजुरूप तथा सायकाल में सामरूप हो जाता है। इस प्रकार सूर्य वेदत्रयी रूप है।[६६] कवि ने इस तथ्य को यहाँ उद्धृत किया है तथा आगे भी सूर्य को वेदत्रयी रूप कहा है।[६७]

राम-लक्ष्मण न्यग्रोध वृक्ष की छाया में बैठकर यज्ञ की रक्षा करते हैं। दिन ढलने लगता है जिसका वर्णन कवि राम के मुख से कराते हैं- "जो सूर्य-रथ के अश्व उदयाचल से गगन शिखर पर कडी कठिनाई से चढ सके थे, वही सूर्यरथाश्व इस समय आसानी से अस्ताचल पर उतर रहे हैं।"[६८]

अस्ताचल को जाते हुये सूर्य के वर्णन में कवि ने लोक व्यवहार की

इस बात को सिद्ध किया है कि ऊपर चढना कष्ट साध्य होता है तथा नीचे उतरना सुख-साध्य।

सूर्यास्त के साथ ही होने वाली सन्ध्या तथा अन्धकार का चित्राकन भी दर्शनीय है- "प्रकाशित होने वाले मस्तकस्थ रत्नों की कान्ति से सर्पो के बिल चमक रहे हैं, सूर्यकान्तमणि की ज्वाला चक्रवाकियों के हृदय में प्रवेश कर रही है, दिन और रात्रि के सघर्ष में पिसी हुई सन्ध्या के कण से समता रखने वाले यह दीप अन्धकार को उभय भाग से छेद रहे हैं।"[६९] "ससार की दृक्शक्ति समाप्त हो गई है, सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार है, औपाधिक प्राच्यादि व्यवहार के बीज सूर्य के नहीं रह जाने से एक मात्र दिशा सामान्यत रह गई। समर्थ इन्द्रियगण भी तमोमाहात्म्य से भयजनक वस्तुओं का ज्ञान करा दे रहे हैं, किसी वस्तु का ज्ञान शब्द से होता है प्रत्यक्ष नहीं, एव व्यक्ति का भी ज्ञान उसके स्वर से ही होता है, रूप से नहीं।"[७०]

इसी प्रसग में ताटका-वध के पश्चात् राम लगातार १४ श्लोकों में चन्द्रोदय का वर्णन करते हैं। यह वर्णन बडा विशद है जिसमें कवि की मौलिकता तथा भाषा की प्रौढता का आभास मिलता है। चन्द्रकिरण, चन्द्रबिम्ब, चन्द्राकान्ति, चन्द्रोदय का क्रमश चित्रण हृदयाह्लादकारी है।[७१] एक उदाहरण देखिए- "अन्धकार द्वारा जिनकी आयु समाप्त कर दी गई थी, ऐसा ऑखों को पुनरुज्जीवित करने वाले सुधाकिरणशाली चन्द्रमा जब सूर्यास्त के बाद अतिथि के रूप में उपस्थित हुए, तभी कमलों ने मुँह फेर लिया, अत चन्द्रमा ने अपना पाप कमलों को दे दिया और कमलों के पुण्य के लिये जिससे चन्द्रमा को सुन्दरी स्त्रियों के मुख की समता प्राप्त हो रही है।"[७२]

कितनी उपदेशात्मक कल्पना है। भारतीय धर्मशास्त्र के अनुसार अतिथि देवरूप होता है जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे वह शाप देकर उसके शुभ कर्मो को ले जाता है, सूर्यास्त के समय अतिथि के लौटने पर पाप आठ गुणा लगता है।[७३] यह चन्द्रमा ऐसा ही अतिथि है जो कमल कुल के पास गया तथा बन्द होते कमलों से मानों अनादृत होता हुआ उन्हें मालिन्य रूप अपना पाप देकर उनके रमणी वदन के सादृश्य रूप पुण्य को ले रहा है।

मुरारि कवि को नयनाभिराम राम[७४] के समान ही चन्द्रमा के प्रति विशेष प्रीति प्रतीत होती है तभी वो वे चन्द्रमा के विविध रूपों में मनोहारी चित्र खींचने का अवसर ढूँढ लेते हैं, यद्यपि द्वितीय अक में मुरारि ने कला-

वैविध्य के साथ चन्द्रमा के सौन्दर्य का निरूपण किया है तथापि सप्तम अक में पुन चन्द्रमा के विस्तृत वर्णन में अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय देते हैं। पुष्पकविमान पर चढे राम विभीषण आदि के साथ चन्द्रलोक पहुँचते हैं उस समय विभीषण के मुख से कराया गया चन्द्रमा का वर्णन सराहनीय है- "जो चन्द्रमा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दिशाओं का नामकरण करता है और जो ज्योत्स्ना की झलमलाहट से अन्धकार को लुप्त करता है, जो प्राची दिशा में वर्तमान तथा ससार को आलोक प्रदान करने वाले उदयाचल को लुप्त करता है, इसी चन्द्रमा को देखने के लिए यह विश्व जीता है।"[७८] "महादेव के मालदेशरूप सहन को चमकाने में दीप का कार्य करने वाला, कौरवों का मित्र, अन्धकार समुदाय का सहारक, अपनी किरणरूप मुक्तामणियों से सुन्दरियों को सुसज्जित करने वाला तथा इन्द्र की अमृत-पाकशाला का प्रधान पाचक चन्द्रमा निकल आया।"[७६]

आश्रमों की नैसर्गिक आभा भी कवि-मन को आकृष्ट करती है। विश्वामित्र के सिद्धाश्रम के प्रति कवि का श्रद्धा भाव है। उनके अनुसार नीलकमलरूप भगवान् विष्णु ने वामनावतार के रूप में अद्‌भुत तप किया था।[७७] तभी तो "इस महातीर्थ में रहने वाले ब्राह्मणगण निर्भय होकर अपने कर्तव्य यजन-याजनादि षट्‌कर्म का प्रयोग किया करते हैं।"[७८] हरिणशावक नि शक होकर कुशा घास चर रहे हैं।[७६] आश्रमवाहिनी पवित्र कौशिकी नदी का स्वभावत शीतल, स्वच्छ तथा सुस्वादु होने से इन्द्रियों को आकृष्ट करने वाला जल तटवर्ती वृक्षों के पुष्पों की परिमल से और अधिक उत्कृष्ट हो गया है।[८०] आश्रम के तपस्वी जन तीन बार स्नान करते हैं, वन के कन्दमूलों से शरीरयात्रा चलाते हैं, मृगचर्म पर सोते तथा वृक्ष की त्वचा पहनते हैं, चर्मचक्षुओं से नहीं दीखने वाले ब्रह्मतेज का प्रत्यक्ष करते हैं। इस प्रकार उनकी दिनचर्या केवल सत्त्वगुणात्मिका है।[८१] आश्रम भूमि की कुछ अद्‌भुत शोभा हो रही है, क्योंकि वहाँ पर यज्ञाग्नि-धूपरूप वलभियाँ दिशाओं का भ्रम उत्पन्न कर रही है, वटुजन साय सन्ध्या-स्नान के पश्चात् मन्त्र-जप करते हुए स्वत दीर्घ स्वर को और भी इसलिये कर रहे हैं कि उनके जोर से पढने में होड सी लग गई है।[८२]

सप्तम अक में राम पुष्पकविमान द्वारा सीता-लक्ष्मण आदि के साथ लंका से अयोध्या की ओर जा रहे हैं। इस यात्रा-प्रसग में कवि ने प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन विपुलता के साथ किया है। मार्ग में आए सागर का परिचय

देते हुए राम सीता से कहते हैं- "देवि, इधर देखो, यह सागर है, इसे प्रणाम करो, इस सागर की कन्या लक्ष्मी भगवान् के हृदय में रहकर भी वीरों के भुजदण्डों में वास किया करती है और इसका चन्द्रमा शिवशिरोभूषण होकर भी ससार को अलकृत किया करता है।"[८३] "पानी यदि अमृत के समान गुणवाला है तो वैसा हो सकता है, इसमें हमको आश्चर्य नहीं होता है, आश्चर्य तो हमको तब होता है जब हम देखते हैं कि लक्ष्मी, चन्द्रमा, कौस्तुभमणि, पारिजातवृक्ष तथा धन्वन्तरि आदि भी पानी से ही पैदा हुए हैं।"[८४] सागर के इस वर्णन में समुद्र-मन्थन के पौराणिक आख्यान[८५] का सकेत मिलता है। सागर का यह वर्णन कई श्लोकों में किया गया है।[८६]

वायुयान से चलते हुये व्यक्ति को पृथ्वी कैसी लगती है? इसकी झलक प्रस्तुत करते हैं सुग्रीव- "पृथ्वी पर ऊँच-नीच स्थल का विभाग समाप्त हो रहा है, सभी पदार्थ केवल अपने वर्ण में रह गये हैं, आकारभेद लुप्त हो रहा है, इस प्रकार यह समुद्रवेष्टिता पृथ्वी चित्रमय पक्की भूमि सी दीख रही है।"[८७] "यह समुद्ररूप नागराज द्वारा वलयित वसुधारूप फणमण्डल ससार में अनुरूप अमूल्य आप सरीखे रत्न को प्राप्त करके अनिर्वचनीय अहकार प्रकाशित कर रहा है।"[८८]

इसी क्रम से महाकवि मुरारि ने पार्वती पिता हिमालय[८६], मन्दराचल[६०], शिव-निवास कैलास[६१] आदि का पौराणिक सन्दर्भ-सकेतो के साथ सफल सयोजन किया है।

महाकवि शक्तिभद्र ने अपने नाटक आश्चर्य-चूडामणि में आश्रम, वाटिका, मृग, चन्द्रोदय आदि का वर्णन आलम्बन के रूप में किया है। तृतीय अक में मारीच के आश्रम का स्वाभाविक वर्णन है। एक ऋषि कुमार पार्श्ववर्त्ती चिह्नों से ही वहाँ आश्रम होने का अनुमान करता है। वह सोचता है- "नदी के बालुकामय प्रदेश मन्त्रपूर्वक बिछाये गये कुशों से श्यामवर्ण के हैं। वृक्ष पर विद्यमान शुकागना ऋषियों के साथ प्रतिदिन के अभ्यास से स्वयम् वाक्यों का उच्चारण करती है। मुनिकुमारों के द्वारा नीवार की अञ्जलियों से पोषित होने वाले मृग के बच्चे माता के दूध भरे स्तन को छोडकर जटा और वल्कल के विश्वास से मुनि समझकर मेरे पास आते हैं तथा बिछे हुए कुशों से आपूर्ण यह यज्ञकुण्ड हवन-द्रव्य के गन्ध को छोडता है। भौंरे यज्ञभूमि में विद्यमान फूलों के रस के हृदय सुख को नहीं छोडते हैं। वृक्ष की शाखाओं में टगा हुआ यह वल्कलवस्त्र भी किसलयों के भूरे रग को

और अधिक बढा रहा है।"[६२]

कवि ने मारीच को जो मृगवेश में प्रस्तुत किया है वह मृग की नैसर्गिक क्रियाओं से अनुप्राणित है। राम सीता को मृग दिखलाते हुए कहते हैं- "हे नवयौवने! दूरवर्ती युवा मृग को देखो। यह मृग अपनी चाल के विलास से मेघमार्ग में ऊपर उठने वाली सफेद, श्याम और रक्तवर्ण की कान्ति से इन्द्र के विलक्षण धनुष की आकृति का विस्तार करता हुआ चॉदी के चरण, रत्न की गर्दन और सोने के शरीर वाला है।"[६३] इसी प्रसग में लक्ष्मण मृग को देखते हुए कहता है- "यह मृग-मरकत मणि से निर्मित गर्दन को बार-बार टेढा करता है। नये घास को जिह्वा से छूता हुआ सा दौडता है। वृक्षों के चारों ओर घूमता है। ऊँचे और नीचे स्थानों में भी दिखाई पडता है। क्रोध से आर्य के धनुष चढाने पर छिप जाता है।"[६४]

पचम अक में कवि ने रावण के अमात्य के मुख से चन्द्रोदय का जो वर्णन कराया है वह कवि के प्रकृतिप्रेम का ही अभिव्यजक है-

"आविर्भवत्यमृतभाजनमङ्गजन्मसेनापतिः शिशिरदीधितिरेष देवः।
क्षीरार्णवप्रलयवारिणि जीवलोकं पश्यामि मग्नमिव यस्य मयूखजालैः।।"[६५]

अर्थात् अमृत के पात्र, कामदेव के सेनापति, शीतल किरणों वाले ये चन्द्रदेव प्रकट हो रहे हैं, जिनके किरण-समूह से क्षीर-सागर के प्रलय-कालिक जल में सम्पूर्ण जीव-जगत् को डूबा हुआ सा देख रहा हूॅ।

षष्ठ अक में हनुमान् जी लकापुरी में पहुॅचकर वहॉ अशोकवाटिका का अनुमान लगाते हुए कहते हैं- "मद से उन्मत्त भौंरों के गुञ्जन को लाने वाले, वृक्षों के फूलों के पराग के भार को लाते हुए, तालाब में तरगों के मर्दन से शीतल मेरे पिता पवन ही उद्यान की सूचना दे रहे हैं।"[६६] इसके साथ ही वहॉ उद्यान में देववृक्ष की अपूर्व शोभा पर मुग्ध हो जाते हैं तथा सहज भाव से कहते हैं- "रेशमी वस्त्र इनके किसलय हैं। मुक्ता फूल हैं। विद्रुममणि फल है। वैडूर्यमणि पत्ता है। मरकतमणि कली हे और सेना सेकडों डालियॉ है। ये कौन वृक्ष है जिन्हें मैं अभी तक नहीं जानता हूॅ। ये प्राय' स्वर्ग के सारभूत वृक्ष हैं। इनसे हमें क्या? मुझे तो अन्य कार्य हैं।"[६७]

इस प्रसग को पढकर सहृदय पाठक प्रकृति की अलौकिक सुन्दरता का मन ही मन आस्वादन करता है।

हनुमन्नाटक में प्रकृति का आलम्बनात्मक वर्णन अल्पमात्रा में ही मिलता

है। इसमें भी चन्द्र-वर्णन ही मुख्य रूप से हुआ है। द्वितीय अक में श्रीराम एव सीता के विवाहोपरान्त केलिमन्दिर में प्रवेश करने पर कवि चन्द्रोदय का हृदयस्पर्शी वर्णन करता है- "सूर्य की वियोगिनी पूर्वदिशा के रागरजित होने पर, समुद्र के उद्वेलित होने पर, कमलों के मुद जाने पर, आकाश के स्वच्छ होने पर, अन्धकार के समाप्त होने पर, चक्रवाकों के शोकयुक्त होने पर, कामदेव के दर्परहित होने पर, रात का सम्राट् चन्द्रमा अपनी किरणों को सब ओर फैलाने लगा।"[९८] "कुमुद कलिकाओं को सुविकसित करता हुआ, युवक-युवतियों के चित्त में कामोद्वेग बढाता हुआ, कमलिनियों को सकुचित करता हुआ, मानियों का मान उखाड फेंकता हुआ, सर्वत्र ज्योत्स्ना फैलाता हुआ, अन्धकार का नाश करता हुआ, समुद्र को उद्वेलित करता हुआ, चक्रवाक मिथुनों को विरह से उत्तप्त बनाता हुआ और दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ उदित हो रहा है।"[९९]

चन्द्रमा की चन्द्रिका आकाश और पृथिवी के मध्यभाग में सब जगह फैल जाती है, वातावरण आनन्दमय हो जाता है। इस नैसर्गिक दृश्य की प्रस्तुति में कवि की कल्पना देखिए- "कुमुदों के क्लेशहर्त्ता, शृगार-रचना के दीक्षागुरु, दिक्कामिनी के मुकुर, चकोर के मित्र, बर्फ के समान स्वच्छ कान्तिवाले चन्द्रमा के पूर्ण रूप से प्रकाश करने पर आकाश और पृथ्वी का अन्तराल क्या कपूर की धूल से भर गया, क्या चन्दन से लिप गया, क्या पारे से धो दिया गया अथवा स्फटिक की शिला से पाट दिया गया।"[१००]

चतुर्दश अक में विभीषण को लका के राजसिहासन पर बैठाकर राम सीता के साथ पुष्पकविमान में विराजमान होकर अयोध्या के लिये चल पडते हैं। उस समय चन्द्रोदय का चित्राकन अन्तकरण को स्पर्श करने में समर्थ है- "वियोगियों को सूर्य के समान तापदायक, शृगार की दीक्षामणि, कामरूप भुजग के मस्तक की मणि, पार्वतीपति शिव की भालमणि, तारारूप मुक्तमाला की मध्यमणि, कामरमणी की करधनी की मध्यमणि और चकोरी का सर्वस्व चन्द्रमा उदित हो रहा है।"[१०१]

वनवासकाल में राम गोदावरी नदी के आसन्नवर्त्ती दण्डकवन में अपनी पर्णकुटी बनाते हैं। कवि ने इस पर्णकुटी एव गोदावरी नदी की रमणीयता एव विशिष्टता को जिस रूप में सगीतात्मक अनुप्रासयुक्त शैली में अकित है वह लोकोत्तर है। लक्ष्मण राम से निवेदन करते हैं-

एषा पंचवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पचावटी
पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी सश्लेषभित्तौ वटी।
गोदा यत्र नटी तरंगिततटी कल्लोलचचत्पुटी
दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटी भूतक्रियादुष्कटी।।''[१०२]

हे रघूत्तम! वट के पॉच वृक्षों का समूह यह पञ्चवटी हमारी कुटी के सर्वथा योग्य है। इन पॉचों वटवृक्षों की जड में सरस्वती के पॉच कुण्ड हैं। यहॉ पथिकों को जल, छाया आदि मिलती है। इसके दोनों और बडी सुन्दर भूमि है। यह स्त्री-पुत्रादि की माया में फॅसे हुए पुरुषों के क्लेश को दूर करने वाली औषधि की वाटिका है। इसके समीप ही गोदावरी नाचती हुई चली जा रही है जिसके तटों पर तरगे उठ रही हैं, स्रोतों में कल्लोलों का शब्द हो रहा है, दिव्यानन्द की तो यह गोदावरी मानो स्थान है। यह ससार-सागर की नौका है और प्राणियों को साधारण कर्मो से इसका मिलना अत्यन्त कठिन है।

यहॉ कवि ने पञ्चवटी एव गोदावरी के लिए जो विशेषण सयोजित किए हैं, वे इस तथ्य के पोषक हैं कि पवित्र नदियों के तटवर्ती शान्त-वन-प्रदेश मानव के मोहमायाजन्य क्लेश का हरण करते हैं, उसे ससार-सागर से पार लगाते हैं तथा लोकोत्तर आनन्द प्रदान करते हैं।

हनुमन्नाटककार ने काञ्चनमृग के रूप तथा अग-विक्षेप का ऐसा निरूपण किया है कि सहृदय साक्षात् मृग का ही दर्शन करता है- ''मृग का सारा शरीर सोने का बना है। दोनों सींग मरकतमणि के हैं और चारों खुर मूगे के हैं। उसके दोनों ओठ मोतियों की कान्ति की तरह दमकते हैं और दोनों नेत्र विशाल और नीली पुतलियों से युक्त हैं। उस मृग का चारों ओर देखना बडा ही चचलता पूर्ण है। उसके अग रत्नमय हैं। अधिक क्या कहा जाए, वह मृग सब प्रकार से सुन्दर है।''[१०३] ''वह मायामृग कभी हाथों से पकडने योग्य स्थान पर आ पहुचता हैं, कभी घास सूघने लगता है, परन्तु हाथ नहीं आता। कभी लता-कुंजों में जाकर कोमल पत्तों को सूघ-सूघ कर लौट आता है। फिर भयभीत होता है और चारों ओर देखने लगता है। कभी अपना शरीर खुजलाता है, कभी भागता है, कभी दूर खडा होता है और कभी इधर-उधर कतरा जाता है।''[१०४]

मृग का वर्णन करते हुए कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् का 'ग्रीवाभङ्गाभिरामम्'[१०५] श्लोक भी जोड दिया है जो कथाक्रम की दृष्टि से

उचित प्रतीत होता है, क्योंकि राम रथारूढ होकर मृग का पीछा नहीं करते, अपितु पैदल ही जाते हैं।

कवि हनुमान् प्रकृति के परुष रूप का वर्णन करने में भी दक्ष हैं। उन्होंने पचम अक में सघन अटवी का वर्णन जिस क्लिष्ट एव समासयुक्त पदावली में किया है उसमें प्रवेश क्लेशकर है।[१०६] यह वर्णन बाण की विन्ध्याटवी का स्मरण करा देता है।

षष्ठ अक में हनुमान् सीता का पता लगाने के लिए जैसे ही समुद्र के तट पर पहुचते हैं उसी समय झझावात आ जाता है जो कि "समुद्र की उत्ताल लहरों के सयोग से लोगों के मर्म स्थान में पीडा पहुचा रहा है। कदम्ब पुष्पों के पराग से दिशाओं को आच्छादित कर रहा है। प्रचड आधी के मिलने से घनीभूत मेघघटा के सयोग से आकाश और गाढे श्याम रग का सा हो रहा है और इसके फटने से ब्रह्माण्ड कटाह से चूते हुए स्वर्गगा के प्रवाह के जलकणों से युक्त और दुरतिक्रमणीय बन रहा है।"[१०७]

चतुर्दश अक में राम सीता को पूर्वदृष्ट पर्वतों को दिखलाते हुए कहते हैं- "समुद्र का जल पीकर, उसमें स्नान कर बहुकाल-दृष्ट मैनाक के प्रति प्रीति के कारण द्विगुणित धाराओं से निर्झरों को भरते, इधर-उधर बिखरे, जलते औषधि-समूह से जगमग, समुद्र-तट से सटे, वानर-सेना के शिविर के स्मारक से सेतु के निमित्त लाये हुए पर्वत दिखलाई पडते हैं।"[१०८]

कविवर राजशेखर ने बालरामायण में नाटक के कलेवर के अनुरूप ही प्रकृति का भी विशद वर्णन किया है। इस नाटक में कवि ने सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, ग्रीष्मादि षड्ऋतु, वायु, अग्नि, नदी, पर्वत, समुद्र आदि प्राय सभी प्राकृतिक उपादानों का वर्णन किया है।

नाटक के प्रारम्भ में विश्वामित्र-शिष्य शुन शेप उदित होते हुए सूर्य को देखकर कहते हैं- "मृदु लाल रग का सूर्य-तेज कैसा सुन्दर है। प्रात काल जिनसे वृक्षों के नवीन पल्लव विद्रुम के समान हो जाते हैं, त्रिलोकी रूपी राजमहल के प्रागण की करदीपिका, दिवस रूपी गजराज की रक्त कर्णचामर कोमल सूर्य की किरणें बिखर रही है। जो यह आकाश में आगे ज्योति चल रही है वह पुराण पुरुष पूषा हैं। इनके शिष्य याज्ञवल्क्य हैं और उन (याज्ञवल्क्य) के भी वे योगी राजा जनक शिष्य हैं।"[१०९]

तृतीय अक में पुन सूर्य का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए कवि कहता है- "उन पुराण पुरुष पूषा को नमस्कार है जिनका बिम्ब आकाश की मणि

है, जलों की प्रसूति है, जो रात्रि में अग्नि शिखाओं को अपनी दीप्ति अर्पित करता है और जिसकी किरणें रात्रि में चन्द्रमा में चन्द्रिका बन जाती हैं, उन (पुराण पुरुष सूर्य) से मनुष्य राजाओं के बीजभूत मनु उत्पन्न हुए जिनके वश में वे सागर तथा वे भगीरथ हुए जिनमें एक ने तो इस समुद्र को (खनकर) बनाया तथा दूसरे ने सिद्धसरिता गगा के द्वारा उसे भरा।"[११०]

आचार्य राजशेखर द्वारा किया गया सूर्य का यह वर्णन वैदिक ऋचाओं में ऋषियों द्वारा की गई स्तुतिगतभावों एव पौराणिक आख्यानों के सकेतों से समन्वित है।

माध्यदिनी सन्ध्या का चित्रण भी लोकोत्तर है- "मध्याह्न काल में अपने फण रूपी मृणाल में छिपा हुआ सर्प शीतल श्रीखण्ड (चन्दन) को आवेष्ठित कर (लपेट) रहा है, छायादार, वृक्ष को नीचे चमरी गायें जुगाली कर रही है, ईर्ष्यापूर्ण यह कोई नायिका (खण्डिता) धूप से सतप्त कान्त को आलिगन कर रही है तथा कस्तूरिका वाली मृग ग्रन्थिपर्ण की कुल्या में विचरण करने के लिये टहल रही है।"[१११]

सायतनी सन्ध्या में अस्ताचल की ओर जाते हुए सूर्य का वर्णन मनोमुग्धकारी है- "ये ग्रहश्रेष्ठ सूर्यदेव माञ्जिष्ठ रग के सूत्र की भॉति किरणों को इकट्ठा करते हुए अस्ताचल-चुम्बिनी परिणति को प्राप्त कर रहे हैं और यहॉ से भी ये हवा से उडायी गयी कमलधूलियों से छत्रित होते हुए क्षीण-ज्योति होकर समुद्र में डूब रहे हैं।"[११२]

अपि च-

"वेदत्रयी स्वरूप भगवान् सूर्य कमलों को सकुचित होने का आदेश देते हुए विद्रुम के टुकडे की भॉति सुन्दर शरीर होकर तथा धूपरहित होकर अस्ताचल की ओर जा रहे हैं जिनकी मजीठ रग के सूत्रों के समान किरणों के सामने मृणाल युक्त नीलकमलों के समान फैलता हुआ अन्धकार शोभित हो रहा है।"[११३]

इन सन्ध्या कालीन चित्रों को कवि ने राम एव रावण के सेवकों के मुख से 'सुखाय माध्यंदिनी सन्ध्या भवतु देवस्य', 'सुखाय सायतनी सन्ध्या भवतु देवस्य' आदि वाक्य से प्रारम्भ करके प्रस्तुत कराया है जो इस बात का द्योतक है कि कवि राजशेखर सभी सन्ध्याओं में देवोपासना को हितकारी मानते हैं।

पचम अक में रावण मनोविनोद के लिये सभी ऋतुओं से समलकृत लीला उद्यान में प्रतिहारी के साथ जाता है। इस प्रसग में कवि ने रावण एव प्रतिहारी के वार्तालाप के माध्यम से क्रमश ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर एव वसन्त सभी ऋतुओं का गद्य-पद्यात्मक वर्णन किया है।[११४] यह ऋतु-वर्णन महाकवि कालिदास के ऋतुसहार का प्रतिमान प्रतीत होता है। वसन्त ऋतु का चित्रण द्रष्टव्य है- "फैली हुई प्रियगु लताओं के समूह वाला, सघन पल्लवों से युक्त अशोकलता-वाला, उच्च्य स्वर में कोकिल के कण्ठ से मुखरित, कुटजों की ग्रन्थियों पर लिपटी ताम्बूल की लता के समूहों वाला तथा टूट रहे पुष्पित शोभाञ्जन (सोहॅजना) के वृक्षों से युक्त समस्त विरहियों को मरण के सशय में डालने वाला यह वसन्त है।" "इस समय तो मल्लिका दुग्ध के समान मनोहर पुष्पों को उत्पन्न करती है, अशोक वृक्ष वाह्लीकनारियों के दशनक्षत के द्वारा उत्पन्न अरुणिमा के समान लाल-लाल दलों वाले पत्तों से अर्चित है, यह किशुक भौंरों से पोरों (कोटि) के व्याप्त होने से कुछ विशेष डाली वाला है तथा मञ्जिष्ठ रग के मुकुलों से गुलाब की कुछ दूसरी ही शोभा है।"[११५]

सीता-लक्ष्मण आदि के साथ राम के यात्रा-प्रसग में कवि ने विविध प्राकृतिक स्थलों का वर्णन बडे विस्तार से किया हे। इस सन्दर्भ में पर्वतराज हिमालय का चित्रण प्राय सभी पौराणिक कथा सकेतों के साथ हुआ है। राम-सीता एव विद्याधर रत्नशेखर अपनी-अपनी दृष्टि से हिमालय का वर्णन करते हैं यथा- "यह देववृन्द-वन्दित रुद्र-चरण से स्पष्ट शिलाओं वाले, गगा के स्रोतसीमा बने नितम्ब वाले, गणेश के दन्त से खनित मेखला वाले, शिव के वृषभ नन्दी के खुर से खण्डित धरणी वाले, सप्तर्षियों से अवचित मन्दारपुष्प वाले, समस्त जनों के आदरणीय पार्वतीपिता हिमालय हैं। यह सेनापति शकर के श्वसुर हैं, उमा इनकी पुत्री हैं, ये गणेश के मातामह हैं। यहा पर श्यामाक धान्य की मुट्ठी से जीवन बिताने वाले सयमी लोग अपने-अपने आश्रमों में दिव्यदेह धारण किये काम की आज्ञा से क्रीडा करते हैं। इसके कुज में पार्वती ने सहस्रों वर्षो तक तपस्या कर शिव के प्रेम को प्राप्त किया था। यहीं पर विवाहित पार्वती में प्रेमाविष्ट होकर भगवान् चन्द्रशेखर अर्धनारीश्वर हुए थे और पहचान की कमी के कारण देवों से वन्दित चरण होने पर वाम बाहु से दक्षिण बाहु पीटकर हसने लगे, यहीं पर पार्वती से विवाह हुआ, यहीं गगा धारण की गई, यहीं दन्ती असुर मारा गया, यहीं ब्रह्मा का सिर काटा गया और यहीं गुरु (दक्ष) के वध के निर्मित मातृकाओं का निर्माण हुआ और यहीं सिद्धों से प्राचीन सिद्ध गणों

द्वारा असुरों की दुर्गम पुरी के द्वार को तोडने की मुद्रा का मधुर वर्णन किया जाता है।"[११६]

इस क्रम में कवि ने मानसरोवर का वर्णन बडी सहृदयता से किया है। विद्याधर रत्नशेखर मानसरोवर की महिमा का वर्णन करते हुए राम एव सीता से कहता है- "कलहस पक्षियों का उत्पत्तिगृह, स्वर्ण-कमलों की प्रसवभूमि, भगवान् शकर की क्रीडा-वापी, जल में निमग्न छिपे हुए मद वाले अत्यधिक अन्तस्ताप सम्पन्न गणेश द्वारा वेगपूर्वक पान करने से समाप्त तरगों वाला, आकाश में भ्रमण करने वाले चन्द्रमा के मृग द्वारा चाटे गए जल बिन्दुओं वाला, तट पर नीड रचने वाले कार्तिकेय के मयूर द्वारा चोंच फैलाकर लिये गये जल वाला, जलहस्ती एव मकरों के भय से ऐरावत द्वारा सेवित हरित तृणयुक्त तटवाला, शिव के वृषभ से युक्त कूल वाला, सन्तानक (एक देववृक्ष) के वन में आदि वराह द्वारा गाये गये ऐश्वर्य वाला, विष्णुरूपी कच्छप द्वारा अभिलषित अन्त निवास वाला, नारायण रूपी महामत्स्य द्वारा पीत जल वाला, तीनों सन्ध्याओं में अरुन्धती के हाथों द्वारा लिये गये कमलिनी-पत्र रूपी पात्रों से इन्द्र के मन को प्रसन्न करने वाला मानस नाम का दिव्य सरोवर है।"[११७] "यह देवों का सरोवर है। अपने प्रिय की अर्चना के लिये पार्वती द्वारा इसके स्वर्ण-कमल तोडे गए हैं। यहाँ से गगा नदी निकली है तथा इसी से देवर्षि लोग उत्कृष्ट पर्वो में स्नान कर निकले हुए भगवान् शकर के भस्मयुक्त पवित्र जल ग्रहण करते हैं।"[११८]

इसी सन्दर्भ में चन्द्रमा का वर्णन भी परम्परा के अनुकूल ही हुआ है। रत्नशेखर चन्द्रलोक में उदित हुए चन्द्रमा को देखकर कहता है- "आकाशमण्डल को तत्काल चन्दन के पक से सिक्त की भाँति बनाता हुआ, ऐरावत के दन्तरूपी मुसल की खण्ड से उपमेय आकृति वाला, स्वच्छ मौक्तिक लता के समान लम्बी-लम्बी लटकती हुई किरणों से कामिनियों के प्रेम-पत्र की पठन कला में विलास दीपिका स्वरूप यह चन्द्रमा उदित हो रहा है। यह गौराङ्गी सुन्दरियों के मुख की उपमा से परिचित, ताराओं रूप वधुओं का प्रियतम, तत्काल मार्जित दाक्षिणात्य युवती के दाँतों के समान धवल कान्ति वाला भगवान् शकर का शिरोभूषण, रघुवशी राजाओं का सम्बन्धी तथा काम व्यापार में दीक्षा-गुरु हैं।"[११९]

कवि जयदेव ने प्रसन्नराघवनाटक के विविध प्रसंगों में सूर्योदय, प्रात काल, सूर्यास्त, सन्ध्या, रात्रि, अन्धकार, चन्द्रोदय, सरोवर, नदी, वृक्ष, वन, आकाश आदि प्रकृति के अगों का आलम्बन रूप में बडा स्वाभाविक तथा

हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। मार्ग में -मधुमास के आगमन से बढी हुई उपवन की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं- "इस उपवन में बेला के फूल का रस पीने वाली भ्रमरियों की चित्तोकर्षक मन्द मधुर गुजार सुशोभित हो रही है तथा दक्षिण दिशा से बहने वाले वायु के द्वारा पग-पग पर सिखलायी गई अशोक की मजरी विलासपूर्वक नाच रही है।"[१२०] इसी सन्दर्भ में वसन्तऋतु की वायु का वर्णन भी द्रष्टव्य है- "मलयपर्वत की चोटी से लेकर कैलासपर्वत तक के पृथिवी मण्डल को, कामदेव की आज्ञा से, जीतने की इच्छा करता हुआ वसन्त ऋतु का वायु यह सोचकर डरता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ रहा है कि कहीं कैलास पर्वत की चोटी पर निवास करने वाले शकर के महासर्प मुझे पी न जाए।"[१२१]

वस्तुत यह बडी अद्भुत कल्पना है। कामदेव का सेवक वसन्त ऋतु कामदेव की आज्ञा से कैलास पर्वत की ओर चल तो देता है परन्तु जैसे ही उसे कैलास निवासी शिव का ध्यान आया तो वह भय से कापने लगता है। वह सोचता है कि मेरे स्पर्श से कहीं शकर का मन विकृत हो गया तो वह मुझे मेरे स्वामी कामदेव की तरह की भस्म कर देंगे। साथ ही उनके सर्प भी हमें पी जाएगें, अत वह डरता हुआ सा कैलास पर्वत की ओर जा रहा है।

राम एव लक्ष्मण के उपवन में घूमते ही सन्ध्या हो जाती है जिसे देखकर लक्ष्मण कहते हैं- "नि सदेह अत्यन्त सुन्दर, अनायास ही कामदेव की धनुर्लता को जीतने वाले चन्द्रमा की कान्ति को बढाती हुई लालिमा से भरपूर ताराओं की शोभा को बढाने वाली सन्ध्या उसी प्रकार प्रकट हो रही है जिस प्रकार अपने प्रिय में अनुराग को बढाती हुई, प्रेमयुक्त ऑखों की पुतलियों की शोभा को प्रदर्शित करने वाली पति का वरण करने वाली युवती उपस्थित होती है।"[१२२] सन्ध्या का यह वर्णन बडा ही हृदयावर्जक है। पतिम्वरा युवती के रूप में सन्ध्या की कल्पना अलौकिक है।

सन्ध्या के साथ ही सूर्यास्त हो जाता है जिसे देखकर राम कहते हैं- "भगवान् सूर्य तीनों लोकों के कमलों को विकसित करके, समुद्र के भीतर सोते हुए विष्णु की नाभि में स्थित कमल को विकसित करने के लिये उत्कण्ठित सा होते हुए अब सागर के गर्भ में प्रवेश कर रहे हैं।"[१२३] सूर्यास्त होने पर आकाश में एक दिशा में अन्धकार हो गया है और दूसरी दिशा में चॉदनी फैल रही है, इस दृश्य को कवि ने एक सुन्दर कल्पना के साथ

प्रस्तुत किया है- "व्यभिचारिणी स्त्रियों के हितकर्ता घने अन्धकार के पूर्व में प्रविष्ट होने पर तथा व्यभिचारिणियों के वैरी चन्द्रमा की किरणों के पशिचम दिशा में व्याप्त होने पर आधा नीलमणि के तथा आधा स्फटिक मणि से युक्त सा दिशाओं का मध्यभाग, यमुना और गगा से सगम के स्वच्छ जल के समूह की समानता को व्यक्त कर रहा है।"[१२४]

इसी बीच चन्द्रोदय हो जाता है जिसका चित्रण बहुत ही रमणीक है- "चकवीजनों के हृदय का कॉटा, बन्द चकोरों की स्त्रियों के चोंच के अग्रभाग किवाडों के खोलने वाली कुञ्जी, जलकर राख हुए भी कामरूपी वृक्ष का नवीन अकुर, सद्य अपराध करने वालों की प्रियतमाओं के मान रूप मदमत्त गज के लिए अकुश, चन्द्रमा का सुन्दर यह शरीर अत्यधिक उत्कृष्टता के साथ प्रकाशित हो रहा है। बडी-बडी लहरियों से धुल गया है कलकरूप कीचड जिसका ऐसा, शकर के सिर पर स्थित आकाशगगा के मृणाल के समान, कर्पूर के चूर्ण के ढेर के समान, कामदेव की पत्नी के मदिरा पीने के समान, क्षीरसागर के बन्धु, आकाश रूप कमललता के पत्ते पर स्थित जल बूँद के समान चन्द्रमा का लोकभूषण यह टुकडा किस के मन में सन्तोष नहीं उत्पन्न करता?"[१२५]

महाकवि जयदेव द्वारा चन्द्रमा के जो विशेषण तथा उपमान प्रस्तुत किए गए हैं यह उनकी अपूर्व कवित्व शक्ति का परिचायक है। वस्तुत· कवि को चन्द्रोदय का दृश्य विशेष प्रिय है तभी तो उन्होंने सातवें अक में बारह श्लोकों में चन्द्रोदय का नैसर्गिक तथा मनोहारी वर्णन किया है।[१२६]

प्रसन्नराघवकार ने सूर्योदय का भी अनेक स्थानों पर वर्णन किया है। यथा-जनकपुरी में राम और लक्ष्मण के साथ प्रवेश करते हुए विश्वामित्र प्रात काल उदित होते·हुए सूर्य को देखकर कहते हैं- "चकवा नामक पक्षियों के हृदय को आश्वासन देने के लिए, तारागणों को छिपा देने के लिए, दिशाओं रूपी सुन्दरियों के स्तनकलशों पर कुकुम के रस का लेप करने के लिये अर्थात् दिशाओं में सुनहरा प्रकाश फैलाने के लिए, कमलों को विकसित करने के लिए, कुमुदवन को सकुचित करने के लिए प्रभाओं के आकर सूर्यदेव प्रकाशित हो रहे हैं।"[१२७]

सप्तम अक में राम पुष्पक विमान से लक्ष्मण, सीता आदि के साथ भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुच जाते हैं। प्रात काल हो जाता है। चन्द्रमा अस्ताचल की ओर जा रहा है तथा सूर्य उदित हो रहा है। इस दृश्य को

कवि बहुत ही मनोहारी रूप में प्रस्तुत करता है- "चक्रवाक की स्त्रियों की क्रीडा का समय प्रभात हो गया है, जैसे कि केतक पुष्प के पराग के समान घूसर कान्ति वाली चन्द्रमा की किरणें वृद्धावस्था से जर्जर सम्प्रति पश्चिम सागर के तट को पहुच गई हैं तथा खिलती हुई कमलश्रेणी के दृष्टिपात से सत्कार की गई सूर्य की तरुण किरणें भी पूर्व दिशा रूपी नायिका के राग अर्थात् लालिमा और अनुराग को बढा रही है तथा भगवान् सूर्य शीघ्र ही परस्पर मिलने वाले चक्रवाकों की जोडी के बहाने विशाल स्तनों की जोडी से सूचित यौवन से प्रकाशित कान्ति वाली दिशारूप कन्याओं का निर्माण करके ललाट में दुर्भाग्य की अक्षर-पक्ति की तरह भ्रमरों की श्रेणी को सद्य खींचकर कमलिनी-जन की लक्ष्मी का विस्तार कर रहे हैं।"[१२८]

इसी सन्दर्भ में सूर्य के उदित होने के साथ ही चारों ओर फैलती हुई किरणों का वर्णन भी चित्ताकर्षक है- "रात्रि रूपी राक्षसी को दूर भगाने में मान्त्रिक सायकाल से ही आलस्यपूर्वक सोए हुए कमलवन को जगाने अर्थात् विकसित करने में स्तुति-पाठक, विकसित होते हुए कमलों की कली के भीतर गह्वर से निकलने वाली भ्रमर-पक्ति के गुञ्जनरूप ओंकार के उपदेश देने में गुरु, सूर्य के मयूख प्रकाशित हो रहे हैं।"[१२८]

सूर्योदय का यह वर्णन जयदेव ने कवि-परम्परा के अनुरूप ही किया है, इसे पढकर सहृदय पाठक सहज की कवि-प्रतिभा से प्रभावित हो जाता है।

पचम अक में वनवास के लिए निकले हुए राम को पथिकों द्वारा जो दिशा निर्देश दिया गया है उसमें प्रकृति के तत्त्वों नदी, सरोवर, वृक्ष, कमल आदि का मधुर तथा सुहावना चित्रण है- "मार्ग समतल तथा बालुकामय है। पृथ्वी कोमल घासों से आच्छादित है। बेंतों से घिरी हुई शीतल जल से पूर्ण नदी समीप ही है। आगे कुमुदों से भरपूर, कलहसों एव सामान्य हसों के कूजन से व्याप्त यह सरोवर भी सुशोभित हो रहा है। इधर शीतल छाया वाला, फूलों के रसकणों की वर्षा करने वाला यह वृक्ष है। इधर पतली एव निर्मल जल की धारा से मनोहर यह नदी है। इधर मन्द मनोहर सुगन्ध वाला, बारम्बार मधुर गुजन करने वाली भ्रमरियों के कारण सुन्दर स्थान वाला कमलों का यह वन है।"[१३०]

राम के वनगमन के प्रसग में नर्मदा एव गोदावरी नदियों का चित्रण प्रकृति की सहज आभा से अनुप्राणित हैं। हस यमुना से राम के विषय में

बताते हुए कहता है- "तदनन्तर किरातों के बाणों से विदीर्ण विन्ध्यपर्वत के हाथियों के कपोलस्थलों से निकले हुए मोतियों के समूह से चित्रित, तीर की लताओं के निकुञ्ज रूप आच्छादन से युक्त, सुखदायिनी नर्मदा को पार कर शीघ्र ही चञ्चल कानों के छोर से छुए गये मतवाले हाथियों के गण्डस्थलों से उडे हुए सहचर के समागम से प्रसन्न भ्रमरियों से मधुर और सरस पुष्प-केसरों से सम्पन्न गोदावरी के तट को चले गये।"[१३१]

गगा नदी की श्रेष्ठता का वर्णन भी कवि ने अनुप्रास का आश्रय लेकर बहुत सुन्दर रूप में किया है। राम सीता से कहते हैं-

तरलतरतरङ्गभङ्गहेलाबहलविलासविलोलहंसमाला।
अमरपुरतरङ्गिणीयमम्बा सुरनरमङ्गलकारिणी न दूरे।।[१३२]

अर्थात् अत्यन्त चञ्चल तरगों की टूटने की क्रीडा में प्रचुर विलास के साथ हसों की श्रेणी से युक्त, देवों तथा मानवों की कल्याण करने वाली यह मॉ गगा अब दूर नहीं हैं।

इस प्रकार महाकवि जयदेव ने प्रसन्नराघव में यथाप्रसग प्रकृति के दृश्यों का वर्णन आलम्बन रूप में, सहज, सरल तथा सरस भाषा में किया है। इन वर्णनों में कल्पना अपूर्व है, कृत्रिमता का अभाव है। सप्तम अक में चन्द्रमा का वर्णन कवि ने कुछ आवश्यकता से अधिक कर दिया है, परन्तु इस वर्णन में भी कवि की कल्पना चातुरी सहृदय पाठक को अवश्य प्रभावित करती है।

प लक्ष्मणसूरि ने पौलस्त्यवधनाटक में एक दो प्रसगों में प्रकृति को आलम्बन रूप में निरूपित किया है। तृतीय अक में राम एव लक्ष्मण सीता की खोज में निकलते हैं। मार्ग में विचरते हुए हरिणों को देखकर लक्ष्मण राम से कहते हैं- "हे आर्य! देखो ये हरिण दक्षिण दिशा में दौडते हैं, फिर क्रीडापूर्वक हमारी ओर आते हैं, सामने खडे हो जाते हैं, मानों हमें ये कुछ कहने वाले हैं। उसी दिशा में देखते हुए तथा उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए हमारे आगे-आगे सीता की स्थिति का मानों उपदेश कर रहे हैं।"[१३३]

यहॉ कवि ने हरिणों के स्वाभाविक वन-विचरण को विषय के साथ जोडकर हृदयस्पर्शी बना दिया है।

विश्वेश्वरदयालु ने अपने प्रसन्नहनुमन्नाटक में तीन चार स्थलों पर प्रकृति का आलम्बन रूप में निरूपण किया है। प्रथम अक में केसरी की वीरता के प्रसग में एक मदोन्मत्त गज का वर्णन बडा भयावह है- "चारों ओर

फैलती हुई सूँड के अग्रभाग से फूत्कार की क्रीडा करता हुआ, वस्तुओं को खींचकर, पैरों से कुचलकर आकाश में फेंकता हुआ, टपकते हुए मदजल से पङ्किल मार्ग में लडखडाता हुआ, मदान्ध हाथी तेज गति से आ रहा है।''[१३४]

इस मदोद्धत गज-वर्णन को पढकर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि विश्वेश्वर इस कल्पना के सयोजन में अभिज्ञान-शाकुन्तल के 'तीव्राघातप्रतिहततरु' ''[१३५] श्लोक से प्रभावित हुए हैं।

कवि का मन प्राकृतिक सुषमा के प्रति आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता तथा प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य को देखते हुए कवि का हृदय नवनवोन्मेषशाली हो जाता है। इस भाव को प्रकट करने के लिए दयालु विश्वेश्वर विद्याधर-दम्पत्ति को मच पर प्रवेश कराकर विद्याधर के मुख से प्रभात-कालीन वायु का वर्णन कराते हैं- "निद्रा से उत्पन्न जडता को हरण करता हुआ यह वायु लोगों के हृदय में उत्साह को पूरित कर रहा है। कवियों के हृदय में नवीन स्फूर्ति को भरता हुआ यह प्रात कालीन वायु किसे अच्छा नहीं लगता।''[१३६]

इसी के साथ सूर्योदय का चित्रण भी द्रष्टव्य है- "प्राची दिशा रूपी प्रियतमा के भवन के बाहरी आकाश रूपी दीवार को बालरश्मियों रूपी स्वर्ण-जल से लीपता हुआ, अपने प्रिय से मिली हुई चकवियों द्वारा आनन्दपूर्वक आदर किया जाता हुआ, देवाङ्गनाओं के मस्तक पर चमकते हुए कुङ्कुम के समान, तेजस्वियों में श्रेष्ठ सूर्य उदित हो रहे हैं।''[१३७] यहाँ कवि ने सूर्य के लोकोत्तर रूप का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है।

द्वितीय अक में सुग्रीव के राज्याभिषेक के पश्चात् राम सुग्रीव से सीता का पता लगाने के लिए कहते हैं। तभी वर्षा ऋतु आ जाती है। इसका वर्णन कवि ने बहुत ही शिक्षाप्रद भावों के साथ कई श्लोकों में किया है- "माया से आवृत्त बुद्धि के समान मेघों से आच्छन्न सूर्य दृष्टिगत नहीं हो रहा है। कुछ बादल उसी प्रकार निरन्तर गर्जन कर रहे हैं, जैसे अहकारी मूर्खजन व्यर्थ ही बोलते रहते हैं।''[१३८] आकाश में बादलों के भयकर गर्जन को सुनकर केका शब्द करते हुए मयूर नृत्य कर रहे हैं जिस प्रकार अनैतिक कार्यो में नियुक्त होने पर राजा के स्वभावत दुष्ट मन्त्री प्रसन्न होते हैं।''[१३९] "व्यर्थ ही बढे हुए कीट, पतगे, मच्छर मनुष्यों को काटते रहते हैं यथा दुर्जन अकारण ही सज्जनों को पीडित करते रहते हैं।''[१४०]

"जिस प्रकार वर्षा के जल से पृथ्वी शस्य-श्यामला हो जाती है, उसी

प्रकार परोपकार में लगे चित्त वाले सज्जन धन-धान्य को प्राप्त करते हैं।"[१४१] "जिस प्रकार निरन्तर चिन्तन से सन्त ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार दो बादलों के सघर्षण से आकाश में बिजली रूपी तेज प्रकट होता है।"[१४२]

वर्षा ऋतु विषयक वर्णन के माध्यम से महाकवि दयालु विश्वेश्वर ने अज्ञानी, मूर्ख, दुष्ट-प्रकृति, दुर्बुद्धि, सज्जन तथा ज्ञानी जनों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला है।

तृतीय अक में हनुमान् सीता का पता लगाने हेतु लका पहुँचते हैं तथा वहाँ अशोक वाटिका की रमणीयता को देखकर कहते हैं- "यह अनेक बडे-बडे वृक्षों से सम्पन्न, अनेक लताओं से सघन, सुगन्धित पुष्पों की सुगन्ध से मतवाले भ्रमरों की झकार से गुजायमान अशोकवन है। नाना फलों से सम्पन्न वृक्ष अपने चपल पल्लवों रूपी हाथों से मानो मुझे बुला रहे हैं। यहाँ की भूमि अनेक मणियों के फर्श वाली है। यह सोने की सीढियों वाला अनेक प्रकार के कमलों से पूर्ण, स्वच्छ जलवाला तालाब है।[१४१]

श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन ही प्रकृति की क्रोड में व्यतीत हुआ। राजभवन के लिये तो वे पैदा ही नहीं हुए थे। ऋषि, मुनि, तपस्वियों की यज्ञरक्षा, असत्प्रवृत्तियों का विनाश कर सत्प्रवृत्तियों की प्रतिष्ठा करना ही, उनके जीवन का गुरुतर दायित्व था। साक्षात् नाटकों के प्रणेताओं ने अत्यन्त विस्तार के साथ प्रकृति के विभिन्न रूपों को दृश्य कम, श्रव्य अधिक बना दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि हम महाकाव्य पढ रहे हैं। मुरारि, जयदेव, राजशेखर का आलम्बन रूप में प्रकृति वर्णन कथावस्तु की गति को शिथिल बना देता है। इनके नाटकों में सूर्योदय, सूर्यास्त, रात्रि, चन्द्रमा, चन्द्रिका, पर्वत, नदियाँ तथा आश्रमों का वर्णन महाकाव्य शैली से हुआ, जबकि नाटकों में प्रकृति वर्णन सूक्ष्म एव प्रतीकात्मक होना चाहिये। इस दृष्टि से भास के नाटकों का आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण प्रभावोत्पादक, सूक्ष्म एव हृदयावर्जक है। महाकवि भवभूति एव उनके उत्तरकालीन महाकवियों का प्रकृति वर्णन एक ही लीक का अनुसरण करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि एक दूसरे से बढ जाना चाहते हों। वर्णन की होड में कविजनों में नाटकीयता को भुलाकर महाकवि पद प्राप्ति की लालसा अधिक प्रतीत होती है।

सन्दर्भ

१ अपारे काव्य-ससारे कविरेक प्रजापति ।
यथास्मै रोचते विश्व तथैव परिवर्तते।। अग्निपुराण, ३३६/१०
२ नियतिकृतनियमरहिता ह्लादैकयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरा निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।। का प्र १/१
३ आधुनिक कवि, भाग २, पृ १
४ चिन्तामणि, भाग १, पृ १०१
५ डॉ. सुखदेव, भक्तिकाव्य में प्रकृति-चित्रण, पृ ३३ पर उद्धृत
६ द्र , अभि , २/५
७ द्र , वही, ४/३
८ द्र , वही, ४/१७
९ द्र , वही, ४/२३
१०. द्र , प्रति , १/२८
११ द्र , वही ५/२
१२ द्र , वही, अक ५, पृ. १६२-१६३
१३ द्र , कुन्द १/५
१४ द्र , वही १/३०
१५ मरकतहरितानामम्भसामेकयोनिर्मदकलकलहसीगीतरम्योपकण्ठा।
नलिनवनविकासैर्वासयन्ती दिगन्तान् नरवर पुरतस्ते दृश्यते गोमतीयम्।।
वहीं, ३/५
१६ द्र., वही, ३/८
१७ द्र , वही, ३/९
१८ वही, ३/१७
१९ द्र , वही, ४/३
२० द्र , वही, अक ४, पृ ९६-९७
२१ द्र , वही, ४/६-७
२२ आकर्षात् प्रग्रहाणा नियमितगतयो चोदितास्त्रोपातै-

नैव स्थातु न यातु सचकितचरणा सारथे पारयन्त।
दुर्विन्यस्तै खुराग्रैर्विषमपरिसरादस्तशैलस्य शृगा-
द्गाहन्ते वारिराशि कथमपि विधुरा वाजिनस्तिग्मरश्मे ।। कुन्द०, ४/२५

२३ म च , ५/१

२४ वही, ५/२

२५ वही, अक ५, पृ २०३

२६ वही, ५/३२

२७ वही, ५/४०-४१

२८ वही, ७/६

२६ 'सूर्यो जल मही वायुर्वह्निराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मण सोम इत्येतास्तनव क्रमात्।। वि पु १/८/७

३० 'सगरोऽप्यश्वमासाद्य त यज्ञ समापयमास।
सागर चात्मजप्रीत्या पुत्रत्वे कल्पितवान्। वही, ४/४/३२-३३

३१ 'योऽस्माक ज्येष्ठश्वसुरै कृतनिर्माण इव वृद्धपरम्परया श्रूयते। म च , अक ७, पृ ३०६

३२ वही, ७/१६

३३ द्र , वही, ७/१७

३४ एतास्ता पम्पापर्यन्तभूमय यासु बहो कालादनुभूयमानान्यप्यभिज्ञानानि बलाच्चक्षुराकर्षन्ति। वही, अक ७, पृ ३१०

३५ वही, ७/२१

३६ 'गगनवाटिकाया फुल्लानि कुसुमानीव दृश्यन्ते। वही, अक ७, पृ ३१४।

३७ वही, ७/२३-२४

३८ वही, ७/२७

३६ कुमारसम्भव, १/१-१८

४० वही, १/१

४१ द्र , उ च , प्रथम अक, पृ -७२

४२ द्र , वही, प्रथम अक, पृ ८८

४३ द्र , वही, २/६

४४ द्र , वही, २/१४

४५ द्र , वही, २/१६
४६ वही, अक २, पृ १७२
४७ वही, २/२०-२१
४८ वही, अक २, पृ २६-३०
४६ द्र , वही, अक ४, पृ ३०३
५० द्र , वही, ४/२६
५१ द्र , वही, अक-६, पृ ४२४
५२ अ रा , २/१
५३ वही, २/२
५४ दिङ्मण्डलीमुकुटमण्डनपद्मरागरत्नाङ्कुरे किरणमालिनि गर्भितेऽपि।
सौखप्रसुप्तिकमधुव्रतचक्रवालवाचालपङ्कजवनीरसरसा सरस्य ।। वही, २/३
५५ वही, २/४
५६ अ रा , २/१०
५७ वही, २/११
५८ वासासि जीर्णाणि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि सयाति नवानि देही।। गीता २/२२
५६ कारणगुणात्मकत्वात्कार्यस्य साख्यकारिका, १४
६० अ रा , ४/१
६१ वही, ४/२
६२ चक्रवाकमिथुनस्य निशि भिन्नतटाश्रयणम्, का मी , अ १४, पृ २०५
६३ निशाया विकसति कुमुदम्, सा द , ७/२५
६४ अ रा , १/५४
६५ वही, २/२८
६६ ‘ऋङ्मय प्रातरादित्यो मध्याह्ने च यजुर्मय ।
साय साममयचेति त्रयीमय उदाहृत ।।
अ रा , १/२८ प्रकाश सस्कृत टीका से उद्धृत।
६७ मन्त्रसस्कारसपन्नास्तन्वदौदन्वतीरप ।
एतत्त्रयीमय ज्योतिरादित्याख्य निमज्जति।। अ रा २/४६

६८ गगनशिखरमुदयाद्रेरधिरूढा कष्टमर्करथहरय ।
अस्तमहीधरमधुना झटिति सुखेनावरोहन्ति।। वही, २/३२

६६ वही, २/५१

७० वही, २/५२

७१ द्र , वही, २/६६-८२

७२ वही, २/८२

७३ 'अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृत दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति।।
दिवातिथौ तु विमुखे गते यत्पातक नृप।
तदेवाष्टगुण पुसस्सूर्योढे विमुखे गते।। वि पु , ३/११/६८, १०८

७४ द्र , अ रा , १/८-६

७५ वही, ७/६०

७६ वही, ७/६१

७७ 'देव कौस्तुभकिजल्कनीलोत्पलमसौ हरि ।
स्वय किमपि तत्तेपे तप कपटवामन ।। वही, २/१५

७८ वही, २/१६

७६ द्र., वही, २/२३

८० वही, २/२६

८१ वही, २/२६

८२ वही, २/४८

८३ वही , ७/१२

८४ वही, ७/१३

८५ द्र , भा पु , स्कन्ध ८, अध्याय ७-८

८६ द्र , वही, ७/१४-२१

८७ वही, ७/२७

८८ वही, ७/२८

८६ द्र , अ रा., ७/२६-३६

६० द्र , वही, ७/४०-४४

६१ द्र , वही, ७/४५-५१

९२ द्र, आ चू ३/१-२
९३ द्र वही, ३/१२
९४ द्र, वही, ३/१५
९५ वही, ५/५
९६ द्र वही, ६/३
९७ द्र, वही, ६/४
९८ हनु ना, २/३
९९ वही, २/४
१०० हनु ना, २/७ तथा द्र, वही, २/९
१०१ वही, १४/६३
१०२ वही, ३/२२
१०३ वही ३/२६
१०४ वही ४/२
१०५ अभि शा १/७
१०६ द्र ,हनु ना अक ५, पृ ७७-७६
१०७ वही ६/८
१०८ वही, १४/६८
१०९ उष प्रवालद्रुमबालपल्लवास्त्रिलोकहर्म्याङ्णहस्तदीपिका ।
दिनद्विपेन्द्रारुणकर्णचामरा मरीचयोऽर्कस्य लुठन्ति कोमला ।।
यदेतदग्रेसरमम्बरस्थ ज्योति स पूषा पुरुष पुराण। ।
अथास्य शिष्य किल याज्ञवल्क्यस्तस्यापि राजाजनक स योगी।।
बा रा, १/२१-२२
११० वही ३/६८-६९
१११ वही, १/६२
११२ वही, ३/१०
११३ वही, ३/८६
११४ द्र, वही, अक ५, १५०-५६
११५ द्र, वही, अक ५, पृ १५५ तथा ५/३८
११६ वही, १०/२७-३० तथा पृ ३४२ ४४।
११७ वही, अक १०, पृ ३४६

११८ वही, १०/३५
११६ वही, १०/४०-४१
१२० प्र रा , २/३
१२१ वही, २/४
१२२ मुग्धस्य केलिविजितस्मरचापयष्टेरातन्वती रुचिमतीव सुधाकरस्य।
रागोद्धुरा स्फुटमुदञ्चितताारकश्री सध्याविरस्ति ननु कापि पतिवरेव।।
वही, २/३१
१२३ वही, २/३२
१२४ वही, २/३३
१२५ वही, २/३४-३५
१२६ द्र०,वही, ७/५५, ५७, ५६-६२, ६५-६७, ७०-७२
१२७ वही, ३/२
१२८ वही, ७/८१-८२
१२६ वही, ७/८३
१३० वही, ५/२१-२२
१३१ वही, अक ५ पृ २६२
१३२ वही, ७/८८
१३३. पौ व ३/३१
१३४. प्र हनु ना , १/१७
१३५ अभि शा १/२६
१३६ निद्रासमुत्थजडता हरति प्रकामम् सोत्साहमाशु तनुते हृदय जनानाम्।
स्फूर्ति नवा जनयते नितरा कवीनाम् प्रभातिको मरुदय ननु कैर्न मान्य ।।
प्र हनु १/२४
१३७ वही, १/२६
१३८ वही, २/८२
१३६ वही, २/८३
१४० वही, २/८४
१४१ "वर्षाजल प्राप्य यथा वसुन्धरा बभूव सर्वत्र सुसस्यशालिनी।
तथैव सन्तो धनधान्यपूरिता परोपकाराय नियुक्तचेतस ।।वही, २/८५
१४२ वही, २/८६
१४३ वही, अक ३, पृ ५३-५४

चतुर्थ अध्याय

रामाश्रित नाटकों में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण

प्रत्येक प्राणी अपने पार्श्ववर्ती वातावरण से प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से सहज ही प्रभावित होता है। यथा आम्र-मजरी को देखकर कोयल कुहू-कुहू करने लगती है, खिलते हुये पुष्पों की सुगन्ध से मद-मत्त भ्रमर गुजार करने लगते हैं, नवीन मेघों की गर्जना से मदोन्मत्त हाथी चिघाडने लगते है। सूखे-पत्ते में सर्र-सर्र चलते सर्प को देखकर चिडिया चीं-चीं करने लगती हैं। यहॉ महाकवि कालिदास का यह चित्र द्रष्टव्य हैं- "वर्षा-ऋतु में मयूरों का झुण्ड मनोमुग्धकारी मधुर केका-ध्वनि करता हैं, मयूरियों से मिलन रूप उत्सव के लिये उत्कण्ठित रहता हैं, विस्तृत फैलायी हुई पूॅछों से सुशोभित होता हैं, भयसहित आलिगन और चुम्बन में आसक्त रहता है तथा नृत्य प्रारम्भ किए हुए सुन्दर दिखाई पडता है।"[1] इससे स्पष्ट है कि बाह्य वातावरण प्रत्येक जीव के सुख-दु ख का उत्कर्ष तथा अपकर्ष करने में विशेष भूमिका निभाता हैं।

मानव अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक सवेदनशील है। उसके मन-मस्तिष्क पर आस-पास के वातावरण का प्रभाव तुरन्त पडता है। सुगन्ध से मन प्रसन्न हो जाता है और दुर्गन्ध से विकृत। यह सहज प्रक्रिया है। तथ्य की पुष्टि आयुर्वेदाचार्य चरक मुनि के इस उपदेश से भी होती है। वे कहते हैं- "मन के अनुकूल स्थान पर सभी मनपसन्द व्यञ्जनों सहित भोजन करना चाहिये, क्योंकि मन के अनुकूल स्थान पर मनपसन्द सभी व्यञ्जनों के साथ भोजन करता हुआ व्यक्ति अप्रिय स्थान में उत्पन्न होने वाले मन को कष्ट देने वाले भावों से मानसिक कष्ट को प्राप्त नहीं करता है।"[2]

चरक मुनि के उक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव-मनोभाव के उद्वेलन का प्रमुख कारण वातावरण है। काव्यशास्त्र की भाषा में यह उद्दीपन कहलाता है और इस उद्दीपन के अन्तर्गत आचार्यो

ने प्रकृति के विविध उपादानों चन्द्रिका, चन्द्रोदय, कोकिल-कूजन, मन्द-सुगन्ध-समीर, भ्रमर, लतामण्डप, मेघ-गर्जन, नदी आदि को सगृहीत किया है।[३] ये सभी प्राकृतिक तत्त्व अवसरानुकूल मानव के मनोभावों को तीव्र एव उद्दीप्त करते हैं। प्रकृति की उद्दीपन शक्ति उसके सौन्दर्य और साहचर्य के साथ परिस्थिति के सयोग पर भी निर्भर है। आचार्य शुक्ल कहते है कि वन, पर्वत, नदी, निर्झर, वृक्ष, लता, पशु, आकाश, मेघ, नक्षत्र, समुद्र आदि रूपों एव पानी का बहना, सूखे पत्तों का झरना, बिजली का चमकना, घटा का घिरना, नदी का उमडना, मेह का बरसना, कुहरे का छाना आदि व्यापारों का भी मनुष्य-जाति के भावों के साथ अत्यन्त प्राचीन साहचर्य हैं। ऐसे आदि रूपों और व्यापारों में वशानुगत वासना की दीर्घ-परम्परा के प्रभाव से भावों के उद्बोधन की गहरीं शक्ति सचित हैं।[४]

कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रकृति का उद्दीपन रूप में जो चित्रण किया है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि प्रकृति के उद्दीपन रूप का महत्त्व शृगार-रस के क्षेत्र में ही अधिक है। सयोग एव वियोग शृगार के दोनो की पक्षों में प्रकृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। आचार्य विश्वनाथ ने चन्द्र, चन्दन, भ्रमर आदि को शृगार के उद्दीपन के रूप में परिगणित किया है।[५] ये प्राकृतिक उपादान नायक-नायिका के भावों को उद्दीप्त करते हैं तथा नायक-नायिका प्रेमाबद्ध हो जाते है। सयोग में नद-नद कर प्रवाहवती नदी का शीतल तट-प्रदेश, सुगन्धित वायु, प्रफुल्लित पुष्पों पर गुजार करते भ्रमर, चन्द्रमा की चतुर्दिक् फैली हुई सुकुमार ज्योत्स्ना आदि प्राकृतिक तत्त्व नायक-नायिका को आनन्द एव सुख प्रदान करते हैं और वियोग में दु ख का कारण बनते हैं।

आलोच्य रामाश्रित नाटकों में प्रकृति का उद्दीपन रूप निम्नरूपेण आस्वाद्य है-

अभिषेक-नाटक में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण नाममात्र के लिये हुआ है। द्वितीय अक में रावण सीता को अपने प्रति अनासक्त देखकर दु·खी है। इस समय उदित होता हुआ चन्द्रमा उसके हृदय के सन्ताप को द्विगुणित कर रहा है। रावण स्वय कहता है - "चादी रचित दर्पण के समान प्रकाश वाला, कुमुदवनों का बन्धु यह शशाक अपनी किरणों से मेरे हृदय को सम्यक् पीडित कर प्रकाशित होते हुये उदय हो रहा है।"[६] इस प्रसग में चन्द्रोदय का वर्णन कवि ने रावण के दु ख को और अधिक उद्दीप्त करने के लिये

ही किया है। प्रतिमानाटक में प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन कहीं भी नहीं हुआ है।

कुन्दमालानाटक में प्रकृति के कुछ ही दृश्य ऐसे हैं जो पात्रों के मनोभावों को उद्दीप्त करते हैं तथा सहृदय को भी सहज ही छू जाते हैं।नाटक के प्रारम्भ में ही गगा के तटवर्ती प्रदेश पर पहुचकर लक्ष्मण जब सीता से कहता है कि 'हे आर्ये! आप इधर से उतरें। गगा के तटवर्ती यह जगल, घने वृक्षों और लताओं के फैलाव से रुके होने के कारण, रथ के प्रवेश के योग्य नहीं है, इस कारण आप उतरकर चलें''[७] तभी सहृदय पाठक के चित्त में यह भाव अकुरित हो जाता है कि इस सघन कानन में गर्भावस्था को प्राप्त अकेली सीता कैसे रह सकेगी और जब लक्ष्मण सीता को उस निर्जन प्रदेश में छोडकर ही चला जाता है तो वहा के भयावह प्राकृतिक दृश्य को देखकर सीता भयापन्न हो जाती है तथा कहती है - - ''हा धिक्! हा धिक् ! सूर्य अस्त हो गया, लक्ष्मण की आवाज भी नहीं आ रही है। हरिण भी अपने घरों को लौट रहें हैं, पक्षी उड चुके हैं, हिसक पशु घूमने गये है, अन्धेरे में दृष्टि रुक रही है, यह महान् जगल मनुष्य-हीन है। मैं मन्दभाग्य क्या करुँ? क्या अकेली जगल में चली जाऊँ?''[८]

राम के साथ रहते हुए जो चन्द्रोदय का दर्शन, कोयलों के मधुर गीतों का श्रवण तथा मलयाचल के वायु का स्पर्श सीता को सुख देता था, वहीं वाल्मीकि-आश्रम में अकेली रहती हुई उसे कष्टदायी हो गए हैं।[९]

इसी प्रकार राम को भी सीता के विरह में प्रकृति के सुखद पदार्थ दु ख ही देते हैं, परन्तु गोमती के तीर की वायु का स्पर्श जब उन्हें सुख प्रदान करता है तो वे सीता के होने का अनुमान करते है। राम कहते हैं-

''मुक्ताहारा मलयमरुतश्चन्दनं चन्द्रपादाः
सीतात्यागात्प्रभृति नितरां तापमेवावहन्ति[१०]
अद्याकस्माद्रमयति मनो गोमतीतीरवायु-
र्नूनं तस्या दिशि निवसति प्रोषिता सा वराकी''।[१०]

अर्थात् सीता के त्याग से लेकर मोतियों के हार, मलयाचल की वायु, चन्दन और चन्द्रमा की किरणें मुझे अत्यधिक सताप ही तो देते रहे हैं। आज अचानक ही गोमती के तीर का वायु मेरे मन को आनन्द दे रहा है। अत प्रतीत होता है कि निश्चित ही वह बेचारी प्रवासिनी उस दिशा में रहती है।

इसके साथ ही भागीरथी नदी की तरगो में बहती हुई कुन्द-पुष्पों की माला के प्रति राम का दु खी हृदय सहज ही आकृष्ट हो जाता है[१२] तथा वहा के प्राकृतिक वातावरण को देख राम को वनवास में सीता के साथ बिताए गए दिनों का स्मरण हो आता है। वे लक्ष्मण से कहते हैं-"किसी का भी आना-जाना न होने के कारण इस सूने जगल को और किनारे पर उगे हुए वृक्षों की छाया से भरी हुई, सुन्दर रेत से भरी निर्मल जल ले जाती हुई, समुद्र की ओर जा रही इस नदी को देखते-देखते दण्डकारण्य वास का स्मरण हो आया है और मैं व्याकुल सा हो गया हूँ।[१२] नवीन पत्ते के समान कोमल देवी के हाथ को पकडकर कई प्रकार की आनन्द-दायिनी कथाए करते हुए, चलते-चलते पैरों का वेग बहते जल वाले नदी के रेतीले प्रदेश पर सायकाल शिथिल पड जाता था, उस गमन का मैं स्मरण कर रहा हूँ।"[१३]

अस्त होते हुए सूर्य को देखकर राम के हृदय से निकले हुए उद्गार प्रिया सीता के स्मरण का ही सकेत करते हैं-

"प्रियजनरहितानामङ्गुलीभिर्वधूनामवधिदिवससङ्ख्याव्यापृताभि सहैव।
व्रजति किरणमालिन्यस्तमेकैकशोऽस्मिन् सरसकमलपत्रश्रेणय सङ्कुचन्ति।।"[१४]

अर्थात् इस सूर्य के अस्त होते ही अपने प्रियतमों से रहित वधुओं की अगुलिया बताते हुये दिनों की सख्या गिनने लगती हैं, उसके साथ ही रसीले कमलों के पत्तों की सख्या भी एक-एक करके बन्द हो जाती है।

इधर सीता भी सरोवर में राजहस के जोडे को देखकर भावविह्वल होकर कहती है- "यह राजहसों का जोडा अतिधन्य है जिसे ऐसा विरह-हीन समागम का सुख प्राप्त हो रहा है, इन्हें देखकर प्रतीत होता है कि दपतियों के लिये विशेष मेरे लिये इन से बढकर उपदेश देने वाला अन्य प्रशिक्षक नहीं है, क्योंकि पक्षी भी एक दूसरे का हृदय ग्रहण करने के लिये सुन्दर और मधुर ध्वनि वाली खुशामद का प्रयोग करते हैं।"[१५]

महावीरचरितनाटक में प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन अत्यल्प है। पचम अक में मरणासन्न जटायु से प्राप्त सीताहरण की सूचना से राम का मर्मस्थल छिन्न हो जाता है।[१६] वे पचवटी आश्रम से लक्ष्मण के साथ सीता को ढूँढने के लिये निकलते हैं। मार्ग में लक्ष्मण श्रीराम को स्थिति विशेष में पूछते हैं "आप पूर्व से आने वाली हवा से विकसित कदम्बयुक्त वन को इन अश्रुपूर्ण नयनों से देखते हुए धनुष पर देह का भार रखकर क्यों खडे हैं।"[१७]

राम अपने अनुज की जिज्ञासा शान्त करने के लिये अपने हृदयगत भावों को बडे सहज रूप में इस प्रकार प्रकट करते हैं- "हे भाई, क्या तुम नहीं देखते हो? कदम्ब विकासोन्मुख हो रहे हैं, मधुर स्वरवाले नीलकण्ठ नाच कर रहे हैं, विकसित तथा प्रौढ तमाल वृक्ष की तरह श्यामवर्ण नये मेघ पर्वत की चोटी पर आ रहे है।"[१८] इस प्रसग से स्पष्ट है कि राम का व्याकुल हृदय अपनी प्रिया सीता के प्रति उत्कण्ठित है। वर्षाकालीन वायु उनके विरही मन को इतना व्यथित कर देती है कि उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है, साथ ही विकासावस्था को प्राप्त कदम्ब मधुर केका शब्द के साथ नृत्य करते मोर, श्यामवर्ण मेघ उनकी पीडा को बढाने में अपना पूरा योगदान दे रहे हैं।

सप्तम अक में उद्दीपन का एक प्रसग दर्शनीय है। विमानारूढ राम आकाशमार्ग से दिखलाई पडने वाले सीता के वियोगकाल में उपभुक्त, हरीतिमा युक्त मलयाचल के उत्तुङ्ग शिखर को दिखाते हुए लक्ष्मण से कहते हैं- "इन भूमियों को पहचानते हो जो एकदूसरे से सटे तमालवृक्ष की छाया से शीतल निकुञ्जों वाली तथा मलयाचल की चोटी पर से गिरने वाले निर्झरों के प्रवाह से युक्त है।"[१९] इसके साथ ही लक्ष्मण भी समीपस्थ जीर्ण कन्दरा को दिखाते हैं, जहॉ उन्होने कुछ समय व्यतीत किया था- "मेघ के शब्द से जब दिशायें फट रही थी, बिजली की कडक से आकाश विदीर्ण हो रहा था, वायु के झोंकों के साथ बादल इधर-उधर घूम रहे थे, पेडों की छाया लोगों की दृष्टि को अन्धी बना रही थी,ऐसे समय में वर्षा होते रहने पर बॉस की झुरमुटवाली जिस कन्दरा में हम लोगों ने रात बिताई थी।"[२०]

वन प्रदेशों का यह दर्शन राम एव सीता के हृदयगत भावों को उद्दीप्त करता है। राम की वियोगावस्था की असह्य वेदना को कवि भवभूति बडे कलात्मक बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। सीता भी राम के तात्कालिक दु ख के साथ तादात्म्य सा करती हुई मन ही मन कहती है- "अहो प्रमाद। कथ मम मन्दभागिन्या दुष्टदैवैरेतेऽपि महानुभावा ईदृशमवस्थान्तरमनुभाविता।"[२१]

भवभूति ने उत्तररामचरित में प्रकृति के उद्दीपन रूप का भी वर्णन विविध प्रसगो में किया है। द्वितीय अक में राम शम्बूक के वध हेतु जनस्थान जाते हैं, वहा चारों ओर के प्राकृतिक दृश्यों को देखकर उन्हें सीता के साथ वहा बिताये दिनों का स्मरण हो आता है तथा उनकी ऑखो से ऑसू छलक पडते हैं। वे सोचते हैं कि सीता को यद्यपि उपवन बहुत प्रिय थे तथापि मेरे

साथ भयंकर वनों में भी रहते हुए वह सुख का अनुभव करती थी।[२२]

शम्बूक के महर्षि अगस्त्य के आश्रम में चले जाने पर राम वहॉ अकेले रह जाते हैं। वहॉ प्रकृति के एक-एक अग को देखकर उनका हृदय भाव विह्वल हो जाता है। सम्पूर्ण वातावरण सीता का स्मरण कराकर उन्हें व्याकुल कर देता हैं तथा वे कह उठते हैं- "ओह! मैंने आज यह वन पुन क्यों देख लिया हैं? जिसमें कि पहले चिरकाल तक सीता-लक्ष्मण के साथ रहते हुए हम लोग वानप्रस्थ तथा गृहस्थ धर्म में एक साथ तत्पर थे तथा सासरिक दु खों का अनुभव भी किया करते थे।"[२३] पर्वत, वनस्थल तथा सरिताओं के किनारे भी राम को अतीत में ले जाते हैं। वे कहते हैं- "मयूरों के कूजन से युक्त ये ही वे पर्वत हैं तथा ये मस्त हरिणों के विहार-स्थान वे ही वनस्थल है और सर्वांग-सुन्दर बेंत की लताओं, सघन कदम्ब एव हिज्जल नामक वृक्षों से सम्पन्न ये सरिताओं के तट भी वे ही हैं।"[२४]

प्रस्रवण पर्वत के निचले भाग में पर्णकुटी एव वहीं समीपस्थ पचवटी में बिताए दिनों का स्मरण कर राम कहते हैं- "प्रस्रवण के इसी ऊँचे शिखर पर गृधराज जटायु का निवास स्थान था। उसी के नीचे हम लोग पर्णकुटी में आनन्दपूर्वक रहते थे, जहॉ गोदावरी के जल में वृक्षों की छाया पडने से नीली-नीली कान्ति वाला सुन्दर वन प्रान्त है। इसमें अनेक पक्षिगण चहचहा रहे हैं, जिससे प्रतीत होता है कि मानों उनके बहाने से वह स्वय शब्द कर रहा हो। यही वह पञ्चवटी है जहॉ कि निवास करते समय अनेक प्रदेश हमारे विलासों के साक्षी हैं और यहीं प्रियतमा की वासन्ती नाम वाली वन-देवी सखी थीं, आज राम पर यह क्या विपत्ति आ पडी?"[२५]

सम्पूर्ण वनप्रदेश सीता के विरह में विह्वल राम के दु ख को द्विगुणित कर रहा है। राम कहते हैं कि इस समय- "दु सह चिरकाल के बाद वेदना के वेग को आरम्भ करने वाला और सर्वत्र फैले हुये विष-रस के समान, कहीं से अत्यन्त वेग से चले हुए बाण के अग्रभाग के समान उत्पन्न हो गई है ग्रन्थि जिसमें, ऐसे एव हृदय के मर्म-स्थल में फूटे हुए घाव के समान प्राचीन शोक भी नया सा होकर मुझे फिर व्याकुल कर रहा है।"[२६] इसके साथ ही राम पुन कहते हैं कि अत्यन्त शोक को उत्पन्न करने वाले होने पर भी मैं अपने पुराने मित्र इन भू प्रदेशों को अवश्य देखूँगा।[२७]

पञ्चवटी तो बलात् राम को अपनी ओर खींच लेती है तथा शोकपूर्वक वे कहते हैं- "जिस पञ्चवटी में मैने सीता के साथ अपने घर की भॉति वे

सुखमय दिवस बिताये थे और जिसकी बडी-बडी चर्चाए करते हुए हम लोग अयोध्या में भी रहते थे, आज प्रियंतमा का विनाश करने वाला पापी राम एकाकी इसको देखे? अथवा निरादर कर कैसे चला जाए?"[२८]

प्रस्रवण पर्वत के रमणीय प्रदेशों को देखकर राम का मन उत्कण्ठित हो उठता है। अपने हृदयगत भावों को वे इन शब्दों में प्रकट करते हैं-"जहाँ वृक्ष और मृग भी मेरे बन्धु थे और जिनमें मैंने प्रियतमा के साथ बहुत दिनों तक निवास किया था, ये बहुत सी गुफाओं और झरनों से युक्त गोदावरी के निकटवर्ती वे ही प्रस्रवण पर्वत के प्रदेश हैं।"[२९]

अपनी प्रियतमा के मित्र मोर को नाचता हुआ देखकर राम को अपनी प्रियतमा का सहज ही स्मरण हो आता है तथा वे मोर को भी पुत्र रूप में ही देखते है।[३०] वासन्ती राम को सघन एव छोटे-छोटे केलों के वनों के बीच स्थित वह शिलातल दिखाना चाहती है जिस पर सीता के साथ बैठकर राम विश्राम किया करते थे, तो राम उसे देखना नहीं चाहते, क्योंकि वह शिलातल अतीत की सुखद घडियों का स्मरण कराकर राम के हृदय में वेदना का सचार कर रहा है।[३१] साथ ही प्रिया सीता द्वारा अपने करकमलों से जल, नीवार तथा मृदु घास को देकर पाले गए वृक्ष,पक्षी और मृग को देखकर राम का हृदय दु खाग्नि से पिघलकर मानों बहने लगता है।[३२]

वासन्ती राम को पञ्चवटी का लतागृह दिखाते हुए कहती है- "यह वह लतागृह हैं जहाॅ आप मार्ग की ओर ऑखे लगाकर सीता की प्रतीक्षा कर रहे थे, परन्तु उन्हें गोदावरी के रेतीले तट पर हसों से खेलते हुए देर हो गई थी। जब कुछ देर बाद लौटकर आती हुई उन्होने आपको कुछ खिन्न सा देखा तो कातरता से कमल-कलिकाओं के समान सुन्दर अगुलियों को जोडकर देरी के लिये क्षमा मॉगते हुए आपको दूर से ही प्रणामाञ्जलि समर्पित की थी।"[३३] पूर्वमुक्त यह लतागृह सीता एव राम दोनों का ही मर्मभेदन कर रहा है। स्वय सीता वासन्ती पर क्रोध करती हुई कहती है- "सखि वासन्ती! तू बडी कठोर है जो हृदय के मर्मस्थल में उद्घाटित शोकशल्य को बारम्बार हिला-हिलाकर मुझे और आर्यपुत्र को ऐसे हृदय-द्रावक दृश्यों का स्मरण करा रही हैं।"[३४] इधर सीता-सेवित प्राकृतिक स्थलों के दर्शन से राम की प्राचीन स्मृति साकार हो उठी थी तथा सीता की स्मृति उग्र रूप में जागरूक हो जाने से श्रीराम को उसका दर्शन सर्वत्र अतिभ्रान्ति सी दशा में हो रहा है। वे अपनी अन्तर्वेदना को इन शब्दों में प्रकट करते हैं "हा देवि! तुम्हारे वियोग में मेरा

हृदय फटा जा रहा है। देह के बन्धन ढीले पड रहे हैं। मैं ससार को शून्य समझ रहा हूँ। मैं भीतर ही भीतर लगातार जला जा रहा हूँ। मेरी व्याकुल अन्तरात्मा निबिड अन्धकार में धसी जा रही है। मुझे मोह चारों ओर से घेर रहा है। हा! मैं भाग्यहीन अब क्या करू।"[३५]

महाकवि मुरारि ने अनर्घराघव में प्रकृति को सम्भोग एव विप्रलम्भ शृगार के उद्दीपन के रूप में चित्रित किया है। पचम अक में सीता-हरण के पश्चात् राम सीता के वियोग में सतप्त हैं तथा विभिन्न बातों का स्मरण कर मूर्च्छित तक हो जाते हैं। लक्ष्मण विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों को दिखाकर उनके हृदयगत सन्ताप को दूर करना चाहते हैं। वे राम को विन्ध्यगिरिराज से बहती हुई नदियों को दिखाते हुये कहते हैं- "विन्ध्यगिरिराज की कन्याओं का अन्त पुर स्वरूप ये नदियाँ बेंत के वृक्षों से होकर बहने वाले अपने जलों से गीत-नृत्य-वाद्यरूप तौर्यत्रिक अभ्यास सी कर रही है।"[३६]

राम ऑखे खोलकर दीर्घ तथा उष्ण श्वास लेकर लक्ष्मण से कहते हैं- "वत्स, यह देखने योग्य हैं- यहाँ कुमुदवन के साथ बारी-बारी से जागृत होने वाले कमल पहरेदार की शोभा धारण कर रहे हैं, मत्त हाथियों के कर्णताल से नाचने वाले मयूर यहाँ की शोभा बढा रहे हैं, इस प्रकार यहाँ की नदियाँ बहुत सुन्दर दीख रही हैं।"[३७] इसी के साथ वे माल्यवान् पर्वत का रमणीय चित्र देखते हुए पुन असन्तुलित हो जाते हैं, वे अपने को सम्भालने में असमर्थ हो जाते हैं, उनका श्वास वेग से निकल रहा है, मुख सूखता है, स्वर-भग हो रहा है, अवयवों के श्रान्त तथा स्रस्त हो जाने से शरीर विवर्ण हो रहा है, जडता बढ रही है, ऑखों से अश्रु प्रवाहित हो रहा है, स्मरणशक्ति लुप्त हो रही है।[३८]

समीपस्थ वेत्रकुञ्ज को देखकर राम को वहा सीता के साथ बीते दिनों का स्मरण हो आता है जिससे उनकी वियोगजन्य पीडा और अधिक बढ जाती है। चारों ओर देखकर वे कहते हैं- "हे वामशीले विदेहपुत्र, तुम्हारे सकल रहस्यों को जानने वाली वेत्र, निकुञ्ज परम्परा यही तो है। यहाँ मैं अपने शरीर पर नखचिह्न बनाकर तुमसे कहता हूँ कि जाता हूँ तुम्हारी सखियों से कहने कि सीता ने ये नखचिह्न कर दिये हैं, इस प्रकार कहने पर तुम भयभीत हो उठती थी, उस अवस्था की तुम्हारी काम-कला-विमर्द-सहिष्णुता की याद आ रही है।"[३९]

गुह भी राम के मनोविनोद के लिये विन्ध्यपर्वत के सौन्दर्य का वर्णन

करते हुए कहते हैं–“देव, देखिए–नवीन विकसित नूतन और जलप्राय देशस्थित नीप वृक्षों के साहचर्य से जहा मयूर नृत्य किया करते हैं, ऐसे फल भरे जम्बू कुञ्जों में शब्दायमान कपोत से स्नेह करने वाली शबरियों के प्रिय यह विन्ध्य पर्वत के प्रदेश आनन्द उत्पन्न करते हैं।”[८०] गुह के वचन सुनकर राम का हृदय उद्वेलित हो उठता है, वे वहॉ की वनभूमि को देखकर कहते हैं- “मिथ्या वैदेही की कल्पना करने वाली हमारी बुद्धि को यहॉ के वन-सन्निवेश सहायता प्रदान कर रहे हैं जो वनसन्निवेश चारों ओर प्रसारित होने वाली तरगों को लॉघकर धीरे-धीरे बहने वाली वायु से विकसित एला की सुगन्धियों से परिपूर्ण हैं।”[८१]

लक्ष्मण द्वारा दिखलायी जाती हुई भय से भागे हुए प्रियतम के विरह से दु खिनी हरिणी को देखकर राम को पुन अपनी प्रिया का स्मरण हो आता है, उनकी ऑखों में ऑसू भर आते हैं, उनके मुख से सहज ही निकल जाता है-

“हा देवि जानकि,
मारीचमृगयाव्यग्रे मयि प्राप्ते च रावणे।
आसामिव कुरङ्गीणां तवोत्पश्यामि लोचने।।”[८२]

अर्थात् मैं जब मारीच के शिकार हेतु चला गया और रावण आ पहुॅचा, तब तुम्हारी ऑखें भी इन्हीं हरिणियों की ऑखों के समान हो गई होंगी, ऐसी मैं सम्भावना करता हूॅ।

सप्तम अक में राम-सीता के मिलन के पश्चात् चन्द्रमा का वर्णन सम्भोग शृगार का उद्दीपक बन जाता है। उदित होते हुए चन्द्रमा को देखकर राम सीता से कहते हैं-“लोक लोचनों के लिये मधुपर्क-सत्रस्वरूप, समुद्र को सर्वांग में वृद्धि प्रदान करने वाले शृगार का पोषक एव देवों के लिये मदिरालयाध्यक्ष स्वरूप यह चन्द्रमा महादेव के मस्तक पर अलकार का कार्य करता है क्योंकि यह क्षीर-समुद्र रूप शक्ति में उत्पन्न मौक्तिक हैं, इसकी कितनी स्तुति की जाय।”[८३]

सीता भी हॅसती हुई राम से प्रेम भाव को अभिव्यजित करती हुई कहती हैं- “आर्यपुत्र, समान कुल शील-रूप-यौवन-सम्पन्न अपनी सपत्नियों के सिर पर रोहिणी ने पैर रख दिया, क्योंकि उस पर चन्द्रमा की बडी प्रीति है, क्योंकि उन्हे ससार ‘रोहिणीरमण’ नाम से पुकारा करता है।”[८४] राम भी सीता की बात समुचित मानते हैं तथा मुस्कराते हुए कहते हैं-

"प्रियोपभोगतुल्येऽपि ताराणा सप्तविशते ।
धत्ते किमपि सौभाग्यमञ्जरीमिह रोहिणी।।"[४५]

अर्थात् प्रियोपभोग-सुख सभी के लिये तुल्य ही है। परन्तु सत्ताइस तारों में रोहिणी का कुछ ऐसा सौभाग्य ही है कि लोग चन्द्रमा को रोहिणीरमण कहते हैं। स्पर्श-सुख का अनुभव करते हुए वे आगे कहते हैं- "विकसित होने वाले कुमुद-कोष से निकलने वाली गर्मी के सेवन से तत्काल शमित कर दिया है चकोरियों के चन्द्रिकापान-जनित जाडे को जिसने, ऐसी अभिसार करने वाली युवतियों की मूक दूतियॉ एव चन्द्रकान्तमणि के मकरन्दों से पल्लवित होने वाली यह चन्द्रकिरणें बडी अच्छी लग रही है। अतिशय चतुर अभिसारिकाओं की ऑखो के लिये सिद्धाञ्जन स्वरूप तथा त्रिलोक को अन्धा बनाने वाले घने अन्धकार से व्याप्त धरामण्डल को अपनी उछलती हुई किरणों से धोकर स्वच्छ बना देने वाला यह रात्रि का नाथ चन्द्र उग रहा है। यह चन्द्रमा ससार की भलाई के लिये उदित हो रहा है, यह चन्द्रमा कुमुद की कलियों पर भ्रमरों के मधुर गम्भीर कण्ठतालों से अगविशेष व्यञ्जित कर रहा है, मतवाली होकर मुखरित होने वाली चकोरियों को सन्तुष्ट कर रहा है और लोकों कीं ऑखो को दर्शनशक्ति सम्पन्न बनाने वाला है। यह चन्द्रमा का तेज, उदयाचल पर वर्तमान चन्द्रकान्तमणि द्वारा दिये पाद्य तथा अपने सारस्वरूप तारों द्वारा अपने शरीरों से समर्पित अर्धलाजाञ्जलि प्राप्त करने वाला, अन्त कलकशून्य, एव समूल अन्धकार का नाशक समस्त दिशाओं में व्याप्त हो रहा है। मृगराज के नख की तरह कुटिल किशुक-कलिका को भूषण बनाने वाली युवतियॉ भयभीत होकर सकुचित अग वाले अक-मृग से युक्त अतएव अधिक दीपित चन्द्रमा को देख रही हैं।"[४६]

कवि ने चन्द्रमा का जो नैसर्गिक चित्र यहॉ अकित किया है वह राम एव सीता का पारस्परिक स्नेहभाव का उद्दीपक तथा पोषक बनता है।

राम अपनी प्रिया सीता के प्रति स्नेह को प्रस्तुत करने के लिये तारों एव कमलों का वर्णन नई-नई कल्पनाओं की उद्भावनापूर्वक करते हैं- "हे सीते, ब्रह्मा ने चन्द्रमा के साथ तुम्हारे मुख की तुलना करने के लिये दोनों को अलग-अलग पलडे पर चढा दिया और यदि चन्द्रमा में कमी आयेगी तब उसे पूर्ण करने के लिये तत्समान वस्तु के कुछ खण्ड के रूप में यह तारे रख छोडे और इन कमलों के वश में ब्रह्मा ने साक्षात् जन्म ग्रहण किया, शैय्या से उठकर यह कमल प्रतिदिन भ्रमरों को तृप्त करते हैं, एकाग्र दृष्टि

से भगवान् सूर्य की ओर देखने का व्रत धारण करते हैं, इसलिये हे सुन्दरि, यह कमल तुम्हारे मुख की समता प्राप्त कर सके हैं।"[४७]

राम द्वारा किया गया मलयाचल का वर्णन भी द्रष्टव्य है- " यह मलयाचल है जो मुझे आनन्द दे रहा है। इस पर बहने वाली वायु से सखियॉ मानिनियों के मान को सरलता से दूर कर सकती हैं, जिन मानवती स्त्रियों ने प्रियतमों द्वारा किये गये बहुविनय को भी ठुकरा दिया, वे स्त्रियॉ भी मलयानिल के बहने पर सखियों द्वारा सरलता से मना ली जाती हैं।"[४८]

राम सीता को उन प्राकृतिक स्थलों को दिखलाते हैं जहॉ उन्होंने एकान्त में प्रेम-प्रसगों के साथ अपना समय व्यतीत किया था। प्रस्रवणपर्वत को दिखलाते हुए वे सीता के कान में कहते हैं- "यह वही पर्वत याद आ रहा है, जिस पर्वत में रात्रि के समय रत्न किरणों की लालिमा मे मिलित द्रोण काकों द्वारा किये जाने वाले कोलाहलों से डरे हुए कौशिक पक्षिगण कन्दरा के अन्धकार में छिप जाते हैं और जहॉ पर मैनें तुम्हारे स्तन पर के वस्त्र को खींच लिया था, कुपित होकर तुमने स्तनों को आवृत्त करने के लिये पत्ते तोडने चाहे, उस पर कुतूहलवश वनदेवताओं ने वृक्ष पर की लताओं को ऊॅचा उठा लिया और तुम्हें विवश होकर रह जाना पडा।"[४६]

गोदावरी के तट पर स्थित कुञ्जों में व्यतीत क्षणों का स्मरण भी सुखद है। राम सीता से कहते है- "इसी गोदावरी के तटों में वर्तमान प्रियङ्गुलता के कुञ्ज में मैंने पलाश की कलियों से माला बनाकर नखक्षत को नहीं सहने वाले स्तनों से युक्त तुम्हारे वक्षस्थल पर डाल दी थी, जिससे यह प्रतीत होता था कि जैसे कुटिल रक्ताभ किंशुक-कलियों से तुम्हारे स्तनों की कान्ति बढ रही है, उसी तरह नखक्षतों से भी बढ सकती है, इस प्रकार माला डालकर मैं हॅसने लगा, मेरा अपराध महान् था, फिर भी कौमार-व्रत के भग से रोषित होने पर भी तुम्हारा मुख सहास हो उठा था।"[५०]

राम द्वारा सीता को दर्शाए गए सभी प्राकृतिक प्रदेश जो किसी समय दुख का सदीपन कर रहे थे वे आज सुखद हैं तथा राम एव सीता दोनों के ही हृदयों में आनन्द का सञ्चार कर रहे हैं।

महाकवि शक्तिभद्र ने भी अपने नाटक आश्चर्यचूडामणि में कुछ ऐसे सन्दर्भ समाविष्ट किए हैं जो पात्रों के हृदयगत भावों को उद्दीप्त करने में सहायक हैं। यथा पञ्चम अक में मन्दोदरी स्वप्न में एक प्राकृतिक दृश्य देखती है तथा अपनी दासी को सुनाती है- मैंने स्वप्न में देखा कि -"समुद्रगत

दिशाओं में व्याप्त, उठते हुए हजारों तरगों से युक्त मरकत मणि के पर्वत समूह के समान नीला, तिमिङ्गल, मातङ्ग और मकरादि जलतन्तुओं से युक्त समुद्र इधर-उधर भटकने वाले क्षुद्र जन्तुओं से जल के पी लेने पर कुछ देर के लिये शून्य हो गया।"[५१] इस प्राकृतिक स्वप्न के माध्यम से कवि ने मन्दोदरी के हृदय में भय को उद्दीप्त किया हैं क्योंकि वहॉ मकराकर शब्द से राक्षस सेना तिमिङ्गलादि शब्दों से कुम्भकर्ण-मेघनादादि तथा जलशून्य समुद्र से लका में रावण सेना का विनाश अभिव्यजित हुआ है।

सीता के प्रति अनुरक्त क्षुद्रमति रावण को रात्रि में उदीयमान, देखने वालों को आनन्दित करने वाले, समुद्र की लहरों को चचल करने वाले चन्द्रमा की शीतल किरणें भी कष्ट देती हैं।"[५२] अत वह चन्द्रमा को सूर्य ही समझ बैठता है तथा वह कहता है कि "बहुत दिनों से मेरे द्वारा भगाए गए सूर्य की लका में क्या आवश्यकता है" फिर विचारपूर्वक उसके कलक को देखकर वह समझ जाता है कि यह तो चन्द्रमा ही है।[५३] तब वह सोचकर कहता है- "इस दु ख को तो मैनें स्वय लाया है। मेरी आज्ञा के बिना जो चन्द्रमा किसी दिशा-विशेष में अपनी किरणों से कमलिनियों को भी सकुचित नहीं करता है, वह चन्द्रमा मेरे सम्मुख होकर मुझे सन्ताप देता है। विवशता निर्बल को भी बलवान् बना देती है।"[५४] इसके साथ ही वह चन्द्रमा को भी सम्बोधित करते हुए कहता है- "हे हिमकर! तुम्हारी शीतल किरणें कामदेव के सन्ताप से विवश मुझ पर जो आग उगल रहीं हैं, वह न तो तुम्हारी और न कामदेव की ही शक्ति है। हे निशापति! वह तो केवल शोकमग्न जानकी की ही शक्ति है।"[५५]

दूसरी ओर यद्यपि अशोकवाटिका में देवराज इन्द्र के नन्दनवन के आकर्षक वृक्ष हैं, जिनमें कहीं किसलय के रूप में विद्यमान स्वर्णकमलों का हसो का जोडा चुम्बन करता है और कहीं कलिका सहित किसलय को देखकर पुस्कोकिल उन्मत्त हो रहा है। तथापि इस उद्दीपन सामग्री के विद्यमान रहने पर भी अशोकवाटिका में रहती हुई तथा केवल राम का निरन्तर चिन्तन करती हुई सीता को कामविषयक उत्कण्ठा नहीं होती है।[५६] वह तो चन्द्रमा में राम का सादृश्य देखकर उसमें राम से भिन्न गुणों को देखती हुई उससे कहती है- "हे चन्द्र, यह व्यक्ति तुम्हें उलाहना देता है। तुम क्षत्रियों के बन्धु हो, ऐसा सुना जाता है। तुम लोक में आर्यपुत्र के समान माने जाते हो। नहीं मैं पागल नहीं हूॅ। तुम प्रतिदिन एक के बाद दूसरे नक्षत्र से आलिङ्गित होते हो। आर्यपुत्र तो केवल मुझ अभागिन के साथ ही अपना

मनोविनोद करेंगे। अथवा इस बात को छोडो, तुम एक तरफ मुझे देखते हो और दूसरी तरफ आर्यपुत्र को भी। बिना कुछ बोले उदासीन से चले जाते हो।''[५७]

रात्रि में अपने प्रिय चकवे से वियुक्त हुई चकवी में सीता अपना सादृश्य देखती है- ''एषैषा चक्रवाकवधू रजनीराक्षसेन वियोजिता अयमिव जन शून्य रोदिति।''[५८] राम भी सीता के विरह में विह्वल हैं। सीता के अभाव में प्रकृति के उपकरण मकरतमणि के समान श्यामवर्ण के उन्मत्त भौरों से युक्त वृक्षपक्ति ऊपर से गिरने वाली नदियों से पवित्र पर्वत के वन-प्रदेश और पथिकों के सहायक, पम्पा सरोवर की लहरों को भग करने वाले वायु आदि राम का मनोविनोद करने में समर्थ नहीं हैं।[५९] अपितु वर्षा ऋतु में सीता के वियोग में व्याकुल राम को मयूरों की केकाध्वनि तथा कोमल केतकी पुष्प की सुगन्ध से युक्त वायु अधिक कष्ट देती है, मेघों से आच्छन्न रात्रि में क्षणभर के लिये उनके प्राण ही सशय में पड जाते हैं।[६०] इस प्रकार जीवन के सन्देह को प्राप्त राम के लिये भाग्य की कृपा से सीतादर्शन की भ्रान्ति जीवन का आलम्बन बन जाती है जबकि बिजली का प्रकाश होने पर वे सरोवर में विकसित रक्त कमल को यह समझकर पकडते हैं कि जल में डूब गया है शरीर जिसका, ऐसी सुन्दरी नेत्रों वाली मेरी प्रियतमा का किसलय के समान कोमल हाथ ही केवल जल के बाहर बचा हुआ है।[६१]

हनुमन्नाटककार ने प्रकृति के कुछ चित्र उद्दीपनात्मक प्रस्तुत किए हैं। द्वितीय अक में जानकी स्वयवर के पश्चात् कमलिनीकुलबान्धव भगवान् सूर्य के अस्त होने पर तथा पकी नारगी के समान पिशग वर्ण चन्द्रमा के पूर्व दिशा में उदित होने पर गुरुजनों की आज्ञा पाकर श्रीराम और सीता केलिमन्दिर में प्रविष्ट होते हैं।[६२] इसके साथ ही कवि ने चन्द्रोदय का विस्तार से वर्णन किया है। यथा- ''सूर्य की वियोगिनी पूर्वदिशा के रागरजित होने पर समुद्र के उद्वेलित होने पर, कमलों के मुँद जाने पर आकाश के स्वच्छ होने पर, अन्धकार के समाप्त होने पर, चक्रवाकों के शोकयुक्त होने पर, कामदेव के दर्परहित होने पर, रात का सम्राट् चन्द्रमा अपनी किरणों को सब ओर फैलाने लगा। कुमुद कलिकाओं को सुविकसित करता हुआ, युवक-युवतियों के चित्त में कामोद्वेग बढाता हुआ, कमलिनियों को सकुचित करता हुआ, मानियों का मान उखाड फेंकता हुआ, सर्वत्र ज्योत्स्ना फैलाता हुआ, अन्धकार का नाश करता हुआ, समुद्र को उद्वेलित करता हुआ, चक्रवाक मिथुनों को विरह से उत्तप्त बनाता हुआ और दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ चन्द्रमा उदित हो

रहा है। कुमुदों के क्लेशहर्ता, शृगार-रचना के दीक्षागुरु, दिक्कामिनी के मुकुर, चकोर के मित्र, बर्फ के समान स्वच्छ कान्तिवाले चन्द्रमा के पूर्ण रूप प्रकाश करने पर आकाश और पृथ्वी का अन्तराल क्या कपूर की धूल से भर गया, क्या चन्दन से लिप गया, क्या पारे से धो दिया गया अथवा स्फटिक की शिला से पाट दिया गया? पिंजरे में स्थित मैना सखियों को अपने-अपने निवास-स्थान जाने के लिए आशीर्वाद देती है- "चक्रवाक-मिथुन की केलि-क्रीडा के शत्रु, अन्धकार समूह की सेना के विनाश के लिये चन्द्रस्वरूप स्त्रियों की पीडा के साक्षी, सभोग के आरम्भ के सूचक, कुमुदवनवधू को सारी रात उन्निद्र रखने वाले कामदेव के बाणों को तीक्ष्ण करने के लिए शाणस्वरूप, आकाश सरोवर में राजहस की तरह लगने वाले क्षीरसमुद्रोत्पन्न चन्द्रदेव की जय हो।"[६३]

चन्द्रोदय के साथ सम्पूर्ण प्रियजनों के लिए आह्लादक एव मोहक बन गया है। सीता एव राम के हृदय में भी प्रेमभाव का उद्रेक होता है, गात्र रोमाञ्चित हो जाता है, वे पारस्परिक आलिगन के लिए उत्सुक होते हैं। स्वय कवि ने इस तथ्य को बडे सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है- "यह जानकर कि चन्द्रमडल रूपी सान पर तेज किये हुए कामदेव के बाण जानकी और श्रीराम के वक्षस्थल पर पडने लगे, सखियाँ वहाँ से एक-एक कर चली गई। प्रौढ निशा में शुक-सारिका आदि पक्षियों की मधुर कूक से काम की तरग सूचित की गई है। श्री राम ने सात्त्विक भावोदय के कारण रोमाञ्चित और लज्जा से नतमुखी जानकी को अपनी गोद में भरकर देहलीज से पलग पर पहुँचाया। जानकी मन में यह विचारती हुई कि लोग कामदेव को पचबाण कहते हैं, किन्तु यह तो असख्यबाणों से मुझे विद्ध कर रहा है- वहाँ गई।"[६४]

पचम अक में वियोगावस्था में प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन है। मायामृग को मारकर राम जब पर्णकुटी लौटते हैं तो सीता को न पाकर उनका हृदय शोकमग्न हो जाता है। वे "प्राणवियोग से भी बढकर कष्टदायक प्रियावियोग के इस समय को मानते हुए पर्णशाला के भीतर का भाग देख अपने विदीर्ण हुए हृदय से निकले जाते प्राण को किसी तरह रोक जानकी जी की ओढनी पाकर उन्हें स्मरण करते रोने लगते।"[६५] सीता के विविध अगो के साथ सादृश्य रखने वाले प्राकृतिक उपादानों के विषय में विचार करते हुए राम कहते हैं "हाय सीते! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे जिस अग से तिरस्कार होता था, वे वन-पशु इस वन में मेरी अनुपस्थिति में अवसर पाकर तुझे पशु के समान मारकर उन अंगों को बाँट ले गये हैं। कटि-प्रदेश

को सिहों ने, मुस्कान को चन्द्रमा ने, नेत्रों को हरिणों ने, देहकान्ति को चम्पा की कलियों ने, मधुर भाषण को कोकिलों ने, हाय! तुम्हारी चाल को हाथियों और हसों ने न जाने कैसे-कैसे बॉट लिया होगा?''[६६]

पर्णशाला का आन्तरिक दृश्य भी राम के विह्वल हृदय को और अधिक कष्ट प्रदान करता है। पर्णशाला में टूटी पुष्पमाला को देखकर राम- ''प्रिये! तू कहॉ गई? हे कमलकलिका के समान नेत्रोंवाली! यहॉ मैनें तुझे आलिगन किया था, हे मधुर! यहा चन्द्रमण्डल के समान तेरे मुख का अधरामृत पान किया था। यह केलि-काल में कुचले हुए मकरन्द वाले पुष्प अब फिर यहीं पडे हैं, फिर तू कहॉ गई?'' इस प्रकार प्रलाप करते करते फिर रोने लगते हैं।[६७] राम गहन वनों में, दुर्गम मार्गों में तथा गुफाओं में सब जगह घूमते हुए सीता को ढूॅढ रहे हैं। वन प्रदेशों में फैली हुई लताए उनकी वियोगाग्नि को प्रज्वलित करने में घी का काम करती हैं। लताओं को देख-देखकर अपने से दूर हुई मनोहारिणी प्रिया सीता का स्मरण कर करके श्री राम अधीर हो उठते हैं।[६८] वन में विचरण करते हुए मृगों को देखकर वे सोचते हैं कि दुरात्मा मारीच ने इन्हीं का रूप धारण कर माया का प्रपच करके प्रियतमा के सग से मुझे वियुक्त किया था, 'अत मैं भी मृगियों का वध करके इन मृगों को अपनी प्रिया का विरही बनाऊॅगा' ऐसा विचारकर वन में हरिणियों के वध के लिये कान तक खींचे हुए सफल बाणों के होते और स्वय को दूर तक लक्ष्य को भेदने में समर्थ होते हुए भी राम ने सीता के नेत्रों के समान इन हरिणियों की ऑखे देख उनका वध नहीं किया । दयापरवश होकर बाण को धनुष से उतार लिया।[६६] इस समय वनेचर मृग भी उनके विरहजन्य शोक के पोषक बन जाते हैं।

अपनी प्रिया सीता के साथ रहते श्रीराम के हृदय में जो चन्द्रमा आनन्द का सचार कर रहा था, वही चन्द्रमा प्रिया के वियोग में प्रलयकालीन प्रचण्ड सूर्य के समान दाहक बन गया है। कवि ने राम एव लक्ष्मण के वार्तालाप द्वारा इस विषय को बहुत ही मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत किया है।

राम–लक्ष्मण! देखो, सूर्य आग उगल रहा हैं, चलो वृक्ष की छाया में चलकर बैठें।

लक्ष्मण- नाथ, आप सूर्य की क्या बातें करते हो, यह तो चन्द्रमा का उदय हो रहा है।

राम- यह तुमने कैसे जाना?

लक्ष्मण- इसके कुरग का धब्बा देखकर।

राम- हे कुरगनयनी चन्द्रमुखि जानकी तू कहॉ है? लक्ष्मण, देखो वृक्ष की डालों में वन की आग लग रही है, इसे झरने के जल से बुझाओ।

लक्ष्मण- इस समय यहॉ वनाग्नि की क्या बात है? यह तो उदयाचल से चन्द्रमा का उदय हो रहा है।

राम- भला, तब चन्द्रमा में यह धुऑ कैसा है?

लक्ष्मण- यह धुऑ नहीं है, चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड रही है।

राम- हा धरणिसुते। प्रिये, तू कहॉ है?''[७०]

चन्द्रमा को धिक्कारते हुए राम कहते हैं- ''अरे पापी। मन्दराचल द्वारा मथे जाने पर तू चूर-चूर क्यों न हुआ? अरे दुष्ट, तुझे राहु ने भस्म क्यों न कर दिया? अस्तु, तू यदि जानकी के मुख के समान न होता, तो मैं अपने बाण से तेरे अभी सौ टुकडे कर डालता।''[७१] अन्तत प्राणप्रिया के परमप्रेम को स्मरण कर बडी करुणा के साथ राम कहते हैं- ''चन्द्रमा के इस कलक को कविजन समुद्र का पक, कोई चन्द्रमा का वाहन मृग, कोई पृथ्वी का प्रतिबिम्ब बताते हैं, किन्तु मैं मानता हूँ कि यह मेरे वियोग से उत्पन्न प्रिया सीता की विरहाग्नि का धुऑ हैं।''[७२]

अपने मन को शान्ति प्रदान करने के लिये राम खिले हुए अशोकवृक्ष के नीचे क्षणभर के लिये विश्राम करते हैं। अशोक भी उनके विरही मन को व्याकुल ही करता है। अत वे अशोक को सम्बोधित करते हुए कहते हैं- ''हे अशोक। तू नये-नये पत्तों से रक्त है और मैं प्रिया जानकी के प्रशसनीय गुणों से रक्त (अनुरक्त) हूँ, जैसे तुझ पर फूलों से शिलीमुख आते हैं उसी तरह मेरे ऊपर भी कामदेव के पुष्पधनु से छूटे हुए शिलीमुख (बाण) आते हैं। तू जैसे स्त्री के चरणतल के प्रहार से खिल उठता है, उसी तरह मैं भी। मेरी और तेरी सब बातें समान है, केवल विधाता ने तुझे अशोक और मुझे सशोक बना दिया है।''[७३]

प्रिया विश्लेष के भय से श्रीराम गले में हार भी धारण नहीं करते थे। परन्तु दु ख है कि इस समय उनके और प्रिया के बीच कितने ही पर्वत, नदियॉ और वृक्ष आ पडे हैं।[७४] सयोग मे आनन्द देने वाले सभी प्राकृतिक उपादान प्रियावियोग में श्रीराम के लिए कष्टदायक हो गये हैं। वे स्वय कहते हैं- ''इस समय चन्द्रमा मेरे लिए सूर्य की तरह सतापदायक' हो गया है,

मन्द-मन्द बहने वाली वायु वज्र के समान प्रतीत होती है, फूल की माला सुई की तरह छेदती है। चन्दन का लेप चिनगारी सा प्रतीत होता है। रात सैंकडों कल्प के समान लम्बी लगती है और यह प्राण, विधिविपरीत होने के कारण, भार बन गये हैं। और क्या कहूँ, प्रिया से वियोग का यह समय मुझे प्रलयकाल के समान भयकर लगता है।''[७५]

राम को जानकी की नैसर्गिक कमनीयता एव सुन्दरता के समक्ष प्राकृतिक पदार्थों का सौन्दर्य न्यून लगता है। उनके हृदय के उद्गार इन शब्दों में सामने आते हैं- ''सीता के मुखचन्द्र के सामने चन्द्रमा अजन से पुता प्रतीत होता है, मृगियों की ऑखे नीची हुई ज्ञात होती हैं, विद्रुमदलों की लाली फीकी लगती है, कोकिल वधुओं का कठस्वर कर्कश लगता है और मयूरों का पिच्छभार निन्दनीय प्रतीत होता है।''[७६] वर्षा ऋतु में प्रिया का स्मरण और अधिक असह्य हो गया है। विलुप्त सीता को सम्बोधित करते हुए राम कहते हैं- ''प्रिये! तुम्हारे नेत्रों की समानता रखने वाला नीलकमल कहीं दिखलाई नहीं पडता, वह जल में डूब गया और तुम्हारी मुखच्छवि का अनुकरण करने वाला चन्द्रमा भी मेघों से छिप गया। तुम्हारे गमन का अनुकरण करने वाले अब हस भी दिखालाई नहीं देते। इससे स्पष्ट है कि जिनको देखकर तुम्हारे अगो के सादृश्य से मैं अपना मन बहलाया करता था, मेरा वह विनोद भी कुटिल दैव को सह्य नहीं हुआ।''[७७]

बालरामायण में प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन अनेक स्थलों पर आस्वाद्य है। तृतीय अक में रावण सीता के विरह में दग्ध है। सीता के अगों का साम्य रखने वाले प्राकृतिक पदार्थ सीता के वियोग में रावण के विनोद बनते हैं यथा- चन्द्रमा को वह सीता का मुख समझता है, नीलकमल उसे सीता के नेत्र के समान मनोहर लगते हैं तथा मृणालतन्तु सीता के हास के समान प्रतीत होते हैं।''[७८]

पचम अक में सीता के वियोग में सन्तप्त रावण अपने लीलोद्यान में मनोविनोदार्थ जाता है, इस सन्दर्भ में विविध ऋतुओं का वर्णन रावण के विरहजन्य भावों को और अधिक उद्दीप्त करता है। ग्रीष्म ऋतु में- ''जल पर्यन्त कमलकलिकायें प्रात. ही स्फुटित होती है और मध्य रात्रि में चन्द्रमा नीलकमल (कुमुदिनी) को विकसित करता है। इस प्रचण्ड सूर्य वाले ग्रीष्म समय में प्रेमियों के शरीर पर लगने वाले कमल आदि शीतल पदार्थ शीघ्र ही सूख जाते हैं और जल से भिगोये जाते हैं।''[७९] यह ग्रीष्म समय रावण के

सताप को और अधिक बढा देता है तभी तो वह कहता है-" अत्यन्त शिशिर उपचार योग्य ग्रीष्म वस्तुए एक साथ सह्य नहीं है- बढे हुये सूर्यकिरणों वाला समय तथा साथ ही प्रियजन से वियोग।"[८०]

इसी के साथ सम्पूर्ण बान्धवों को मिलाने वाला, पथिकों के मार्ग को रोकने वाला, लॉगली फूलों से सुशोभित, केसर पुष्पों को वृद्ध करने वाला और कामदेव के विलासों का आरम्भकर्ता यह वर्षाकाल प्रारम्भ हो जाता है। इसमें त्रैलोक्य की चिन्ता के विषय कामदेव के गुणों के प्रचार का अग्रदूत, मयूरों की ताण्डव क्रिया में तूर्य, हसों के प्रवास के लिये पटह, वैदूर्य पर्वत के रत्नाकुरों की उत्पत्ति का शुभ सूचक यह मेघों का गम्भीर गर्जन आकाश और पृथ्वी के अन्तराल में गूँज रहा है तथा एकत्र स्थापित जीर्ण जीरा के कणों की पक्ति के समान किञ्जल्कों के चारों तरफ द्रोणी सदृश, तीन सघन पॅखुडियों से व्याप्त, आस-पास घूम रही भ्रमरियों से घिरा हुआ, गन्ध से जानने योग्य बाहर से प्रतीत न होने वाला, प्रिय के वियोग में कल्याणकर, क्रीडा-उद्यान में केतकी का पुष्प खिल रहा है।"[८१]

इस वर्षाकाल से रावण बहुत अधिक उत्कण्ठित हो जाता है तथा वर्षाकाल को ही सम्बोधित करता हुआ कहता है- "हे वर्षाकाल। रुको। हे भद्र। तुम्हारा भला हो। तुम अनुचित परिवार वाले हो तथा तुम्हारे ये मेघ वियोग और सयोग का ध्यान नहीं रखते- सुखी और दु खी दोनों को उत्कण्ठित कर देते हैं।"[८२]

नाटककार के इस वर्णन से अभिव्यजित होता है कि वर्षा ऋतु मानव के चित्त को आन्दोलित करने तथा उसमें विविध भावों को उद्दीप्त करने में पूर्णत समर्थ है। यह सयोगी तथा वियोगी दोनों की प्रकार के व्यक्तियों के मन को उत्कण्ठित कर देती है।

शरद् ऋतु के आगमन पर वातावरण उन्मादक हो जाता है। उस समय कौरवों के मधुकरण का हरण करते हुए, हसो के कण्ठूजन का रञ्जन करते हुए, पूर्ण आमोद के समन्वय से पवित्र, फुल्ल शेफाली-समूह के परिमल से सम्मिलत, भ्रमरों से चुम्बित, कह्लारों को आह्लादित करने वाले तथा कुमुदों के मित्र शारदीय वायु प्रवाहित होते हैं।[८३] सीता का स्मरण करते हुए रावण को शरद् ऋतु जलों में कमल, आकाश में चन्द्र, नदियों में पुलिन तथा हसियों में वाणी इन अलग-अलग अवयवों से सीता को ही दिखला रही है-

"कुवलयमप्सु दिवीन्दुः सिन्धुषु पुलिनानि वाक्च हंसीषु।
इत्यवयवैर्विभक्तां सीतां दर्शयति शरदेषा।।"[८४]

यह शरद् भी रावण के विरही चित्त को ग्रीष्म के समान जलाती है[८५] हेमन्त भी उसके कामभाव की अभिवृद्धि ही करता है। वह हेमन्तकालीन वायु का वर्णन जिस रूप में करता है वह परोक्षत उसके मनोगत भाव का ही पोषक है- "लम्पाकदेशीय स्त्रियों की केशरचना को फैलाते हुए, मृगों को उच्छ्वसित करते हुए, चन्द्रभाग के सलिल का पूर्णत चुम्बन करते हुए, भूर्जो को रगडने में प्रचण्ड, कस्तूरी मृगों के प्रेम से सुरभित, बाह्लवदेशीय ललनाओं के प्रिय, कुन्तलदेशीय स्त्रियों से केलिकर्ता तथा हिम से सिक्त हेमन्तकालीन वायु बह रहे हैं।"[८६]

ताप का अनुभव करता हुआ वह स्वय कहता है-

"सर्वांगमदनोद्दास· स कोऽपि मम वर्तते।
अप्येष हन्त हेमन्तो यत्रोष्णसमयायते।।"[८७]

उपर्युक्त ऋतु वर्णन को कवि राजशेखर ने सोद्देश्य ही प्रस्तुत किया है। सभी ऋतुए मानवचित्त को प्रभावित करती हैं। प्रत्येक ऋतु अपनी नैसर्गिक विशेषताओं से जहाँ सयोगियों के हृदय में उल्लास का सचार करती हैं, वहीं विरही जनों की अन्तर्वेदना को और अधिक उद्वेलित कर देती है।

षष्ठ अक में राम के वनवास के कारण राजा दशरथ एव रानियॉ शोकाकुल हैं। सुमन्त्र वन से लौटकर उनका समाचार लाते हैं। दशरथ द्वारा सीता के विषय में पूछने पर सुमन्त्र कहते हैं - "करुणा तथा कौतुक से आयी वनवासी ऋषियों की स्त्रियों ने हाथों से सीता की ठुड्डी चूमते हुए कहा कि पुत्रि! पतिव्रते वैदहि! वनों में सावधानी से चलना चाहिए, अत पैरों में पीडा होने पर भी सदैव रामचन्द्र के पीछे-पीछे चलो। क्या नहीं देखती-पर्वतों पर हाथियों का मण्डल घूमता है, कन्दराओं में स्वच्छ भालू टहलते है, कुञ्जों में सिहों ने निवास बनाया है और नदियों की तलहटियों में गजों का वास है, वृक्षों पर लगूरों का निवास है और मार्ग में पुलिन्द (वन्य मनुष्य जाति) घूम रहे हैं, अत विन्ध्य में कौन ऐसा प्राणी है जो हिंस्र या रौद्र न हो? तथा हे सीरध्वज की पुत्रि! सामने के पत्थर को बचाकर चलो, यहॉ की लतायें कॉटों से भरी हैं, अत दावाग्नि से बचाने के लिए वस्त्रों को कुछ ऊँचा कर लो, शाखायें टेढी हैं, शिर बचा लो, नीचे चींटियों की बॉबियों को देखो और बॉसो के गुल्म में हाथी है, अत कुछ देर रुक जाओ।"

यहॉ विन्ध्यभूमि का वर्णन राजा दशरथ एव रानियों के शोक को ही प्रवृद्ध करता है, तभी तो रानी सुमित्रा कहती हैं- "अहा! कठोर वृक्षों की रगडवाली वन्यभूमियों में प्रकृति सुकुमारी सीता कैसे चलती है?"[८६] सहृदय पाठक भी रानी के भावों के साथ एकाकार हो जाता है।

पुष्पक विमान पर विराजमान राम ने मलयाचल से आने वाले पवन का जिस रूप में वर्णन किया है वह उनके सयोगजन्य भावों से अनुप्राणित है, तभी तो उन्होंने पवन के वर्णन में प्राय रतिविषयक विशेषणों को समाविष्ट करते हुए ही सीता को बताया है- "जो झूला की क्रीडा के उपदेश में गुरु है, जो लताओं को प्रफुल्लित करते हैं, जिनमें धनुर्विद्या का अभ्यास किया जाता है, जो रति-जन्य स्वेद-जल को दूर करने वाले हैं, वे चैत्र मास में मैत्री बढाने वाले, सुरतोत्सव के प्रधान साक्षी, दक्षिण पवन इस मलय पर्वत से कैलास पर्वत तक बहते हैं।"[९०]

इसी सन्दर्भ में राम ने कावेरी नदी को जिस रूप में चित्रित किया है, वह भी उल्लेखनीय है। वे सीता को इगित करते हुए कहते हैं - "हे सुन्दरि! आगे पृथ्वी देवी के केशपाश की भॉति कावेरी को देखो। यह नागवल्ली से आश्लिष्ट सुपारी के वृक्षों द्वारा मानों आलिगन-क्रिया की शिक्षा दे रही है, जिसका जल कर्णाट देश की विलासिनियों के स्नान के समय जघनों से स्फालित होकर अभिलाषुकों द्वारा नाभि रूपी गुहाओं से पान किया गया, पूरब दिशा में बहाया जाता है।"[९१]

महाकवि जयदेव ने प्रसन्नराघवनाटक के कुछ सदर्भो में प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन किया है। द्वितीय अक में राम एव लक्ष्मण मिथिला नगरी के उपवन की शोभा देख रहे हैं, इधर राजकुमारी सीता भी एक सखी के साथ उपवन में घूम रही है। सीता अपनी सखी से आम्र वृक्ष की शाखा को दिखाते हुए कहती है- "सखि! देखो,देखो। नाखून के अग्रभाग से खरोंचे गये इन कोमल पत्तों से मालूम पडता है कि यह आम्रलता किसी रसिक व्यक्ति के द्वारा अनुगृहीत की गई है अथवा अपनी धनुर्लता की आशका से यह स्वय कामदेव के द्वारा ही पकड कर अनुगृहीत की गई है।"[९२]

आम्रवृक्ष की शाखा को लक्ष्य करके कहे गए सीता के ये वचन श्री राम के हृदय में सीता के प्रति प्रेम भाव को जाग्रत करते हैं - "हे चन्द्रमुखि, कामदेव ने तुम्हारे लता के समान पतले शरीर को अपना धनुष समझकर अपने हाथ की मुट्ठी से शरीर के बीचोबीच पकड लिया, जिस कारण इस

शरीर में उदर की रेखाओं के बहाने से तीनों लोकों को वश में करने की मुद्राओं के समान तीन अगुलियों के बीच की रेखाए उभर आई हैं।"[६-]

सीता की सखी वासन्ती लता को दिखाते हुए सीता से कहती है-

'वासन्तीरसबिन्दु सुन्दरमिन्दिन्दिरा इह चरन्ति।

चिरमन्दिमरविन्दं मन्दं मन्दं परिहरन्ति।।'[६४]

अर्थात् हे राजकुमारी! देखो यहाँ भौंरे सुन्दर, वासन्ती के रस की बूँद को पी रहे हैं, बहुत दिनों के अपने आश्रय स्थल कमल को छोडते जा रहे हैं। सखी के ये वचन राम के सीता विषयक प्रेम-भाव को और अधिक उद्दीप्त करते हैं और वे सहज भाव से कह उठते हैं - "सम्प्रति दूसरी लता के वर्णन से क्या लाभ? यह बाल्यकालरूप शिशिर ऋतु को व्यतीत करने वाली, हाल में ही प्राप्त यौवनरूप वसन्त की मनोहारिणी शोभा से सम्पन्न, उठने वाले स्तन रूप पुष्प-गुच्छ से युक्त, मृगनयनी की यह देहलता ही हमारे हर्ष को पर्याप्तरूप से बढा रही है।"[६५]

सखी रामचन्द्रजी की ओर सीता को जाते हुए देखकर लता के बहाने उसका उपहास करते हुए कहती है- "राजकुमारी, देखिए। यह वासन्ती लता आम के छोटे से वृक्ष को आलिगित करने के लिए स्वय ही आगे बढ रही है।"[६६] सखी के ये वचन सुनकर सीता प्रेमपूर्वक बनावटी क्रोध करती है तथा सखी को छोडकर अन्यत्र जाने को उत्सुक होती है। सीता की प्रकृति के सान्निध्य में की गई श्रृगारिक चेष्टाए राम के मन को लुभा देती हैं।[६७]

सीता और राम के पारस्परिक प्रेम को और अधिक प्रदीप्त करने के लिये कवि जयदेव ने एक भ्रमर को प्रस्तुत किया है। सीता अकस्मात् समीप आकर उडते हुए भौंरे को देखकर अपनी सखी से कहती है-

'हला, पश्य पश्य।

मदनवधूनूपुररवरमणीयं किमपि किमपि कूजन्।

माकन्दमुकुलमधुरसमधुरमुखों मधुकरो भ्रमति।।[६८]

अर्थात् हे सखि! देखो-देखो-कामदेव की पत्नी रति के नूपुर के झँकार के सामन रमणीय तथा अवर्णनीय ढग से शब्द करता हुआ, आम के मुकुलों के मकरन्द को पीने से मधुर मुखवाला भौंरा घूम रहा है। भ्रमर की उपस्थिति का यह दृश्य 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के उस प्रसग को सहज ही स्मरण करा देता है जहाँ महाकवि कालिदास ने दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन के लिए एक

भौरें की अद्भुत कल्पना की थी।[९९]

समीप उडते भ्रमर को देखकर राम के प्रति बढे हुए अनुराग वाली सीता अपने नेत्रों को भौंरे एव राम के मुख को कमल के रूप में अनुभव करती हुई अपने नेत्रों से मन ही मन कहती हैं– "हे मेरे नेत्रों, प्रिय व्यक्ति राम के मुख-कमल के रस को पिओ, इधर-उधर चञ्चलता मत करो। हे चञ्चलों, इस समय के बीत जाने पर फिर तुम दोनों कहाँ? और यह अति सुन्दर व्यक्ति कहाँ? यह भी जरा सोच लो।"[१००] भ्रमर पुन सीता के नेत्रों के समीप उडता हुआ आ जाता है, जिसे देख सीता की सखी उससे कहती है- "हे राजकुमारी! देखिए- नीले खिलते हुए निर्मल एव कोमल कमल के पत्र की आशका से व्याकुल यह भ्रमर तुम्हारे नेत्रों के आस-पास निरन्तर उड रहा है।"[१०१]

सखी ने यहाँ भ्रमर के बहाने राम की चेष्टाओं का वर्णन किया है। सीता सखी के भाव को समझ बडी प्रसन्न होती है तथा अनेक शृगारिक चेष्टाओं पूर्वक राम को देखती है जिससे राम सीता के प्रति और अधिक आकृष्ट हो जाते हैं।[१०२] भ्रमर का यह अवतरण राम एव सीता के अकुरित अनुराग को वृक्षमय बना देता है। वस्तुत कवि ने यहाँ उद्दीपन के रूप में ही भ्रमर प्रसग को जोडा है।

पचम अक में सीता राम के साथ जाती हुई मार्ग में चकवा-चकवी को साथ-साथ देखती है जिससे उसके हृदय में दो भाव उद्दीप्त होते हैं। वह यह सोचकर प्रसन्न होती है कि चकवी के समान मैं भी अपने प्रियतम के साथ हूँ। साथ ही उसे आशका होती है कि रात्री होने पर चकवे से बिछुड जाने वाली चकवी के समान भविष्य में मैं भी अपने प्रियतम से वियुक्त तो नहीं हो जाऊगी।[१०३]

छठे अक में रावण द्वारा अपहृत सीता के वियोग में हुई राम की दशा के वर्णन में प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन सहृदय जन के लिये विशेष स्पृहणीय है। सीता के विरह में सन्तप्त राम को चन्द्रमा और अधिक सन्तप्त कर रहा है, अत. वे उसे सूर्य समझ रहें हैं। लक्ष्मण द्वारा बताए जाने पर यह मृग को धारण करने वाला चन्द्रमा है, राम को अपनी परम प्रिया, चन्द्रमुखी, मृगनयनी सीता का स्मरण हो आता है। राम लक्ष्मण का यह सवाद कवि ने एक श्लोक के माध्यम से प्रस्तुत किया है जो यहाँ द्रष्टव्य है-

'राम - सौमित्रे ननु सेव्यता तरुतल चण्डाशुरुज्जृम्भते

लक्ष्मण - चण्डाशोर्निशि का कथा रघुपते, चन्द्रोऽयमुन्मीलति।
राम - वत्सैतद्विदित कथ नु भवता
लक्ष्मण - धत्ते कुरग यत
राम - क्वासि प्रेयसि हा कुरगनयने चन्द्रानने जानकि ।।"[१०४]

इसके साथ ही राम चन्द्रमा से सीता के विषय में पूछते हैं तथा उसे मृग से युक्त देखकर उन्हें पुन उसमें राक्षस का आभास हो उठता है, जैसा कि राक्षस रावण ने मृग की सहायता से ही सीता का अपहरण किया है, वे चन्द्रमा को उपालम्भ देते हुए कहते हैं- "हे चन्द्र! कुमुदों की हितकारिणी, सकल जगत् की क्रियाओं की साक्षी तुम्हारी किरणें इस समय चारों ओर व्याप्त हो रही हैं। तो प्राणप्रिया मेरी जानकी कहाँ हैं? इस बात को क्यों नहीं बतलाते? तुम हरिण साथ में लिए हो, अत क्या तुम भी राक्षस हो?[१०५]

सीता के वियोग में व्याकुल राम को प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ और अधिक सताप ही दे रहा है। लक्ष्मण उनके मन बहलाव के लिये उन्हें प्रकृति के विभिन्न दृश्य दिखाते हैं, परन्तु राम की स्थिति तो 'कामार्ता हि प्रकृतिकृपणा चेतनाचेतनेषु' उक्ति को सार्थक बना रही है। लक्ष्मण जैसे ही राम को चन्द्र किरण को पीने वाले चकोर को दिखाते हैं, चकोर राम की सीता विषयक स्मृति को और अधिक झकझोर देता है और राम चकोर से ही कह उठते हैं- "हे भाई चकोर, अपनी प्रियतमा चकोरी के साथ में आपने चन्द्रमा को छोडकर जिसकी मनोहर कपोल की कान्ति का पान किया था, जानकी के उस मुख को मुझे बतलाकर मेरे जीवन को सार्थक करो।"[१०६]

लक्ष्मण पुन राम का ध्यान बटाने के लिये राम को शरद् ऋतु में हुई कम जल वाली एक नदी दिखाते हैं तो राम नदी में भी सीता का ही साम्य देखते हैं। वे नदी को लक्ष्य करके कहते हैं - "हे नदि, निश्चय ही तुम्हारी तरह मृगनयनी वह सीता भी कृश हो रही है। तुम दोनों के बीच में केवल इतना ही अन्तर हैं कि तुम स्वभावत शीतल हो और सीता सताप के चिह्न को धारण कर रही हो।"[१०७]

खिले हुए नीले कमलो की लताओं के वन में छिपे हुए लक्ष्मण द्वारा दिखाए गए भौंरे को देख राम सहज भाव से उससे पूछ बैठते हैं - "खुलते हुए नेत्रों के किनारे वाले हिस्से की शोभा की अधिकता से फीके पडे हुए, अत. केवल सुगन्धि से ही पहचाने गए स्वरूप वाले, जिस सीता के मुख के कानों के कमलों में स्थित पत्नी सहित आपने जो कि क्षण भर कुछ गुनगुनाया

था, हे भाई, वह मेरी प्रिया का सलोना मुख कहाँ है? यह बतलाओ।"[१०८]

सायकाल अपनी प्रिया चकवी से वियुक्त हुए चकवे को देखकर द्विगुणित विरहवेदना से पीडित राम सोचते हैं- "बाहर शरीर पर केसर के पराग के रग को धारण करने वाला और भीतर दया से परिपूर्ण हृदय को धारण करता हुआ यह कौन पक्षी है? जो नदी के उस पार बार-बार करुणापूर्वक चिल्लाती हुई प्रिया को देख रहा है, किन्तु समीप नहीं जा रहा है। निश्चय ही यह बेचारा चकवा प्रिया के वियोग से विदीर्ण हृदय वाला है तथा एक समान दु ख होने के कारण मेरे ही समान स्वभाव वाला है। अथवा इसकी और मेरी एक समान स्वभाव होने की बात कैसे हो सकती है? क्योंकि यह चकवा तो चन्द्रमा के उदित होने पर अर्थात् रात्री के समय में ही अपनी प्रिया के वियोग को प्राप्त करता है तथा प्रात काल होने पर अपनी प्रिया के सहवास को पा लेता है, परन्तु जानकी से बिछुडे हुए मेरे सैंकडों दिन-रात व्यतीत हो चुके हैं।"[१०९] चकवे का यह प्रसग सामान्य विरही पाठकजनों को आर्द्रहृदय कर देता हैं।

सीता के विरह में विह्वल राम के लिए सभी सुखदायी पदार्थ भी दु खदायी हो गए हैं। हनुमान् राम के सन्देश को अशोक वाटिका में सीता को सुना रहे हैं - "हे चन्द्रवदने, तुम्हारे वियोग में मेरे लिये यह ससार उलटा हो गया है। जैसे कि चन्द्र सूर्य के समान, नवीन जलभरा बादल वनाग्नि के समान, नदी की तरगों को छूकर आयी हुई हवा सर्प के श्वास वायु के समान, नई निकली हुई बेली का फूल बर्द्दी के समान, नीले कमलों का वन भालों के जगल के समान मालूम पडता है।"[११०]

उपर्युक्त समीक्षात्मक विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि नाटककार जयदेव ने प्रसन्नराघव में प्रकृति का उद्दीपन रूप में हृदयस्पर्शी वर्णन किया है।

पौलस्त्यवध में भी एक- दो प्राकृतिक दृश्य उद्दीपन के रूप में द्रष्टव्य हैं। प्रथम अक में तपस्वियों को अभय प्रदान कर राम सीता के साथ गोदावरी नदी के रमणीय प्रदेश में विराजमान हैं। राम के चित्त में रति का बीज अकुरित होता है, बाह्य प्राकृतिक सुषमा उनके रति भाव को सवर्धित करती है। वे गोदावरी नदी में अनेकविध नायिकाओं के दर्शन कराते हुए सीता से कहते हैं- "हे जानकि! इस गोदावरी को देखो, कहीं तो यह गोदावरी अपने अन्तर में विद्यमान प्राणियों से अलसायी सी मुग्धा नायिका के समान, कहीं

नेत्र रूपी मछलियों की सुन्दर क्रीडाओं से मध्यमा नायिका के समान और कहीं तटों तक जल की पूर्णता से प्रगल्भा नायिका के समान दिखलायी पडती है, मानो गोदावरी रूप तरुणी ने तीनों अवस्थाए एक साथ प्राप्त कर ली हैं।"[१११]

तृतीय अक में सीता-हरण के पश्चात् राम-लक्ष्मण के साथ सीता को अपनी निवासस्थली पर्णकुटी में न पाकर व्याकुल हो जाते हैं। अग्निशाला, जपगृह, विहारगृह, शयनगृह, पाकशाला, ऑगन सब जगह सीता को न पाकर वे इस ससार को ही शून्य अनुभव करते हैं।[११२] चारों ओर दौडते हुए राम सीता का आह्वान करते हैं - "हे सुमुखि, तेरा मुख चारों ओर खोज रहा हूँ, हे कमलनयने, तेरे कटाक्ष-पातों को चारों ओर देख रहा हूँ, हे सुन्दर दॉतो वाली, तेरे सुन्दर मन्दहास को चारों ओर खोज रहा हूँ, परन्तु मुझे तुम्हारा कुछ भी दिखलायी नहीं पड रहा है और न तुम ही दिखलायी दे रही हो।"[११३]

इसी प्रकार सीता के विरह से विह्वल राम यह सोचकर कि मेरी प्रिया गोदावरी में विहार हेतु जाती रहती है, अत गोदावरी से पूछते हैं- "हे सागरप्रिये, आवर्त्त ही जिसकी नाभि है, पुलिन जिसके सुन्दर नितम्ब हैं, कमल ही जिसके नयन है, नवील फेन ही जिसका हास है, ऐसी तुम्हारी क्रीडा-सखी, जो मेरी भी क्रीडा सखी थी, कहो तो वह कहॉ गयी? (क्षणभर रुककर क्यों नहीं बता रही) अथवा जडप्रकृति वाले लोगों में प्रेम की अनुवृत्ति कहॉ हैं?"[११४] गोदावरी को अनुत्तर देखकर राम वहॉ विचरण करते हुए हस से सीता के विषय में पूछते हैं- "हे पक्षिश्रेष्ठ हस, क्या तुमने कमलों से प्रेम करने वाली मेरी प्रिय सीता को देखा है जिसने तुमसे विलासपूर्वक चलना सीखा है। हे मित्र, मुझ प्रमत्त को बताओ, वह किस दशा में गई हैं, क्योंकि दु खी व्यक्ति को सुख देने वाली वाणी भी पुण्यदा होती है।"[११५]

हस से भी उत्तर न पाकर राम विक्षुब्ध हो जाते हैं तथा उस पर क्रोध करते हुए कहते हैं कि तुम हस होने से ही अहकार को प्राप्त हो रहे हो, वस्तुत महिमा गुण में उत्पन्न होती हैं, जन्म में नहीं।[११६] राम को उन्मादग्रस्त देख लक्ष्मण भी दु खी होते हैं तथा अपने अग्रज का मन अन्य स्थलों में लगाना चाहते है। राम समीपवर्ती वृक्ष को अपने मित्र सदृश मानते हुए उससे भी अपनी प्रिया के विषय में पूछते है तथा उसे अपने दु ख से दु खी मानते हैं[११७] पुष्पों के गिरने के बहाने ऑसुओ को बहाता हुआ वृक्ष राम के शोक को बढा देता है।

चक्रवाक दम्पती को एक साथ बैठा देख राम उनसे कहते हैं कि "तुम्हें तो रात्रि में ही वियोगजन्य क्लेश सहन करना पडता है लेकिन मुझे तथा मेरी प्रिया को यह कष्ट अहर्निश भोगना पड रहा है।"[११८] इसी बीच वे दोनों उडकर चले जाते हैं जिन्हें देखकर राम महसूस करते हैं कि इन दोनों ने मेरी उपेक्षा की है, अत ये दुष्ट प्रकृति हैं। वे उन्हें ही लक्ष्य करके कहते हैं- "दुर्बुद्धिजन अपने पर किए गए अत्यन्त उपकार की अपेक्षा अपने थोडे से उपकार को याद रखते हैं। इस चक्रवायुगल ने मेरे कार्य की सफलता के सुख की अपेक्षा अपने दु ख को अधिक माना है।"[११९] लक्ष्मण द्वारा दिखलाए गए कदलीकुञ्ज को देखकर राम प्रिया का स्मरण करते हुए कहते हैं-"इस कुज में तीव्र धूप में यह पल्लवों के बिस्तर पर प्रिया का शयन-स्थल है, यह आसन हे। हे प्रिये, ये तुम्हारे द्वारा उपभुक्त विहार-प्रदेश देख रहा हूँ, परन्तु तुम दिखलायी नहीं पड रही हो। यहॉ मेरे द्वारा तिलक मिटा देने पर प्रिया बहुत क्रुद्ध हुई थी, पुन कपोल के पास नवतिलक लगा दिए जाने पर वह प्रसन्न हो गयी थी।[१२०]

इस प्रकार सभी दर्शनीय प्राकृतिक स्थल श्रीराम की शोकाग्नि को समुद्दीप्त करते हैं। वे स्वय लक्ष्मण से कहते हैं- "तदल वृथात्मन क्लेशनेन। वत्स, इत परमिह स्थातु नालम्। यदत्र बहूनि विनोद-स्थानानि प्रत्यक्षीक्रियमाणानि समुद्दीपयन्ति शोकाग्निम्। तदन्यतो गच्छाव ।"[१२१] इसके साथ ही उनकी दृष्टि प्रस्रवण पर्वत पर पड जाती है। उसे देखते ही वे पूछ बैठते हैं-

"क्व नु भूधर भूसुता गताऽभूद्वेद मे ता ललनासु रत्नभूताम्।
जगतीमनयैव रत्नगर्भां कलयेर्यद्वहनान्महीयसे त्वम्।।"[१२२]

हे भूधर, वह पृथ्वीपुत्री सीता कहॉ गई, नारियों में रत्नरूप उसके विषय में मुझे बताओ। इस मेरी प्रिया को जन्म देने से पृथ्वी रत्नगर्भा बनी है तथा उसे धारण करने से तुम महिमा को प्राप्त हुए हो। जड पर्वत बेचारा कैसे बोले, परन्तु विरही राम तो उससे उत्तर की आशा करते हैं और क्षणभर प्रतीक्षा के बाद ही उसे अपशब्द कहते हुए दण्ड देना चाहते हैं– "यह पर्वत न तो मुझे आश्वासन दे रहा है, न दु खी है और न दयाभाव रखता है। उद्धत और कर्कश मन वाला यह निश्चित ही दण्ड के योग्य है जो मेरे प्रति अविनयशील रहता हुआ खडा है।"[१२३] ऐसे कहते हुए उस पर धनुप उठा लेते हैं।

प्रसन्नहनुमन्नाटक में प्रकृति का उद्दीपन रूप आस्वाद्य है। प्रथम अक

में प्रात काल का वर्णन विद्याधर एव विद्याधरी के प्रणयभाव को उद्दीप्त करने के लिये ही हुआ है। मनोहारिणी प्राभातिकी सुषमा विद्याधर के नेत्रों को आनन्द प्रदान करती है। खिले हुए पुष्पों की सुगन्ध से आप्लावित, धीरे-धीरे चलने वाली, शीतल वायु उसके सभोगजन्य श्रम को दूर कर रही है। उषाकालीन शोभा को देखती हुई विद्याधरी का मन भी अतिप्रसन्न है। उसके हृदय में कामभाव की उद्दीपक अनेक कल्पनाए जन्म लेती हैं, यथा प्राची दिशा अपने प्रियतम सूर्य के स्वागत के लिए तत्पर एक नायिका सी प्रतीत होती है।[१२४]

विद्याधर प्रेममग्न है। प्राकृतिक वातावरण उसके चित्त में विशेष स्फूर्ति प्रदान कर रहा है। उसके हृदय से स्नेहधारा सहज ही प्रवाहित हो जाती है। अपनी प्रिया को लक्ष्य करके वह प्रात कालीन सुषमा का हृदयस्पर्शी वर्णन करता है।[१२५]

वर्षा-ऋतु सयोगीजनों को सुख प्रदान करती है तथा विरहीजनों की शोकाग्नि को प्रज्वलित करती है। इस तथ्य की परिपुष्टि के लिये कवि ने द्वितीय अक में वर्षा का सविस्तार वर्णन किया है।[१२६] सीता का पता लगाने के लिये नियुक्त सुग्रीव राम से कहते हैं कि ''आप वर्षा की समाप्ति तक प्रतीक्षा करें। मैं शरद् ऋतु के आगमन पर आपकी प्रिया का वृतान्त जानने का प्रयास करुगा और इस समय बहुत समय से विरह से उद्विग्न अपनी प्रिया को प्रसन्न करने के लिए जा रहा हूँ।''[१२७] इस पर श्रीराम कहते हैं- ''हे मित्र! प्रिया-वियुक्त यहाँ जगल में रहता हुआ मैं अपनी प्रिया के समागम के सुख को प्राप्त करने वाले तुम्हें जाने की आज्ञा कैसे नहीं दूँगा। हे सखे! विरहकाल में सकल्पित रतिक्रीडा के सुख का यथेष्ट उपभोग करो। किन्तु सुखोपभोग में रत आप मुझे विरही मित्र को न भूल जाना।''[१२८] राम के उक्त वचनों से स्पष्ट है कि वर्षाकाल उनके विरही मन को और अधिक व्याकुल कर रहा है।

प्राकृतिक पदार्थ श्रीराम के विरह को अनवरत उद्दीप्त कर रहे हैं। चन्द्रमा एव रात्रि द्वारा उनके हृदयगत शोक को प्रज्वलित किया जा रहा है। अत वे लक्ष्मण से कहते हैं- ''हे भाई, पहले से ही प्रियतमा की विरहाग्नि से दग्ध मुझे अब यह चन्द्रमा अपनी प्रिया ज्योत्स्ना की सहायता से और अधिक जलाने के लिए प्रवृत्त हो गया है। अत शीघ्र ही किसी वृक्ष का आश्रय लेते हैं।''[१२९] लक्ष्मण के द्वारा चन्द्रमा की शीतलता का स्मरण कराये

जाने पर राम लम्बी श्वास लेकर सोचते हैं-"यह रात्रि कुटुम्ब के पालन-पोषण के लिए नाना व्यापाररूपी पक में डूबे हुए एव चिन्ताओं से खिन्न मन वाले जनों को तथा ललनाओं की अतुल सौन्दर्यमयी क्रीडा-तरगों से भली-भॉति प्रसन्न मनवाले जनों को आश्रय प्रदान करती है तथा शान्ति देती है, परन्तु वियोगरूपी रोग से दु खी चित्त वाले लोगों के लिए प्रलयकालीन रात्रि के समान शोक ओर भय को प्रदान करने वाली है।"[१३०] वस्तुत सीता के वियोग में राम के लिए रात्रि व्यतीत करना बहुत कष्टदायी हो गया है। सर्वसुखदायी रात्रि विरही राम के दु ख को द्विगुणित कर रही है इसलिये वे कहते हैं-"जिस रात्रि का आश्रय लेकर मनुष्य श्रम को छोडकर पलग पर प्रिया के आलिगन से आबद्ध होकर शारीरिक चिन्ता से मुक्त होकर सुख को प्राप्त करते हैं, जो रात शान्ति, स्वप्न, सुषुप्ति और सुखों को प्रदान करती हे तथा दु ख रूपी समुद्र से मुक्त कराती है। दु ख है, वहीं अधकार से परिव्याप्त रात्रि मुझे क्यों दु खी कर रही है?"[१३१] प्रकृति के जो तत्त्व कोमल एव शीतल हैं, वे भी प्रिया के वियोग में पीडित राम को कठोर एव उष्ण प्रतीत होते हैं। वे सोचते हैं- "यह रात्रि नहीं है, प्रलय का समय है। यह चन्द्रमा नहीं, सूर्य है। ये आकाश में तारे नहीं हैं, अग्नि की चिनगारियॉ हैं। दिगन्तर में यह चन्द्रिका नहीं है बल्कि प्रज्वलित उल्कावली है, जो वृक्षों के पत्तों एव सरोवरों में विस्तृत हुई दिखाई दे रही है।"[१३२]

शरद् ऋतु में भी राम की मनोव्यथा यथावत् बनी रहती है, जैसा कि वे कहते हैं-"अब वर्षाकाल व्यतीत हो गया है, परन्तु नेत्रों से जल बरस रहा है। बादल विलीन हो गए हे, किन्तु दु खी हृदय निरन्तर द्रवित हो रहा है। आकाश स्वच्छ हो गया हैं, किन्तु मेरा मन मलिन हो रहा है। रात्रि प्रकाश से प्रदीप्त हो रही हें, परन्तु मेरा चित्त अधकार में प्रवेश कर रहा है।"[१३३] इस प्रकार शरद् ऋतु का उन्मादक परिदृश्य राम को प्रिया सीता का पुन पुन स्मरण करा रहा है।[१३४]

अपने वश के प्रवर्तक सूर्य को देखकर राम का हृदय भाव-विभोर हो उठता है। वे बडे भारी मन से सूर्य को सम्बोधित करते हुए कहते हैं- "हे हमारे वश के मूल भगवान् सूर्य! अपने कुलरूपी वृक्ष के अकुर मुझ राम पर दया क्यों नहीं करते हो? आप सम्पूर्ण लोक के बन्धु हो, परन्तु मेरे शत्रु क्यों बन रहे हो? आपने यदि सीता को नहीं देखा तो आपका 'जगच्चक्षु' नाम व्यर्थ है। तपाने के कारण अब आपका एक ही नाम 'तपन' सार्थक है।

आप अमित्र एव अशुभ-दायी हैं, तब 'मित्र' अथवा 'भग' कैसे हो सकते हो? क्या आप रावण से डर रहे हो जो कि सीता को नहीं दिखाते हो। मैनें आप के पुत्र सुग्रीव को पत्नी सहित राज्य दे दिया है, यह क्यों भूल गए हो?''[१३५]

ये सम्पूर्ण प्राकृतिक प्रसग मानवीय मनोभावों को उद्दीप्त करने के लिये ही कवि ने सप्रयोजन प्रस्तुत किए हैं।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि आलोच्य नाटकों में प्रकृति का जो उद्दीपन विभावान्तर्गत चित्रण हुआ है, बहुत ही सश्लिष्ट, सात्त्विक तथा रागोत्प्रेरक है। कदियों ने मानव की सुख-दु खात्मक अनुभूतियों को उद्दीप्त कर अत्यन्त सवेदनीय एव सम्प्रेषणीय बनाया है। महाकवि मुरारि, राजशेखर, शक्तिभद्र आदि जहॉ सयोगावस्था में रति के अनुरूप वातावरण बनाने में सक्षम सिद्ध हुए, वहीं दिङ्नाग, भवभूति एव जयदेव आदि कवियों ने वियोगावस्था में रति को उद्दीप्त करने में प्रकृति का प्रचुर प्रयोग किया है। नायक-नायिका के परस्पर अनुरागी भाव को प्रकृति के विभिन्न उपादान और भी पुष्ट एव सवेदनीय बनाते हैं। आलोच्य सभी कवियों ने अपनी सूक्ष्म अवेक्षिका शक्ति से जिन चित्रों का सृजन किया है, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वे अत्यन्त सजीव बिम्ब बनकर सहृदयों के मन में रगीन भावनाओं का चक्रवात उत्पन्न करते हैं।

सन्दर्भ

१ ऋतुसहार, २/६

२ इष्टे देशे इष्टसर्वोपकरण चाश्नीयात्। इष्टे हि देशे इष्टै सर्वोपकरणै सह भुञ्जानो नानिष्टदेशजैर्मनोविघातकरैर्भावैर्मनोविघात प्राप्नोति।
चरकसहिता, विमान स्थान, रसविमान, प्रथम अध्याय।

३ तटस्थाश्चन्द्रिकाधारागृहचन्द्रोदयावपि।
कोकिलालापमाकन्दमन्दमारुतषट्पदा ।।
लतामण्डपभूगेहदीर्घिकाजलदारवा ।
प्रासादगर्भसगीतक्रीडाद्रिसरिदादय ।।
शिङ्गभूपाल, रसार्णवसुधाकर, पृ १८८-८६

४ द्र , चिन्तामणि, कविता क्या हे? पृ ६८

५ चन्द्रचन्दनरोलम्बरुताद्युद्दीपन मतम्। सा दा ३/१८५

६ द्र , अभि , २/११

७ द्र , कुन्दमाला, अक १, पृ ५

८ द्र , वही, अक १, पृ ३३

९ तेन सह दृष्टश्चन्द्रोदय , तेन सह श्रुत कोकिलकल-प्रलाप , तेन सहाऽनुभूतो मलयमारुतस्पर्श , साम्प्रत मयैकाकिन्या दृष्टश्च श्रुतश्च अनुभूतश्च। कुन्द , अक २, पृ ४७

१० वही, ३/६

११ वही, ३/११

१२ द्र , वही, अक ३, पृ ७६

१३ द्र , वही, ३/१२

१४ वही, ४/२४

१५ द्र , वही, अक ४, पृ ६३

१६ द्र , म च , ५/२२, २४

१७ वही, अक ५, पृ २२५

१८ स्थितमुपनतजम्भारम्भबिम्बै कदम्बै कृतमतिकलकण्ठैस्ताण्डव नीलकण्ठै ।
अपि च विघटमानप्रौढतापिञ्छनील श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोय वाह ।।
वही, ५/४२

१९ एता भुव परिचिनोषि मिलत्तमालच्छायान्धकारिततुषारनिकुञ्जपुञ्जा ।
उन्मूर्च्छदच्छमलयाचलतुङ्गशृङ्गप्राग्भारनिष्पतितनिर्झरपूरभाज ।। म च ७/११

२० वही, ७/१२

२१ वही, अक ७, पृ ३०८

२२ द्र , उ च २/१७-१९

२३ वही, २/२२

२४ वही, २/२३

२५ उ च, २/२५ तथा पृ १८० गद्य

२६ वही, २/२६

२७ 'तथाविधानपि तावत्पूर्वसुहृदो भूमिभागान् पश्यामि।' वही, अक २, पृ १८२
२८ उ च , २/२८
२६ वही, ३/८
३० द्र , वही, ३/१६
३१ द्र , वही, अक ३, पृ २४०
३२ द्र , वही, ३/२५
३३ द्र , वही, ३/३७
३४ वही, अक ३, पृ २६५
३५ वही, ३/३८
३६ अ रा , ५/१८
३७ वही, ५/१६
३८ द्र , वही, ५/२२
३६ वही, ५/२३
४० वही, ५/२७
४१ वही, ५/२८
४२ वही, ५/३०
४३ आ रा , ७/६७
४४ वही, अक ७, पृ ४४२-४३
४५ वही, ७/६८
४६ वही, ७/६६-७३
४७ वही, ७/८१-८२
४८ वही, ७/६३
४६ वही, ७/६८
५० वही, ७/६६
५१ द्र ,आ च , अक ५, पृ १३६
५२ यदेष दोषातनमीक्षणानामानन्दमान्दोलितसागरोर्मिम्।
न वेद शीताशुमपि स्पृशन्त तुषारनिष्यन्दसुखैर्मयूखै ।। आ चू ५/२
५३ वही, ५/३
५४ वही, ५/४

५५ वही, ५/६
५६ वही, अक ५, पृ १६६-६७
५७ द्र वही, अक ६, पृ १८८-८६
५८ वही, अक ६, पृ १६०
५६ वही, अक ६, पृ १६६
६० केकया च शिखाना मृदुधूतकेतकी सुमनसा मरुता च।
नीरवाहमलिनासु निशासु प्राणसशयमगात् च मुहूर्त्तम्।। वही, ६/११
६१ द्र , वही, ६/१२
६२ द्र , हनु ना २/२
६३ वही, २/३-४, ७,६
६४ वही, अक २, पृ ३५
६५ वही, अक ५, पृ ६६
६६ वही, ५/३
६७ वही, ५/५
६८ 'गाह गाह गह्वरकान्तारवनान्ताद्दर्श दर्श दर्पकभल्लीरिव वल्ली ।
स्मार स्मार दूरगता तामथ कान्ता राम कान्तामद्रिचरो दीनमरोदीत्।।'
वही, ५/६
६६ हनु ना , अक ५, पृ ७२
७० वही, ५/१८, २०
७१ वही, ५/१६
७२ वही, ५/२१
७३ वही, ५/२४
७४ वही, ५/२५
७५ वही, ५/२६
७६ वही, ५/६३
७७ वही, ५/६४
७८ द्र , बा रा , ३/६
७६ वही, ५/२३
८० वही, ५/२५

८१ वही, ५/२६-२७

८२ वही, ५/२८

८३ वही, ५/३०

८४ वही, ५/३१

८५ 'सोऽयमपर शरन्नामा ग्रीष्म' वही, अक ५, पृ १५३

८६ वही, ५/३३

८७ वही, ५/३४

८८ वही, ६/४५-४६

८९ वही, अक ६, पृ १६८

९० वही, १०/५५

९१ वही, १०/७२

९२ प्र रा , अक २, पृ १०६

९३ वही, २/१७

९४ वही, २/१८

९५ वही, २/१९

९६ वही, अक २, पृ ११०

९७ द्र, प्र रा , २/२०

९८ वही, २/२४

९९ द्र , अभि शा , प्रथम अङ्क

१०० प्र रा , २/२५

१०१ वही, २/२७

१०२ द्र , वही, २/२८

१०३ तटभुवि सरसीना सैकते निम्नगाना परिसरमपहातु चक्रवाकीं प्रियस्य।
क्षणमपि न समर्था लोलमालोकयन्ती पथि जनकतनूजा प्राप हर्षं शुच च।।
वही, ५/२४

१०४ वही, ६/१

१०५ वही, ६/२

१०६ वही, ६/३

१०७ वही, ६/४

१०८ वही, ६/५

१०९ वही, ६/६-७ तथा श्लोक ६ और सात के बीच का गद्य भाग

११० वही, ६/४३

१११ पौ व , १/१४

११२ वही, ३/६

११३ 'पश्यामि ते सुवदने वदन समन्तात्पश्यामि ते सरसिजाक्षि कटाक्षपातान्।
पश्यामि ते सुदति सुन्दरमन्दहास नो दृश्यते किमपि ते न च दृश्यते त्वम्।।"
पौ व , ३/१०

११४ वही, ३/१४

११५ वही, ३/१५

११६ द्र , वही, ३/१६

११७ द्र , वही, ३/१८-१९

११८ वही, ३/२०

११९ द्र , वही ३/२१

१२० द्र , वही ३/२२-२३

१२१ पौ व , अक ३, पृ ५१

१२२ वही, ३/२७

१२३ वही, ३/२८

१२४ द्र , प्र हनु , अक १, पृ १३

१२५ द्र , वही, १/२५

१२६ द्र , वही, २/८१-८७

१२७ वही, अक २, पृ ३१

१२८ वही, अक २, पृ ३१

१२९ "भ्रात प्रथमेव कान्ताविरहानलदग्ध मा पुनरिदानीमय दोषाकर स्वयोषिताया ज्योत्स्नाया साहाय्येन दग्धु प्रवृत्त। अत कश्चिद्वृक्ष क्षिप्र समाश्रयणीय"।
वही, द्वितीय अक, पृ ३३

१३० वही, अक २, पृ ३३

१३१ वही, २/६१

१३२ वही, २/६२

१३३ वही, २/६३

१३४ द्र , वही २/६४-६६

१३५ वही, २/६६-१००

पंचम अध्याय

रामाश्रित नाटकों में प्रकृति का उपमान के रूप में चित्रण

मानव समाज में सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम भाषा है। मानव अपनी बात को दूसरों तक पहुचाने के लिए भाषा का ही आश्रय लेता है। बुद्धिमान् एव कुशल वक्ता वही कहलाता है जो अपनी बात को बहुत स्पष्ट,सरल तथा प्रभावपूर्ण रूप से प्रस्तुत करने में समर्थ है। इस स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए वह विषय के अनुकूल सादृश्यपरक वस्तुओं को ढूढता है। यथा किसी विशिष्ट मनुष्य के गुणों का व्याख्यान करने के लिए वह कह सकता है कि यह मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी है, पर्वत के समान अचल है, सागर के समान गभीर है, हाथी के समान शक्तिशाली है, सिह के समान गरजता है तथा घोडे के समान दौडता है। इसी प्रकार वह मूर्ख को गधा, कुटिल को सर्प, क्रूर को भेडिया, कायर को गीदड, लम्पट को भ्रमर के समान कह सकता है। इस रूप में वक्ता श्रोता के समक्ष विवेच्य मनुष्य का चित्र सा उपस्थित कर देता है और इस कला से अपने को समाज में श्रेष्ठ वक्ता सिद्ध करता है तथा लोकप्रिय हो जाता है।

कवि तो लौकिक वक्ता की अपेक्षा श्रेष्ठ है। वह लोकोत्तर वर्णन में निपुण है। वह अपने समीपस्थ वातावरण का सूक्ष्म अध्ययन करता है। उसकी काव्य-दृष्टि में प्रत्येक दृश्य सहज ही सक्रान्त हो जाता है। जब वह किसी विषय को अपनी लेखनी का विषय बनाता है तो उसे पाठक के हृदय तक पहुँचाने के लिए लौकिक परिवेश से विविध अप्रस्तुतों का सयोजन करता हैं, सादृश्यपरक उपकरणों का सग्रह करता है और विषयानुरूप उन्हें काव्य में सघटित करता है। इससे पाठक के समक्ष विषय की स्पष्ट अभिव्यक्ति हो जाती है। यथा नारी की सुन्दरता का वर्णन करने के लिये कवि कहता है- इस नारी का मुख चन्द्रमा के समान है, नेत्र कमल के समान है, ओष्ठ बिम्बाफल के समान है, शरीर लता के समान है, उरोज पुष्पगुच्छ के समान

हैं, जघा कदली-स्तम्भ के समान है। इस प्रकार के सादृश्यपरक वर्णन को काव्याचार्यों ने उपमा अलकार के अन्तर्गत समाविष्ट किया है जिसमें उपमान एव उपमेय में भेद होने पर भी दोनों के गुण, क्रिया आदि धर्म की समानता का वर्णन रहता है।[१]

कवियों ने अपने काव्य में उपमा अलकार को बडे उदार-हृदय से अगीकर किया है। कविशिरोमणि कालिदास ने अपनी रचनाओं में उपमा को इतना अधिक स्थान दिया है कि वे तो 'उपमा कालिदासस्य' के रूप में प्रसिध्दि को प्राप्त हो गए। कवियों ने अपने पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं–वीरता, सौन्दर्य आदि का चित्रण करने के लिए विविध उपमानों को सगृहीत किया है जिनमें प्रकृति के विशाल प्रागण से प्राप्त उपमानों का प्राचुर्य है। सूर्य, चन्द्र, मेघमाला, लता, पुष्प (कमल), वृक्ष, नदी, समुद्र, पर्वत, मीन एव मृग-नयन, सिह, गज, भ्रमर, कोकिल, चातक, चकोर आदि प्रसिद्ध प्राकृतिक उपमान हैं। इन उपमानों को वह जब किसी भी वर्ण्य-विषय के समुचित वर्णन के लिये अपने ग्रन्थ में समायोजित करता है तो वह प्रकृति का उपमान रूप में चित्रण कहलाता है।

वस्तुत प्रत्येक कवि अपने प्रतिभा-कौशल एव कल्पना-शक्ति के अनुसार अपने पार्श्ववर्त्ती प्राकृतिक वातावरण से उपमानों को ग्रहण करता है तथा कथा-वस्तु एव पात्रों के चरित्र के अनुकूल ही उन्हें काव्य में स्थान देता है। ऐसा करने से काव्य में चारुता आ जाती है तथा सहृदय पाठक उसके प्रति आकृष्ट होता है। प्रकति के उपमान रूप में चित्रण करने के विषय में डॉ रघुवश सक्षेप में बहुत सुन्दर तथा स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं - "अलकार को अभिव्यक्ति का सौन्दर्य-साधन स्वीकार करने पर विदित होता है कि इसकी समस्त सौन्दर्य-कल्पना प्रकृति के उपमानों की योजना पर निर्भर है। प्रकृति के फैले हुए सौन्दर्य से कवि विरोध सयोग द्वारा नाना उपमान-रूपों को ग्रहण कर अपने काव्य को सजाता है और वर्णित भावों को रस के स्तर तक पहुॅचाता है।"[२] आलोच्य रामकथाश्रित नाटककारों ने अपने नाटकों में प्रकृति का उपमान रूप में वर्णन विस्तारपूर्वक किया है जिसका विवेचन यहा प्रस्तुत है–

अभिकेषनाटक में प्रकृति का उपमान के रूप में अनेक स्थलों पर चित्रण हुआ है। नाटककार ने विविध प्रसगों में मात्र सीता के लिए ही अनेक प्राकृतिक उपमानों का समायोजन किया है यथा-द्वितीय अक में रावण द्वारा

अपहृत तथा लका में स्थित व्यथितहृदया सीता को देखकर हनुमान् कहते हैं– "विरूप राक्षसियों से चारों ओर घिरी यह सुन्दरी काले मेघों के बीच विद्युत् की भॉति सुशोभित हो रही है। कृष्ण सर्प के समान एक वेणी को धारण कर रही हाथ से पकडने भर कटिवाली, प्रियतम में आसक्त चित्तवाली, अनाहार से कृश शरीरवाली, अश्रु से पूर्ण मुखवाली यह धूप में कुम्हलाये कमल-वन की परम्परा जैसी है। यह सिह के देखने से डरी हरिणी के समान परिताप कर रही है।"[३] रावण भी सीता को देखकर कहता है– "यह सीता वृक्ष के मूल का आश्रय लेकर अनशन से क्षीण शरीरवाली, स्तन और उदर को छिपाकर अपने देह में प्रवेश की इच्छावाली है। यह दुर्दिन में पडी चन्द्रलेखा के समान राक्षसीगणों से घिरी होकर बैठी है।"[४] अग्नि में प्रवेश करती हुई सीता को देखकर लक्ष्मण कहते हैं- "विकसित कमल की मालातुल्य (ये आर्या) जीवन की आशा छोडकर अपने श्रम को निष्फल कर इस अग्नि में जैसे पद्मवन में हसी प्रवेश करें, वैसे (सुखपूर्वक) प्रवेश कर रही है।"[५]

वस्तुत कवि ने सीता की अवस्थानुरूप ही प्राकृतिक उपमानों की समुचित योजना की है जो उनके कला-नैपुण्य का द्योतक है। दूसरे भी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं– प्रथम अक में अगद हनुमान् से पूछता है कि महाराज बालि कहाँ है उत्तर में हनुमान् कहते हैं– 'ये महाराज बाण से विदीर्ण हृदय होकर पृथिवी पर विराज रहे हैं जैसे स्कन्द की शक्ति से विदीर्ण क्रौञ्च नामक पर्वत हो।"[६] अपने बाणों से लका के विनाश का विचार करते हुए राम कहते हैं- "रावण रूपी कर्णधार के दोष से यह लका मेरे श्रेष्ठ बाणों रूपी वायु के प्रहार से भग्न कर दी जायेगी और कपिसैन्यसमूह रूपी तरग के प्रवाह से चूर्णकर नष्ट कर दी जायेगी, जैसे समुद्र में पडी नौका वायु और तरग से नष्ट हो जाती है।[७]

अभिषेक नाटक में पात्रों के सौन्दर्य को विशेष अवसर प्रदान नहीं किया गया है, अत इसके लिए प्राकृतिक उपमान भी नहीं आए हैं, मात्र राम एव सीता के नेत्रों की तुलना कमल से की गई है।[८]

इसी प्रकार कवि ने युद्धभूमि को समुद्र के समान,[९] युद्धक्षेत्र में घूमते राम एव लक्ष्मण को आकाश में घूम रहे दो सूर्यो के समान,[१०] राम पर गिरती हुई रावण के बाणों की धारा वृषभ पर गिरती जलधारा के समान,[११] स्वर्णरचित चाप उठाए पैदल ही रावण की ओर जाते हुए राम मत्त गजराज की ओर जाते तीक्ष्ण दाढो वाले मृगराज सिह के समान[१२], बहुत ही सुन्दर

रूप में अकित किया है। ये सभी प्राकृतिक उपमाए विषय की अभिव्यक्ति करने में सहायक सिद्ध हुई हैं। प्राकृतिक उपमानों के माध्यम से विषय सजीव एव बिम्ब-ग्रहण करता है जो पाठक के हृदय पर अमिट प्रभाव छोडता है। इनके माध्यम से दुस्तर विषय भी सहज सवेद्य एव सुपाच्य हो जाता है।

नाटककार भास ने प्रतिमानाटक में प्रकृति का उपमान के रूप में सर्वाधिक निरूपण किया है। प्रथम अक में राम सीता को वन में नहीं ले जाना चाहते हैं जिस पर लक्ष्मण अनेक प्राकृतिक उपमान प्रस्तुत करते हुए सीता का वन जाना उचित सिद्ध करते हैं- "राहु से ग्रसित होने पर भी रोहिणी चन्द्रमा का साथ देती है। वृक्ष के धराशायी होने पर लताए उससे लिपटी ही रहती हैं। गजराज के कीचड में फॅस जाने पर हथिनिया उसका साथ छोडती हैं। अत इन्हें भी वन जाने दें, धर्म निभाने दें। स्त्रियों के लिये पति ही सर्वस्व है।"[१३] राम के वन चले जाने पर शोकनिमग्न राजा दशरथ "युगान्त समीप आने पर डगमगाते हुए समेरु की तरह या यों कहो सूखते हुए अप्रमेय सागर की तरह से अथवा तेजोविहीन सूर्य की तरह अपार शोक-सागर में निमग्न कृशकाय महाराज चेतनाशून्य हो रहे हैं।"[१४] वन गए राम, लक्ष्मण एव सीता के लिए कवि ने क्रमश सूर्य, दिन एव छाया को उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है। दशरथ कहते हैं "सूर्य के समान राम चला गया। सूर्य के पीछे दिन की तरह लक्ष्मण भी चला गया । सूर्य और दिवस के अवसान पर छाया की तरह अब सीता भी नहीं दीखती।"[१५]

ननिहाल से लौटे भरत को जब पता चलता है कि राम के वन-गमन में उसकी माता कैकेयी का हाथ है तो वे अपनी माता पर क्रोध करते हुए कहते हैं- "मेरी माता कौशल्या और सुमित्रा के बीच बैठी तुम उसी तरह बुरी लगती हो जैसे गगा और यमुना के बीच में प्रबिष्ट कोई कुनदी।"[१६] इस उपमा को पढने से सहृदयजन भरत के हृदयगत भावों के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकता है।

नाटक के अन्त में राम के उदात्त चरित्र की अभिव्यक्ति करने के लिए कवि ने उन्हें सूर्य एव चन्द्र के समान लोक-हितकारी सिद्ध किया है। नेपथ्य से राम की जयघोषणा होती है।[१७] इसके साथ ही शत्रुघ्न एव लक्ष्मण क्रमश कहते हैं – "आर्य के अभिषेक से आज कुल के कलक का नाश हो गया। जैसे चन्द्रोदय से ससार प्रकाशित हो जाता है, उसी तरह इनके राज्यारोहण से रघुकुल आज प्रदीप्त हो गया है और आज ही सभी नगरवासी उदयाचल

पर पूर्ण नक्षत्र-मण्डल के साथ चन्द्रमा की तरह आपके दर्शन करेंगे।"[१८]

पात्रों के शारीरिक सौन्दर्य के वर्णन में भास ने प्रकृति का कुछ ही स्थलों पर आश्रय लिया है। श्रीराम पृथ्वी पर चन्द्रमा हैं,[१९] शरद्कालीन चन्द्रमाा की तरह अभिराम हैं,[२०] उनका मुख जलार्द्र कमल के समान अभिषेक के जल से विकसित है।[२१] राम के समान ही भरत का मुख भी शरदिन्दु की तरह आह्लादक है[२२], सीता के नेत्र कमल के समान हैं।[२३]

इसके अतिरिक्त राम के वनगमन से विह्वल राजा दशरथ वृद्ध गजराज के समान,[२४] दशरथ एव राम से शून्य अयोध्या जगल के समान[२५] आदि अनेक स्थलों पर प्राकृतिक उपमानों का समुचित प्रयोग द्रष्टव्य है।

महाकवि दिङ्नाग ने अपने कुन्दमालानाटक में प्रकृति के तत्त्वों को अनेक स्थानों पर उपमान के रूप में प्रयुक्त किया हे। उन्होंने नारी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में प्राकृतिक उपमानों को न तो विशेष स्थान दिया है और न ही उनके पास ऐसा करने के लिए नाटक में अवकाश ही था। नाटक में प्रकृति का उपमान के रूप में प्रयोग इस प्रकार देखा जा सकता है–

नाटक के प्रारम्भ में मगलाचरण-श्लोक में भगवान् शिव की जटाओं के लिए कवि ने तदनुकूल विशिष्ट उपमानों को ग्रहण किया है। यथा "पूर्ण आतरिक तपस्या के प्रभाव की भाँति ऊपर को बढने वाली, गगा जल की तरगों में सर्पो का निवास बनी हुई बॉबी के शिखरों के समान शोभायुक्त, नीले कोमल-नाल की भाँति कोमल शरीर वाले चन्द्रमा की सदा रहने वाली सन्ध्या के समान, नए उदय हुए सूर्य की किरणों की भाँति चमकदार शिव जी की जटाओं का समूह आपकी रक्षा करे।"[२६]

राम के साथ वाल्मीकि के आश्रम को जाते हुए लक्ष्मण द्वारा किसी स्त्री के पैरों के चिह्नों के लिये प्रस्तुत प्राकृतिक उपमान साभिप्राय है– "विलास के योग से, परिश्रम से अथवा स्वभाव से धीरे रेतीले तट पर रखे हुए किसी स्त्री के पैरों के चिह्न कलहसों के विभ्रम के समान चलते हैं।"[२७]

यहॉ कवि ने किसी अज्ञात नारी के गमन की कलहस के विभ्रम से जो उपमा दी है, इसमें उनका उद्देश्य हसगामिनी सीता के वाल्मीकि आश्रम की ओर जाने का सकेत है।

अदृश्य सीता के द्वारा गिराया गया श्वेत उत्तरीय वस्त्र आकाश से गिरी हुई चॉदनी की केंचुली के समान बताते हुए कवि ने सुन्दर उपमा की योजना की है।[२८] चतुर्थ अक के अन्त में सायकाल होने की सूचना नेपथ्य से दी

जाती है जिसमें अस्त होते हुए सूर्य की उपमा नाटककार ने एक प्रखर राजा के रूप में की है जो बहुत ही सटीक है–"भगवान् सूर्य कठोर राजा के समान पहले अपने अप्रतिहत प्रताप से सारे ससार को सतप्त कर अब आयु के समान दिन के ढल जाने पर क्रम से सायकाल को शान्त (शीतल) होने जा रहा है।"[२९]

पचम अक में सीता के स्मरण में विलीन राम विदूषक से अपनी स्थिति को कमल का दृष्टान्त देते हुए स्पष्ट करते हैं–

"अन्तरिता अनुरागा भावा मम कर्कशस्य बाह्येन।
तन्तव इव सुकुमाराः प्रच्छन्नाः पद्मनालस्य।।"[३०]

अर्थात् जैसे कठोर कमल नाल के अन्दर कोमल तन्तु छिपे रहते हैं वैसे ही बाहर से मुझ कठोर के हृदय में अनुराग भरे भाव छिपे पडे हैं। यहॉ कवि ने प्रसिद्ध प्राकृतिक उपमान कमल का आश्रय राम के उदात्त चरित्र की सिद्धि के लिये लिया है। परन्तु यहॉ पर प्राप्त उपमा प्रसगानुकूल नहीं लगती, क्योंकि पद्मनाल को सामान्यत कठोर नहीं माना जाता है तथा पत्नी के परित्याग रूप क्रूर कृत्य की अभिव्यक्ति के लिए यह उपमान कुछ न्यून प्रतीत होता है। इसकी अपेक्षा विदूषक के कथन से राम के चरित्र की उत्कृष्टता अधिक प्रतीति होती है, जहॉ उन्हें समुद्र के समान बताया गया है–

"आप अति प्रबल हृदय के सताप से बडवानल से समुद्र की भॉति अपने महत्त्व में घटते नहीं हैं, परन्तु मैं तो स्वभाव से लघु हूॅ और देवी सीता की दशा का स्मरण करके जगल की आग से ओंस की बूॅद की तरह सूखा जा रहा हूॅ।"[३१]

राम का हृदय यह सोचकर सदा सन्तप्त हो रहा है कि सीता त्याग के समय मुझे मन्त्री आदि ने रोका क्यों नहीं। अपने हृदय के भाव को अभिव्यक्त करने के लिए वे विदूषक को मन्त्री आदि के कर्तव्य के विषय में बताते हुए कहते हैं कि जब राजा प्रजाजनों के साथ कठोर आचरण करे तो श्रेष्ठ मन्त्रियों का कर्तव्य है कि राजा को रोकें। इसकी पुष्टि के लिए कवि ने प्रकृति का सटीक उपमान उद्धृत किया है कि सूर्य जब अपने उष्ण तेज से ससार को तपाने लगता है तो जल से भरे मेघ बीच में व्यवधान पैदा कर देते हैं अर्थात् छाया से पहले वातावरण को सह्य बना देते हैं, तदुपरान्त वर्षा करके शीतलता प्रदान करते हैं।[३२]

वनवासी ऋषि-मुनियों का व्यक्तित्व लोकोत्तर होता है। उनके उपदेश

मानव के हृदयगत अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश देते हैं। इस शास्त्रसम्मत सत्य को उद्घाटित करने के लिए कवि ने प्रकृति के विशिष्ट पदार्थो की उपमा दी है। "अन्त करण में वर्तमान सत्तारूपिणी ज्योति श्रेष्ठपुरुषों द्वारा प्रज्वलित नहीं किए जाने पर पदार्थो के स्वरूप को प्रकाशित नहीं करती हैं, जैसे अग्नि नाम का तेज भी वायु को पाए बिना अपना काम करने में समर्थ नहीं होता।"[३३]

लवकुश के सौन्दर्य-उद्बोधन में कवि ने जो उपमान ग्रहण किए हैं वे उनकी कल्पना चातुरी को अभिव्यजित करते हैं। लव-कुश मगलकारक अकुरों के समान खडे हुए हैं, वे साल के वृक्षों के समान ऊँचे हैं तथा चन्द्रकला दर्शन के समान आनन्द देने वाले हैं।[३४] समीप में खड़े उन दोनों लव और कुश से राम उसी प्रकार शोभा को प्राप्त कर रहे हैं जैसे पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों से चन्द्रमा शोभा पाता है-

स एष रामो नयनाऽभिराम·
सीतासुताभ्यां समुपास्यमानः।
यदृच्छया तिष्यपुनर्वसुभ्यां
पार्श्वस्थिताभ्यामिव शीतरश्मि·।।[३५]

उन कुश-लव को सीता ने उसी प्रकार जन्म दिया था जिस प्रकार आकाश चन्द्र सूर्य को प्रकट करता है।[३६] नाटक के अत में सीता एव राम के पुनर्मिलन के प्रसग में पृथ्वी को सीता के उत्कृष्ट चरित्र के विषय में बताते हुये देवता, गन्धर्व आदि उसे शरद् ऋतु की चन्द्रिका के समान कहते हैं।[३७]

इसके अतिरिक्त कुन्दमालाकार दिड्नाग ने इक्ष्वाकुकुल की श्रेष्ठता का अकन करने के लिए उसे शरद् चन्द्र के समान,[३८] सीता को राम के विरह में दुर्बल बताने के लिए उसे ग्रीष्म-ऋतु की लता[३९] तथा कृष्ण पक्ष की चन्द्रलेखा के समान,[४०] श्री राम के धैर्य एव स्वर-गाम्भीर्य को अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें क्रमश मन्दराचल[४१] एव जलयुक्त बादल के समान[४२] कहा है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि नाटककार परम्परित प्राकृतिक उपमानों के प्रयोग में सिद्धहस्त है।

महावीरचरित में कुछ स्थलों पर प्रकृति का उपमान के रूप में विन्यास हुआ है। राम एव लक्ष्मण के लिए प्रस्तुत उपमान देखिए- कुशध्वज कहते हैं—जिस प्रकार चन्द्रमा एव कौस्तुभमणि की उत्पत्ति क्षीरसागर को छोडकर अन्य किसी सागर से नहीं हो सकती उसी प्रकार राम एव लक्ष्मण का जन्म

रघुवश से भिन्न वश से नहीं हो सकता।[८३] शिवचाप के टूटने से रुष्ट परशुराम के सभक्ष राम अपने आपको प्रस्तुत करते हैं जिन्हें देखकर परशुराम कहते हैं- "मैं तुम्हें मारने के लिए ढूंढ रहा हूँ और जन्मना पवित्र होने के कारण तुम अपने को अर्पित करते हो। जैसे कोई उत्तम गजशिशु हाथियों के मस्तक को फाडने में प्रसिद्ध वज्रोपम पाणिवाले सिह के आगे अपने को अर्पित कर रहा हो।"[८४]

सीता के अपहरण-जन्य क्रोधाभिभूत राम की स्थिति ऊपर धूम से आवृत्त भीतर उदर में बडवानल को दबाये हुए समुद्र के समान हो रही है या बिजली से व्यञ्जित वज्र से युक्त मेघ की सी हो रही है।[८५] तथा वे युद्ध के लिए सन्नद्ध शत्रु को देखकर उसी प्रकार अचल हैं जिस प्रकार प्रत्येक दिशा में वृष्टि के साथ प्रचण्ड झञ्झावायु के बहने पर भी अतीत दृढ कुलपर्वतगण नहीं हिलते और अपनी अनन्त गभीरता एव महिमा से प्रकाशमान जलमयी ब्रह्ममूर्ति धारण करने वाले अनन्त महिमा मण्डित समुद्र भी अपनी मर्यादा नहीं छोडते।"[८६] अयोध्या लौटने पर वसिष्ठ जी के दर्शन से राम का हृदय उसी प्रकार आर्द्र हो जाता है जैसे चन्द्रमा के दर्शन से चन्द्रकान्तमणि द्रवीभूत हो जाती है।[८७]

सजीवनी से सचेत लक्ष्मण सान पर चढाए हुए रत्न की भाँति, सघन मेघमण्डल से निकले हुये सूर्य की भाँति, म्यान से निकली हुई तलवार की भाँति तथा केंचुल त्यागे हुए सर्प की भाँति अत्यधिक चमक रहे हैं।[८८] यूद्धभूमि में उन लक्ष्मण के धनुष के टकार मात्र होने से ही इन राक्षसों में प्रलय का सा दृश्य उपस्थित हो गया था, ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार सिह के गर्जन से हाथियों में कोलाहल मच जाता है।[८९]

सीता के अग मधूक पुष्प के समान सुन्दर हैं,[९०] उनका मुख चन्द्रमा के समान, चञ्चल नेत्र नीलकमल के समान तथा केशपाश मेघमाला के समान हैं।[९१] उनका उत्तरीय राम की आँखों को शरत्काल के चन्द्रमा के समान आनन्दमयी, शरीर में कर्पूर के सुगन्धित चूर्ण के समान स्पर्शमात्र से ही शीतल करने वाला और मन में अमृत कलश से सींचे हुए के समान तत्काल चेतनादायक प्रतीत हुआ।[९२]

परशुराम की वीरता के अभिव्यजक उपमान द्रष्टव्य हैं। उनकी आवाज पुष्करावर्तक नामक मेघ की ध्वनि के सदृश गम्भीर है।[९३] उनके शरीर की कान्ति चमकते हुए सूर्य के तेज के तुल्य दुष्प्रेक्ष्य तथा इधर-उधर हुई जटाए

अग्नि की लपटों के समान हैं,[५४] उनका परशु, वज्र के समान कठोर हैं तथा क्षत्रिय-सहार से विरक्त उनका धनुष शान्त विष वाले सर्प के समान हो गया था।[५५] सहारकाल में उनके धनुष का शब्द ससार में वन की तरह फैल जाता है तथा अग्नि के स्फुलिग तुल्य बाणों की वर्षा करता हुआ प्रलयकाल का अनुकरण करता है।[५६]

रावण के चरित्र की न्यूनता द्योतित करने के लिए भवभूति ने अनुकूल उपमानों की योजना की है। रावण का मन्त्री माल्यवान् कहता है- "राक्षसपति रावण के अविनय तरु की कलियॉ चारों ओर फैल रही हैं। जिसका बीज विदेहराज की तनया जानकी की प्रार्थना है। बहिन शूर्पणखा की राम-लक्ष्मण को धोखा देने के लिए की गयी यात्रा इसका अकुर हैं, मारीच की माया-रचना इसके नूतन किसलय हैं, अयोनिजा सीता का अपहरण इसकी शाखाओं का समूह है, बाली का वध तथा अनुज विभीषण का गमन एव उन दोनों राम-लक्ष्मण के साथ मैत्री की स्थापना इस वृक्ष की कलियों के समान प्रत्यक्ष हो रही है।"[५७] "जिस प्रकार अपनी इच्छा से निरन्तर निस्सीम आकाशमण्डल में भ्रमण करता हुआ सूर्य एव उसकी अनुगत दिवस-कान्ति भी अस्ताचल को छोडकर दूसरी जगह नहीं गिरती, उसी प्रकार उत्पत्ति से परिपूत रावण की पापबुद्धि प्रबल भवितव्य को छोडकर अन्यत्र कहीं भी नहीं गिरेगी।"[५८]

रावण के युद्धभूमि की ओर चलने से हुए भयकर शब्द की तुलना प्रलयकालीन वातावरण से करता हुआ कवि कहता है- "प्रलयकाल के समय समस्त भूमण्डल को जलप्लावन करने के निमित्त बढे हुए सातों समुद्रों की प्रचण्ड लहरों के परस्पर सघर्ष से उत्पन्न भयकर आवाज की तरह प्रचण्ड, रणभूमि में इधर-उधर सहस्रों सशस्त्र राक्षस वीरों के आने-जाने से उत्पन्न यह निर्घोष चारों ओर फैल रहा है।"[५९] इससे यह पता चलता है कि राक्षसों का चक्रवर्ती रावण युद्ध के लिए बाहर निकलने की इच्छा कर रहा है। राम एव रावण की सेनाओं के अन्तर हेतु प्रस्तुत उपमान देखिए- "इन दोनों वानर और राक्षस सेनाओं में प्रात काल के अरुणोदययुक्त प्रकाश एव अन्धकार के समान अन्तर है। अर्थात् एक तो प्रात काल के प्रकाश की भॉति उत्तरोत्तर प्रवर्द्धमान है तथा दूसरी अन्धकार की भॉति क्षीयमाण है।"[६०]

ताड़का के लिए उसके नाम के अनुरूप ही उपमान खोजा गया है। ताडका ताड़ वृक्षों के समान ऊँची तथा अनिष्ट की सूचना देने वाले बवडर के समान है।[६१] बाली के पौरुष के अवबोधक उपमान भी द्रष्टव्य हैं। बाली

अपने पिंगल (लाल) वर्ण के शरीर में देवराज इन्द्र द्वारा प्रदत्त सुन्दर-सुवर्ण की माला धारण किए हुए हैं जो सायकाल की लालिमा से रजित बिजलीयुक्त विशाल मेघ के समान अथवा अग्नि के उत्पात से युक्त गैरिक धातु के पर्वत के समान लगता है।[६२]

भवभूति ने उत्तररामचरित में रामादि के वैशिष्ट्य को सिद्ध करने के लिए प्राकृतिक उपमानों को प्रस्तुत किया है। राम का शरीर विकसित नूतन नील कमल के समान श्यामल, स्निग्ध तथा मसृण है।[६३] अत दर्शकों के नेत्रों को उत्सव देते हुए सदैव अपनी रुचि के अनुरूप नवीन ही नवीन प्रतीत होते हैं।[६४] उनकी वाणी की ध्वनि जल के भार से परिपूर्ण मेघ के मन्द-मन्द गर्जन के समान गम्भीर और प्रभावशाली है।[६५] सीता जी का मुख आकाश में फैलती हुई चन्द्रिका से सुशोभित चन्द्र के तुल्य तथा खिले हुये कमल के समान मनमोहक है,[६६] उनके दॉत कुसुम-कलिकाओं के समान कमनीय हैं तथा वर्ण चन्द्रिका के समान धवल है।[६७]

अनेक मार्मिक कथा प्रसगों में कवि ने सीता को प्रकृति के कोमल पदार्थो के समान बताया है। चित्रवीथी दर्शन के समय सीता के मधुर वचनों को सुनकर तथा स्पर्श को पाकर राम कहते हैं- "कमललोचने! तुम्हारे ये मधुर वचन मुरझाए हुए जीवन-कुसुम को विकसित और तृप्त करने वाले, समस्त इन्द्रियों के मोहकारी कानों के लिए अमृत-तुल्य तथा मन के लिये रसायन के समान शक्तिप्रद हैं। यह सीता मेरे घर में लक्ष्मी हैं, ऑखों के लिए अमृत की सलाई है, इसका यह स्पर्श शरीर में गाढे-गाढे चन्दन-रस का लेप है और इसकी यह भुजलता कण्ठ में शीतल और स्निग्ध मोतियों के हार के समान है। इसकी कौन सी वस्तु प्रिय नहीं है? परन्तु इसका विरह सर्वथा असह्य है।"[६८]

तृतीय अक में छाया रूप में उपस्थित सीता के हाथ का स्पर्श राम के लिए अत्यधिक सुखद प्रकृति के शीतल तत्त्वों के रस के समान है। राम स्वय कहते हैं- "क्या मेरे हृदय पर यह हरिचन्दन के नवपल्लवों का रस बह रहा है? अथवा चन्द्रमा के किरण-रूपी अकुरों को निचोडकर उनके रस से किया गया सेक हैं? अथवा मेरे सन्तप्त मन और प्राण को तृप्त करने वाला यह सञ्जीवन-औषधि का रस ही किसी ने विशेष रूप से सींच दिया है?"[६९]

षष्ठ अक में लव-कुश को देखकर राम अनुमान करते हैं कि ये उन्हीं के पुत्र हैं, साथ ही सीता का स्मरण कर उनकी नेत्रों से ऑसू बहने लगते

हैं। यह देखकर लव कहता है- "जगत् के लिए मगल-स्वरूप आपका मुख अश्रुवर्षा से उसी प्रकार सुशोभित हो रहा है जैसे ओस की बूँदों से युक्त कमल सुन्दर लगता है।"[७०]

राम के विरह में कृशकाय सीता का एक हृदयस्पर्शी चित्र द्रष्टव्य है। मुरला सीता को देखकर कहती है- "हृदयकमल को सुखाने वाला दारुण दीर्घ शोक इस सीता के डाल से टूटे हुए कोमल किसलय के समान दुर्बल तथा पीले शरीर को उसी प्रकार सुखा रहा है जिस प्रकार कि शरद्-ऋतु की कडी धूप केवडे के भीतरी कोमल पत्ते को सुखा देती है।"[७१] दण्डकारण्य में राम की गम्भीर वाणी को सुनकर सीता दत्तचित्त हो उसी प्रकार चकित हो जाती है जिस प्रकार मेघ के अस्पष्ट गर्जन को सुनकर मयूरी प्रसन्नचित्त हो जाती है[७२] तथा राम का स्पर्शसुख पाकर वह उसी प्रकार स्वेद से रोमाञ्चित और कम्पित हो गई है जिस प्रकार कदम्ब की विकसित डाल पवन से कँपाई गयी तथा प्रथम वर्षा के जल से भीग जाती है।[७३] यहाँ सीता के लिए 'मयूरी' तथा 'कदम्बयष्टि' बहुत ही अनुकूल उपमान हैं।

लव नील-कमल दल के समानमसृण और श्याम काक पक्षों से सुशोभित हैं, उसका अलौकिक सौन्दर्य आँखों में अमृतमय अञ्जन के लेप के समान है।[७४] स्वर मधुर कण्ठ वाले हस के स्वर के समान है[७५] लव के आनन्ददायी स्पर्श-सुख को पाकर राम कहते हैं- 'विकसित पूर्ण कमल की भीतरी पखुडियों के मासल, मसृण और सुकुमार, चन्द्र एव चन्दन द्रव के तुल्य शीतल तुम्हारा स्पर्श मुझे आनन्दित कर रहा है।"[७६] कुश भी इन्द्रनीलमणि के समान श्यामवर्ण है। उसकी गम्भीर वाणी सुनकर राम का समस्त शरीर वैसे ही उत्कण्ठित हो जाता है जैसे नए नीले बादलों के गम्भीर गर्जन के समय कदम्ब मुकुल खिल जाते हैं।[७७] राम लव-कुश में रघुकुल के कुमारों के से चिह्न देखते हुए कहते हैं- "बैल के समान मनोहर कन्धों वाले इन लव-कुश का शरीर युवा कबूतर के कण्ठ जैसा श्यामवर्ण है, दृष्टि प्रसन्न सिह के समान शान्त और स्वर मागलिक मृदग के सदृश गम्भीर है।"[७८]

लव की वीरता को द्योतित करने के लिए सिहशावक उपमान बहुत अनुकूल है। सुमन्त्र चन्द्रकेतु से कहते हैं- "जैसे उद्दीप्त सिहशावक मेघ-गर्जन सुनकर हाथियों को विध्वस करने से रुक जाता है, वैसे ही यह वीर बालक तुम्हारे आह्वान को सुनकर सेना-सहार से निवृत्त होकर तुम्हारी ओर आ रहा है।"[७९]

चन्द्रकेतु के नाम के अनुकूल उपमानों का सयोजन कवि की अद्भुत प्रतिभा का अभिव्यजक है। राम चन्द्रकेतु को देखकर सस्नेह बुलाते हैं- "सूर्य वश के चन्द्र! चन्द्रकेतु! शीघ्र आओ और मेरा आलिगन करो, जिससे तुम्हारे हिम-खण्ड के समान शीतल अगों से मेरे मन का भी ताप शान्त हो जाये।"[८०] लव का हृदय भी चन्द्रकेतु को देखकर स्नेहाभिभूत हो जाता है। उसके वचन यहाँ उद्धरणीय हैं - "जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर कुमुदिनी आनन्दित होती है, वैसे ही मेरे नेत्र इसे देखकर हर्षित हो रहे हैं।"[८१]

अपनी पुत्री सीता के निर्वासन से दु खी जनक के लिए प्रस्तुत उपमान देखिए- "ये जनक हृदय में निरन्तर दिन-रात लगे हुए सीता के शोक से अन्दर ही अन्दर आग फैले हुए जर्जर वृक्ष की भाँति सन्तप्त होते रहते हैं।"[८२]

महर्षि वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती को भवभूति ने तीनों लोकों की कल्याणकारिणी, जगद्वन्द्या देवी उषा के समान कहा है[८३] जो ऋषिपत्नी के लिए सर्वथा अनुरूप उपमान है। काव्यशास्त्रियों ने नाटक में शृगार अथवा वीर रस को ही अगी रस के रूप में स्वीकार किया है[८४] परन्तु भवभूति ने लीक से हटकर करुण रस को ही अगीरस के रूप में स्थापित किया है और इसकी पुष्टि में जल को उपमान के रूप में ग्रहण किया है। वे घोषणा करते हैं-

"एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्त्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारानम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्।।"[८५]

करुण रस ही एकमात्र मुख्य रस है। निमित्त-घटना अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव की विलक्षणता से यह शृगार, वीर आदि भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है। जैसे जल भँवर, बुलबुले तथा तरगों का रूप धारण कर लेता है, परन्तु यथार्थत वह होता एक ही है।

इस सन्दर्भ में प्राकृतिक उपमान का सयोजन कवि की अलौकिक कल्पना-चातुरी का बोधक है। यहाँ प्रो कृष्णकान्त शुक्ल का विवेचन द्रष्टव्य है- "तमसा इस श्लोक को कह रही है। उसके अतिरिक्त तीन पात्र ही अवशिष्ट रहते हैं। उनमें से प्रत्येक के लिए एक-एक उपमान का प्रयोग किया जा सकता है। राम को 'आवर्त्त', सीता को 'बुद्बुद्' तथा वासन्ती को 'तरग' माना जा सकता है। राम करुण रस में सर्वात्मना घूम रहे हैं। सीता के हृदय में अनेक भाव क्षण-प्रतिक्षण उठ रहे हैं और वासन्ती भी करुण की लहरों

से अछूती नहीं है। अतएव इनके लिए क्रमश 'आवर्त्त-बुद्बुद्-तरग' का प्रयोग करके कवि ने अपनी विदग्धता का परिचय दिया है।''[८६]

महाकवि भवभूति ने भाव-विशेष की सिद्धि के लिए भी प्रकृति के उपमान को उद्धृत किया है। लव को देखकर राम के हृदय में स्नेहधारा प्रवाहित हो उठती है। इस सन्दर्भ में अपने प्रेम-विषयक सिद्धान्त को बताते हुए भवभूति कहते हैं कि प्रेम बाहरी कारणों पर आश्रित नहीं होता, वह तो आन्तरिक होता है। कोई अनिर्वचनीय अज्ञात हेतु ही प्राणियों के अन्त करणों को परस्पर मिलता है। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए कवि अर्थान्तरन्यास के माध्यम से दो प्राकृतिक उपमान उद्धृत करते हैं- ''सूर्य के उदय होने पर ही कमल विकसित होता है और चन्द्रमा के निकलने पर ही चन्द्रकान्त-मणि पिघलने लगती है।''[८७]

अनर्घराघवनाटककार ने अनेक पात्रों के चरित्रानुकूल प्राकृतिक उपमानों का श्लाघनीय सयोजन किया है। राजा दशरथ के चारों पुत्र सूर्यवशी क्षत्रियों की वशपरम्परा रूप मल्लिका के पुष्पों की माला के खिले हुए नवीन पुष्प-गुच्छों के समान हैं। उनमें राम ताडकारूप रात्रि के लिए प्रात काल के समान एव सुचरित कथारूप अकुर के मूलकन्द के समान हैं।[८८] रामचन्द्रजी का मुख चन्द्रमा के समान है जो मिथ्या धनुर्धरों द्वारा की गई सीता की प्रार्थना से खिन्न जनक जी के हृदय को उसी प्रकार शीतलता प्रदान करता है जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणें सूर्य की किरणों से सन्तप्त कैरवकुल के क्लेश को दूर करती हैं।[८९] राम की सुजनता एव उदारहृदयता को कवि सूर्य एव कुमुद के द्रष्टान्त से इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं- जिस प्रकार सूर्य बिना प्रतिज्ञा के कमलों के समूह को शोभा प्रदान करता है उसी प्रकार राम ने भी किसी प्रकार की प्रतिज्ञा को प्रकट किए बिना सुग्रीव को राजलक्ष्मी प्रदान की।[९०] जिस प्रकार कुमुद अपने उदर में बैठे हुए तथा शत्रुभूत कमल के पास से आए हुए भ्रमरों को एक भाव से सत्कृत करता है उसी प्रकार राम ने शत्रु रावण के गुप्तचर सारण को अपने मन्त्री की तरह आदर प्रदान किया।[९१] इन सन्दर्भों में श्रीराम के लिए विन्यस्त प्राकृतिक उपमान राम के चारित्रिक उत्कर्ष के साथ ही विषय-बोध के लिए सटीक हैं।

नारी के सुख की सुन्दरता हेतु प्रसिद्ध परम्परागत उपमान चन्द्रमा एव कमल को कवि मुरारि ने सीता-मुख के लिए नवीन उद्भावना के साथ प्रस्तुत किया है। राम सीता से कहते हैं- ''हे सीते, ब्रह्मा ने चन्द्रमा के साथ तुम्हारे

मुख की तुलना करने के लिए दोनों को अलग-अलग पलडे पर चढा दिया और यदि चन्द्रमा में कमी आयेगी, तब उसे पूर्ण करने के लिए तत्समान वस्तु के कुछ खण्ड के रूप में यह तारे रख छोडे तथा इन कमलों के वश में ब्रह्मा ने साक्षात् जन्म ग्रहण किया, शय्या से उठकर यह कमल प्रतिदिन दिन-भर भ्रमरों को तृप्त करते हैं, एकाग्र दृष्टि से भगवान् सूर्य की ओर देखने का व्रत धारण करते हैं, इसीलिये हे सुन्दरि, यह कमल तुम्हारे मुख से समता प्राप्त कर सके हैं।"[६२]

राम-लक्ष्मण की सहज सन्निधि को बताने के लिए कवि ने चन्द्रमा एव प्रकाश को उपमान चुना है। जिस प्रकार प्रकाश को छोडकर चन्द्रमा उदित नहीं हो सकता उसी प्रकार लक्ष्मण के बिना राम भी नहीं होते। राम का आह्वान करने से लक्ष्मण भी आहूत हो जाते हैं।[६३] दशरथ की सुजनप्रियता को अभिव्यक्त करते हुए कवि कहता है कि जिस प्रकार पूरब दिशा से आने वाली वायु मेघमाला को बढाती है उसी प्रकार इस राजा ने अमृत-वर्षा करने वाले सुजनों के सवाद को बढावा दिया है।[६४] दशरथ के समृद्धयश वर्णन में 'यश की धवलता' (कवि समय) को सिद्ध करने के लिए सगृहीत उपमान द्रष्टव्य हैं। विश्वामित्र कहते हैं-"हे राजन्! केंचुल छूटे हुए शेषनाग की तरह धवल तथा मन्दराचल द्वारा मथे गये क्षीरसागर के अभ्यन्तर भाग की तरह स्वच्छ तथा कृष्णपक्ष के चन्द्रखण्डों की तरह स्वच्छ आप के यश से सारा विश्व शोभित हो रहा है।"[६५]

महर्षि विश्वामित्र के लोकोत्तर चरित का विचार करते हुए लक्ष्मण राम से कहते हैं- शान्ति से जिनकी देह अति विश्वसनीय लग रही है, ऐसे ये विश्वामित्र जगत्-ध्वसन एव नव-सृजन रूप कार्य से विश्वत्रासजनक क्रोध को किस प्रकार धारण कर सके थे? लक्ष्मण की शका का समाधान प्रकृति अपने उपादान से इस रूप में करती है। यह विश्व का नियम है- जो महौषधियॉ अति कोमल, सुन्दर तथा शीतल होती हैं, वे ही अन्धकार होने पर सहसा जल उठती हैं।[६६] यहॉ उपमान का सयोजन अद्भुत है। जिस प्रकार कोमल एव शीतल महौषधियॉ अन्धकार होने पर स्वय प्रदीप्त हो जाती है उसी प्रकार शान्त एव सौम्य प्रकृति मुनिजन दूसरे से तिरस्कृत होने पर क्रुद्ध हो जाते हैं। महाकवि कालिदास ने भी उक्त भाव को शाकुन्तल में इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

"शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोभिभवाद्वमन्ति।।"[६७]

के सामने रावण ने अञ्जलि बॉध ली है। रावण की बॅधी हुई अञ्जलि सकुचित कमल के समान है। यह दृश्य कवि की अलौकिक कवित्व शक्ति का परिचायक है।

इसके अतिरिक्त भी शक्तिभद्र ने अनेक प्रसगों में प्राकृतिक उपमाओं का आश्रय लिया है जिससे काव्य अधिक भावात्मक हो गया है।

हनुमन्नाटक में प्रकृति का उपमान के रूप में सयोजन प्राय सभी पात्रों के चरित्र की विशेषताओं को प्रस्तुत करने में सहायक हैं। श्री राम नाना अवतार लीलाओं के कल्पवृक्ष हैं, विश्व-कमल को प्रफुल्ल करने के लिए सूर्य हैं।[११३] वे ससार के तापों से उत्तापित जीवों के लिए सुधाशु के समान, क्रोध की शान्ति के लिए जलधर समान, काल-व्याल के विषशमन के लिए गारुडमणि के समान, धैर्य के वृक्ष हैं।[११४] हनुमान् प्राकृतिक उपमानों के माध्यम से श्री राम के प्रताप एव यश की अलौकिकता का वर्णन करते हैं- "देव! कच्छपराज जिसके पैर, शेष जिसका प्रकाश, आकाश की श्यामता जिसका काजल और जलते- भुनते शत्रु-समूह जिसमें पतगे हैं ऐसा आपका प्रताप-दीपक प्रज्वलित हो रहा है। हे पृथ्वीनाथ! आपका कीर्ति रूप तडाग का स्थान कैलास, जलस्तम्भ हिमालय, शकर अधिष्ठाता, आकाश-गगा घर की बावडी, स्वच्छ चन्द्रकान्तमणि उसमें पत्थर, क्षीरसमुद्र उसका जलाशय और शेष की अगकान्ति उसकी शोभा है। हे रघुपति! आपका यश आकाश के समान अनन्त है जिसमें सूर्य जुगनू के समान, चन्द्रमा मकडी के जाले के समान और तारागण मच्छर प्रतीत होते हैं। इस प्रकार आपके यश रूप आकाश का वर्णन करते समय मेरी वाणी भ्रमर के समान होकर मौन हो जाती है।"[११५]

राम एव लक्ष्मण के आन्तरिक प्रेम को बताने के लिए कवि ने उसके लिए क्रमश गाय एव बछडे को उपमान चुना है। कवि कहता है -"श्री रामचन्द्र जी पिता की आज्ञा से राज्य का त्याग कर शीघ्र ही तरकस पीठ पर बॉध, हाथ में धनुष बाण ले वन को चले। उनके पीछे लक्ष्मण भी उसी तरह गये जिस तरह गाय के पीछे उसका छोटा बछडा चलता है।"[११६] कवि राम एव लक्ष्मण के प्रेम को एक प्रसग में प्राकृतिक उपमानपूर्वक ही स्पष्ट भी करता है- श्री राम मायामयी जानकी के दो टुकडे देखकर मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पडते है। लक्ष्मण जी श्रीखण्ड के लेप और विकसित नलिनीगर्भ-निर्मुक्त शीतल सुगन्धपूर्ण जल से श्री राम का सिचन करते हैं और चक्रवाकी की

दृष्टि के समान विलाप करते है। इस उपमान को कवि ने भावात्मक रूप में उद्धृत किया है– जिस प्रकार चक्रवाकी क्रोधपूर्ण एक ऑख से व्योम स्थित सूर्य को और दूसरी सजल दृष्टि से अपने प्रिय जोडे को सध्या समय देखती है और वियोग की शका से रौद्र और करुण से मिश्रित रसों को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार लक्ष्मण शीतोपचार और विलाप दोनों करने लगे।"[११७]

जनकनन्दिनी सीता के सौन्दर्य-बोधक उपमान भी द्रष्टव्य हैं। सीता जी के अग शिरीष के पुष्पों के समान कोमल हैं।[११८] नेत्र कमल के समान सुन्दर,[११९] चरण नवनीत के समान स्निग्ध हैं।[१२०] कटि-प्रदेश सिह की कमर के समान, पतली, मुस्कान चन्द्रमा के समान मधुर, देहकान्ति चम्पा की कलियों के समान आकर्षक, स्वर कोकिल के समान मधुर, चाल हाथियों एव हसो के समान मन्द है[१२१] तथा दन्तपक्ति अनार के दानों के समान स्वच्छ हैं।[१२२] मुख एव वेणी की अपूर्व सुन्दरता के लिए कमल एव सर्प उपमान का विन्यास नवीन कल्पना के साथ द्रष्टव्य हैं। राम सीता से कहते हैं- "हे प्रिय! मृगाक्षि! कमल तुम्हारे वदन सौन्दर्य को देखकर, वही सौन्दर्य प्राप्त करने के लिए भ्रमरों की अक्षमाला लेकर इष्टदेव की आराधना में जप करने लगा और सर्पराज वासुकि तुम्हारी वेणी के समान अपने अग को न देखकर पाताल में जा छिपे।"[१२३]

राम एव सीता की सन्निधि के अभिव्यजक उपमान भी अनुकूल हैं यथा-"जनककुमारी जानकी की दृष्टि राम पर इस प्रकार शोभित हुई, जिस तरह सुन्दर नील तमाल पर भ्रमरी बैठी हो।"[१२४] जनकसुता के सग राम उसी प्रकार सुशोभित होते हैं, जैसे कमलिनी के सग राजहस सुशोभित होता है।[१२५]

लकानगरी में जलती हुई पूँछ वाले पवनपुत्र हनुमान् उसी प्रकार सुशोभित होते हैं जिस प्रकार वडवानल से युक्त समुद्र, सूर्य बिम्ब से युक्त आकाश, बिजलियों से युक्त मेघमण्डल, इन्द्रधनुष युक्त मेघ, ध्रुवमण्डल से युक्त सुमेरु पर्वत सुशोभित होता है।[१२६] शिव-धनुष के टूटने से क्षुब्ध परशुराम प्रलयकालीन पवन के झोंकों से प्रज्वलित कल्पान्तवह्नि के समान जाज्वल्यमान हैं।[१२७] अपने पितृकुल के अनुरूप यज्ञोपवीत धारण किये और क्षत्रिया माता के अनुसार विशाल धनुष हाथ में लिए ये ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे चन्द्रमा को साथ में लिए सूर्यदेव या चन्दन द्रुम के साथ सर्प हो।[१२८]

उनका फरसा क्षत्रियों के वश के विनाश के समय प्रलयकालीन बारह सूर्यों के समान चमकता हैं।[१२९]

रावण अन्धकार के समान हैं, जिसे विनष्ट करने वाले राम आकाशस्थित सूर्य के समान हैं।[१३०] कुम्भकर्ण आत्मश्लाघा में अपने को मेघ एव सिह के समान कहता है तथा वानर वीरों को छोटी नदी और मच्छर के समान मानता है।[१३१] युद्ध में क्रुद्ध उसकी ऑखे प्रलयाग्नि के अगारों के समान है।[१३२] प्रभजनी नामक राक्षसी अगद के बाहुपाश में पडकर उसी प्रकार रोती है जिस प्रकार सिह से पकडी हुई हरिणी चीखती है।[१३३]

महाकवि राजशेखर ने बालरामायण में प्रकृति को उपमान के रूप में अनेक स्थलों पर उद्धृत किया हैं। शिव-धनुष के भजन हेतु प्रकट हुए राम शरत्काल में उत्पन्न कमल के समान हैं।[१३४] वे गुणरूपी वृक्षों के उपवन के समान हैं।[१३५] धनुष लेकर युद्धभूमि में जाते समय लतासहित तमाल के गुच्छ के समान सुशोभित होतें है।[१३६] उनका वक्षस्थल प्रफुल्ल कमल वन के समान मनोरम तथा गिरिशिला के समान विशाल है।[१३७]

कवि ने सीता के सौन्दर्य-व्यजक प्रसिद्ध उपमान नयी शैली में प्रस्तुत किए हैं यथा- "सीता के सामने चन्द्रमा ऐसा लगता है मानों अञ्जन से लिप्त हैं, मृगियों की दृष्टि जैसे जड हो गई है, विद्रुम की लता की लाली मानों मुरझा गयी है, स्वर्ण की द्युति मानो काली हो गई है, कोकिल के कण्ठ में मधुरता ने मानो कर्कशता का रूप ले लिया है, और हाय! मयूरों के पख भी मानो कुत्सित हो गये हैं।"[१३८] सीता की पवित्रता के लिए गृहीत उपमान द्रष्टव्य हैं- "जिस प्रकार अन्धकार से आवृत्त होने पर भी चन्द्रमा की कला काली नहीं होती उसी प्रकार राक्षस के गृह में निवास करना वैदेही के कालुष्य का हेतु नहीं है।"[१३९]

प्राकृतिक पदार्थो के चित्राकन के लिए तदनुरूप प्राकृतिक उपमानों का सयोजन कवि-कौशल का परिणाम है। सूर्यास्त के समय अन्धकार मग्न ससार तरल तेल से मिश्रित कज्जल से लिप्त जैसा, तरुण तमालों की कान्ति से आवृत्त जैसा, जलपूर्ण मेघसमूह से शोभित जैसा, शकर के नीलकण्ठ की छवि से आच्छादित-जैसा, नारायण की कान्ति को प्राप्त जैसा, यम के महिष की सींगों से फेंका जैसा, गणेश के मद-जल के पक से ग्रसा जैसा हो गया है।[१४०] ज्योत्स्ना-पुञ्ज केतकी-पुष्प के केसर की धूलि के समान, शुष्क चन्दन के चूर्ण के समान कॉन्ति वाला, मुक्ताफल के समान निर्मल शोभा से सम्पन्न तथा

हृदय को आनन्द देने वाला है।[१४१] महासागर वरुण के भवन के ऑगन की वैदूर्य मणि की भूमि के समान, पाताल के अन्धकार-समूह के निर्गम मार्ग के समान, ससाररूपी महावृक्ष के थॉवला के समान, दिशाओं रूपी कामिनियों के विश्राम-गृह के समान, आकाश-मण्डल के दर्पण के समान मनोरम हैं।[१४३] कवि ने ऑखों से बहते ऑसुओं के लिए गगा-यमुना उपमान का प्रयोग किया है[१३४] जो आज भी प्रचलित है। प्रजापालक श्रेष्ठ राजा के विषय में प्रयुक्त उपमान उल्लेखनीय है- "मृदुता और पुरुषार्थ से राज्य का शासन करने वाले राजा का कर्म सींचे गये वृक्ष की भॉति फल देता है।"[१४४]

जयदेव ने प्रसन्नराघवनाटक में प्राकृतिक तत्त्वों को उपमान के रूप में सर्वाधिक ग्रहण किया है। नाटक में आदि से अन्त तक प्राय प्रत्येक दृश्य में प्रकृति के उपमानों को देखा जा सकता है। नाटक की प्रस्तावना में ही कवि ने प्राकृतिक उपमानों की अपूर्व योजना की है। चतुर व्यक्तियों को भौंरों के समान सिद्ध करने में कवि की कल्पना दर्शनीय है–

आकारेणैव चतुरास्तर्कयन्ति परेङ्गितम्।
गर्भस्थं केतकीपुष्पमामोदेनैव षट्पदाः।।[१४५]

अर्थात् जैसे भौंरे सुगन्ध से ही कली के भीतर स्थित केतकी के पुष्प को जान जाते हैं उसी तरह चतुर व्यक्ति आकार से ही दूसरों के भाव को अनुमान करके जान लेते हैं।

कीर्ति को एक प्रिया की तरह बताते हुए कवि ने प्रिया के सौन्दर्य वर्णन में चिरपरिचित उपमानों का समायोजन किया है- "कमल के दण्ड से सम्पन्न, चॉदनी के समान स्वच्छ मुस्कराहटवाली अपनी प्रिया की तरह शत्रुओं के द्वारा अपहरण की गई अपनी कीर्ति को प्राप्त करने के लिए कौन व्यक्ति प्रयास नहीं करता?"[१४६]

श्रेष्ठ पदरचना एव वक्रोक्ति से युक्त अपने नाट्यप्रबन्ध के वैशिष्ट्य वर्णन में कवि द्वारा गृहीत उपमान दृष्टव्य हैं- "प्रत्येक अक में प्रादुर्भूत शृगार आदि सभी रसों की अवतारणा से युक्त, नूतन एव विकसित होने वाले फूलों की पक्ति के समान, सुन्दर पदरचना वाले, चन्द्रमा के समान वक्रता से अत्यन्त रमणीय, अत्यन्त ललित कथानक वाले, नाटक को आपके द्वारा रगमञ्च पर प्रदर्शित किया जाता हुआ देखेंगे।"[१४७]

काव्य को वृक्ष के समान सिद्ध करने में कवि ने जिन उपमानों को ग्रहण किया है कि वे कवि की अलौकिक प्रतिभा के परिचायक हैं- "बहुत

दिनों से उपार्जित पुण्य जिसका बीज है, प्रतिभा जिसका नवीन अकुर हैं, पण्डितों की मण्डली का सेवन जिसका स्कन्ध है, काव्य जिसका नूतन पल्लव है, कीर्ति जिसकी फूलों की पक्ति है, अत्यन्त समृद्ध ऐसा यह काव्य रूपी वृक्ष रघुकुल-भूषण रामचन्द्र जी की प्रशसा रूपी फल के बिना क्या निष्फल किया जाता है?"[१४८]

अपने को रामभक्त सिद्ध करने के लिए कवि जयदेव ने अपनी तुलना भ्रमर से की है जो बहुत रोचक है। सूत्रधार नट से कहता है-

लक्ष्मणस्येव यस्यास्य सुमित्राकुक्षिजन्मनः।
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद्भृंगायते मनः।।[१४९]

अर्थात् लक्ष्मण के समान सुमित्रा की कोख से जन्म लेने वाले जिन जयदेव का मन रामचन्द्र के चरण-कमल में भ्रमण करता हुआ भौंरे के समान आचरण करता है।'

जयदेव ने अपने पात्रों के व्यक्तित्व को प्रभावी बनाने तथा उनके सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए अनेक प्राकृतिक उपमानों को खोज निकाला है। नाटक की नायिका सीता के शारीरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करते हुए कवि ने प्रकृति के विविध सुन्दर उपकरणों का आश्रय लिया है यथा- "सीता का ओष्ठ बन्धूक के सदृश, नेत्र श्वेत केतकी के पुष्प के समान, गाल महुए के फूल की कली के तुल्य मधुर, दॉतों की पक्ति अनार के बीजों की पक्ति को जीतने वाली तथा मुख खिले हुए कमल को दास बनाने वाला है।"[१५०]

व्यतिरेक अलकार के माध्यम से कवि ने सीता के अगों के लावण्य को प्राकृतिक तत्त्वों से भी उत्कृष्ट सिद्ध किया है यथा- "यह चरणों की शोभा से विकसित रक्त कमलों की कान्ति को मात करती है। हाथों की लालिमा से नये पल्लवों की लालिमा को छीन लेती है। ओष्ठों के अग्रभाग की कान्ति से मूँगे की कान्ति को पी जाती है। मन्द मुस्कानों के प्रकाश की लहरियों से चन्द्रमा की कान्ति का मजाक उडाती है।"[१५१]

सीता की सखी की - "सीता अपने अनुरूप वर को प्राप्त करें" पार्वती के लिए की गई इस प्रार्थना में चन्द्रमा की उपमान के रूप में प्रस्तुति अलौकिक है- "चन्द्रकान्तमणि की माला के समान कोमल हे द्वितीया के चन्द्रमा को मुकुट पर धारण करने वाले भगवान् शकर की गोद में शयन करने वाली! चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली मेरी सखी शीघ्र ही चन्द्र के समान मनोहर पति को प्राप्त करें।"[१५२]

लता कुञ्ज से निकली सीता चन्द्रमा की कला के समान नेत्रों को सहज ही आनन्द प्रदान करने वाली है। इस भाव की अभिव्यक्ति कवि ने निम्नलिखित रूप में की है। राम के शब्दों में - "श्याम रग वाले कदली के पत्तों के बीच में प्रकट होने वाली युवती सीता मुझे उसी प्रकार आनन्दित कर रही है जिस प्रकार नूतन जल भरे बादलों के मध्य में प्रकट होने वाली चन्द्रमा की कला चकोर को आनन्दित कर देती है।"[१५३]

इसी प्रकार सीता के नेत्र, मुख, स्तन एव केशों के नैसर्गिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए कवि द्वारा अनुकूल प्राकृतिक उपमानों का चयन दर्शनीय है- "सीता की ऑखें विकसित नवीन नील-कमल की समानता को धारण करती हैं, यह मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा की शोभा को प्राप्त करता है, दोनों स्तन थोडा खिले हुए कमल की समानता को धारण करते हैं, केशों का समूह विचित्र अन्धकार की शोभा को प्रकट कर रहा है।"[१५४]

तन्वागी सीता को एक लता के रूप में चित्रित करते हुए कवि राम के मुख से सीता के विषय में कहलवाते हैं--

निर्मुक्तशैशवदशाशिशिरा नवीनसम्प्राप्तयौवनवसन्तमनोरमश्रीः।
उन्मीलितस्तननवस्तबका निकाममेणीदृशस्तनुलता तनुते मुदं नः।।[१५५]

अर्थात् बाल्यकालरूप शिशिरऋतु को व्यतीत करने वाली, हाल में ही प्राप्त यौवनरूप वसन्त की मनोहारिणी शोभा से सम्पन्न, उठने वाले स्तन रूप पुष्प-गुच्छ से युक्त, मृगनयनी सीता की यह देहलता ही हमारे हर्ष को पर्याप्त रूप से बढा रही है।

इसी प्रकार कटाक्ष को अमृत के समुद्र की तरगों के सदृश बहुत ही स्वाभाविक रूप में दर्शाया गया है। सीता द्वारा देखे जाने पर राम कहते हैं- "चचल नेत्रों वाली यह सीता अमृत के समुद्र के दूध के समान बडी-बडी तरगों के सदृश कटाक्षों से जिस मुहूर्त्त में मुझे नहला रही है, सदा ही वह मुहूर्त्त बना रहे।"[१५६]

सीता स्वभावत. सौन्दर्ययुक्त चन्द्रकला रूपा है, कवि इसको सहज ही सिद्ध कर देता है। एक चेटी की सीता के प्रति उक्ति देखिए- "हे स्वामिपुत्रि! आपकी मुखरेखा चन्द्रमण्डल में स्नेह करने वाली है। दॉतों की चमक की शोभा निर्मल चॉदनी के सदृश है। ऑख नीलमकल के पत्ते की द्रोणी के मध्य भाग में बहती हुई चचल एवम् अधिक मीठी दुग्ध धारा जैसी है।"[१५७]

सीता के समान ही राम के सौन्दर्य वर्णन में भी कवि ने परम्परा-प्राप्त

प्राकृतिक उपमानों को ग्रहण किया है। राम खिले हुए सुन्दर नीलकमल के पत्तों के समूह समान श्यामवर्ण है, शकर के शेखर पर विराजमान चन्द्रमा के समान कोमल शरीर वाले हैं तथा कामदेव के समान सुन्दर हैं।[१५८] वे अपनी सुन्दरता से सुन्दरियों के नेत्रकमलों को प्रफुल्लित करने वाले हैं।[१५६]

राम एव लक्ष्मण की समरूपता एव साहचर्य के वर्णन में जयदेव की प्राकृतिक उपमानों के सञ्चय में मौलिक उद्‌भावना चित्तानुरञ्जक है। नील कमल पत्र के समान स्वच्छ कान्ति वाले राम के समीप सुवर्ण के सदृश पीतवर्ण लक्ष्मण ऐसे सुशोभित हो रहे हैं जैसे सुन्दरी के लोचन के समीप कान के अग्रभाग में पहना गया चम्पा के पुष्पों का गुच्छा हो।[१६०] अत्यन्त सुन्दर स्वाभाविक सौहार्द की शोभा से सम्पन्न राम-लक्ष्मण कौस्तुभ मणि एव चन्द्रमा की तरह विलक्षण आत्मीयता से युक्त हैं।[१६१]

जनकपुरी में सीता-स्वयवर के प्रसग में जनक एव दशरथ के लिए कवि ने विशेष अभिप्राय को अभिव्यञ्जित करने के लिए उपमानों की सयोजना की है। एतदर्थ जनक एव विश्वामित्र के वार्तालाप की ये पक्तियॉ उद्धरणीय हैं-
''जनक–जिस तरह छोटा तालाब समुद्र के विस्तार का अनुभव नहीं कर सकता, उसी तरह दशरथ की महिमा की विशालता का अनुभव करने में मैं कौन हूँ?

विश्वामित्र –''विनय के कारण मीठे स्वभाव वाले व्यक्तियों के अपनी महिमा को कम बतलाने वाले सत्य से रहित वचन भी वस्तुत शोभित ही होते हैं। अथवा यह उचित ही है, क्योंकि उन राजा दशरथ ने चन्द्र के समान सुन्दर शरीर वाले राम को और आपने भी कुमुदिनी की तरह लोगों के नेत्रों को आकृष्ट करने वाली सीता को पैदा किया है।''[१६२]

इस सवाद द्वारा कवि कहना चाहता है कि चन्द्र के समान अभिराम राम के उत्पादक होने से दशरथ सागर के समान हैं तथा कुमुदिनी के समान सीता के उत्पादक होने से जनक सरोवर के समान हैं। एव जिस प्रकार चन्द्रमा और कुमुदिनी का सम्बन्ध प्रकृतिसिद्ध है उसी प्रकार राम एव सीता का सम्बन्ध स्वाभाविक एव शाश्वतिक है।

रूपक अलकार का आश्रय ले कवि ने राजहस एव श्रेष्ठ राजाओं की एकरूपता अनायास ही सिद्ध कर दी है। -''राजहस (श्रेष्ठ राजा लोग) वारागनाओं के हाथों से डुलाए गए चामररूप तरगों तथा श्वेत छत्ररूप कमलों

वाले राज्यरूप सरोवर में अनुरागपूर्वक क्रीडा करते हैं और योगिराज रूप चन्द्र से सुगम मार्ग में विहार भी करते हैं।"[१६३]

रामचन्द्र की वानरसेना के विजयप्रदर्शन हेतु नाटककार जयदेव ने तदनुकूल ही अलौकिक उपमान की योजना की है- "रामचन्द्र की आगे बढने वाली, खूब पके हुए किम्पाक फल की तरह लाल मुँह वाली, वानर-वीरों की सेना राक्षस-वीरों के समूह को, उसी तरह पूर्ण रूप से पी रही है जिस प्रकार सूर्य की प्रात कालीन प्रभा अन्धकार को पी जाती है।[१६४]

इस प्रकार नाटककार जयदेव ने अपने नाटक में प्रकृति के विविध अगों को उपमान के रूप में जैसे समायोजित किया है उसमें मुख्यत उन्होंने परम्परासिद्ध प्राकृतिक उपकरणों को नारी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हेतु वैशिष्ट्यपूर्वक अपनाया है। इस दृष्टि से सीता के नैसर्गिक सौन्दर्य की प्रस्तुति में कवि सफल रहा है। पुरुष के व्यक्तित्व को उभारने में भी कवि ने यथोचित उपमानों का प्रयोग किया है। अन्य स्थलों पर दृश्यों को अधिक प्रासंगिक बनाने के लिए कवि ने प्राकृतिक उपमानों का जो प्रयोग किया है वह सराहनीय है।

कवि महादेव ने अद्भुत-दर्पण में एक दो-स्थलों पर प्राकृतिक उपमानों का समुचित सयोजन किया है। सीता के चरणों के लिए कमल[१६५] तथा मुख के लिए अम्भोज[१६६] का प्रयोग हुआ है। राम के लिए गरुड एव हाथी तथा रावण के लिए सर्पशिशु एव मार्जारशिशु सुन्दर उपमान हैं। लक्ष्मण कहते हैं-

क्रीडितुमिच्छत्यार्यः कियच्चिरं पंक्तिकण्ठेन।
गरुड इव सर्पशिशुना गज इव मार्जारपोतेन।।[१६७]

पौलस्त्यवध में प्रकृति का उपमान के रूप में उल्लेख कुछ ही स्थलों पर द्रष्टव्य है। लक्ष्मणसूरि ने सीता एव राम के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हेतु नेत्र, मुख तथा कोमल अगों आदि के लिए क्रमश कमल,[१६८] चन्द्रमा[१६९] तथा शिरीष पुष्प[१७०] को उपमान बनाया है। रूपक का एक उद्धरण देखिए- जहाँ कवि ने गोदावरी के अगों के सादृश्य से सीता को राम का स्मरण करा दिया है। राम गोदावरी से प्रश्न पूछते हैं- "तुम्हारे भँवर के समान नाभि वाली, पुलिन के समान सुन्दर नितम्ब वाली, कमल के समान नेत्र वाली, नवफेन के समान हास वाली तुम्हारी क्रीडा सखी सीता कहाँ गयी।"[१७१] राम के

वनवास-याचन रूप अपराध करके पति के प्राणों का हरण करने वाली कैकेयी के लिए 'उरगी'[१७२] उपमान सहज ही विषय का बोध कराने में सहायक है।

प्रसन्नहनुमन्नाटक में प्रकृति का उपमान के रूप में वर्णन अनेक स्थानों पर हुआ है। राम एव सीता के अद्वितीय व्यक्तित्व की प्रस्तुति में कवि ने प्रकृति के उपादानों को उपमान के रूप में सगृहीत किया है। श्री राम के चरण प्रफुल्ल कमल के समान तथा कुल रूपी सागर की लहरों को वृद्धि प्रदान करने वाले चन्द्रमा के समान हैं, उनका सिर शरद्-कालीन चन्द्रमा के समान विमल छत्र के योग्य है।[१७३] सीता का मुख चन्द्रमा के समान, नयन कमल के समान, गति हस के समान तथा हॅसी काश पुष्प के समान है। जैसा कि स्वय कवि ने सीता के विरह में व्याकुल श्रीराम के मुख से कहलाया है "शरद् काल आ गया है, लेकिन कमलनेत्रा सीता नहीं आयी। चन्द्रमा उद्दीप्त हो रहा है, लेकिन चन्द्रमुखी नहीं है। ये हस घूम रहे हैं, परन्तु हसगामिनी कहीं नहीं है। काश का पुष्प विकसित हो रहा है, पर काशहासा नहीं है।"[१७४]

नाटककार ने नाटक में हनुमान् के चरित्र को उभारने के लिए प्राकृतिक उपमान उद्धृत किए हैं। कवि ने हनुमान् जी को साक्षात् मरुत् के समान कहकर जहॉ उनका पवनपुत्रत्व सिद्ध कर दिया है[१७५] वहीं उनकी वीरता एव वेग की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें वृक्षों को उखाड फेंकने वाले झझावात के समान कहा है।[१७६]

नारी-सौन्दर्य के वैशिष्ट्य का चित्राकन करने के लिए कवि की दृष्टि प्रकृति की ओर विशेष रूप से अभिमुख हुई है। नाटक के प्रारम्भ में ही हनुमान् के पिता केसरी अपने विजय-वर्णन के व्याज से पत्नी अञ्जना के प्रति अपने प्रेम को दर्शाते हुए उनके सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। यथा- "हे मुग्धा! मैंने तुम्हारे स्तनों के भार का ध्यान करके हाथी के कुभस्थल पर प्रहार नहीं किया। तुम्हारी कोमल जघाओं से साम्य रखने के कारण उसकी सूॅड पर आक्रमण नहीं किया । परन्तु हे सुन्दर उदर वाली! आकाश के समान (अतिसूक्ष्म) होने के कारण तुम्हारी कमर को दूर से ही देखकर वह हाथी सिह की आशका से भाग गया, मेरे प्रभाव से नहीं गया। तिरस्कार करने वाली प्रिये! मेरी अभिलाषा तुम्हारे कुभ केश समान स्तनों तथा कदली स्तम्भ के समान जघाओं पर अत्यधिक प्रेम के साथ नख रूपी आयुधों से प्रहार करने की शीघ्रता कर रही है।"[१७७]

इसी प्रकार विद्याधर प्राणेश्वरी विद्याधरी के सौन्दर्य को अपूर्व कल्पनाओं

के साथ प्रकट करता है। प्रात काल की हृदयस्पर्शी आभा को चित्रित करता हुआ वह कहता है -"पूर्व दिशा में बिम्बाफल के समान लाल तुम्हारे अधरों की कान्ति फल रही हैं, तुम्हारे मुख की शोभा ने इस मलिन चन्द्रमा को जीत लिया है, तारामण्डल रति में टूटते हुए मोतियों की आभा को प्राप्त कर रहा है, पिक मधुर स्वर की सरसता की शिक्षा प्राप्त करती है।"[१७८]

सुग्रीव अपनी प्रिया रूमा के विषय में अपने प्रिय मित्र हनुमान् से कहते हैं कि मेरी प्रिया रूमा मेरे हृदयरूपी आकाश में तारा रूप है तथा तारुण्य रूपी समुद्र को पार करने के लिए नौका रूप है, उसकी हॅसी मल्लीपुष्प के समान है।[१७६]

यहॉ पर कवि ने नारी के अगों के सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए तदनुकूल विविध प्राकृतिक उपमानों का सयोजन किया है। यथा- स्तनों की कठोरता, जघाओं की पुष्टता, कटि की कृशता, मुख की सुन्दरता, अधरों की लालिमा तथा मुस्कुराहट आदि को अभिव्यक्त करने के लिए क्रमश गज-कुम्भ-स्थल, गज-शुण्ड, सिह (कटि), चन्द्रमा, पिक (स्वर) बिम्बाफल, मल्ली कुसुम आदि।

रावण के द्वारा तिरस्कृत तथा राम की शरण में जाने का इच्छुक विभीषण अपने भाई को मूर्ख के समान मानता हुआ कहता है-"मूर्ख का सग सदा कलह के लिये होता है। मूर्ख का सग सदा दु ख के लिये होता है। जिस प्रकार नवाकुर के लिये बजर भूमि निरर्थक होती है उसी प्रकार दुष्ट को दिया गया उपदेश भी कार्य की पूर्णता के लिये नहीं होता।"[१८०] यहॉ शठ पुरुष के लिये बजर भूमि उपमान बहुत ही उपयुक्त है।

प्रकृति का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण यही है कि दर्शक उसे जिस रूप में देखता है वह उन्हीं गुणों में सिमट जाती है। यही कारण है कि कवि अपनी कल्पनाओं का साक्षात्कार प्राय प्रकृति में ही करते हैं। यद्यपि प्रकृति और नानव के एतादृश सयोग में प्रकृति का स्थान गौण हो जाता है तथापि काव्य-प्रणेता का मानवीय सौन्दर्य को अतिरजित करने वाले प्राकृतिक उपादानों के प्रयोग से प्रकृति के प्रति उत्साह अत्यन्त आकर्षक एव मनो मुग्धकारी रूप में प्रकट होता है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वन, पर्वत, लता, वृक्ष, भ्रमर आदि हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। इसी कारण किसी वस्तु को सजीव सरस बिम्ब देने में ये हमारी दृष्टि से ओझल नहीं हो पाते है। किसी वस्तु का चित्रण करते समय सादृश्य स्थापना हेतु प्रकृति ही हमारी सहायिका होती

है। मानवीय सौन्दर्य की पूर्ण एव प्रभावकारी व्यजना के लिये कवि को प्रकृति से सब कुछ मिल जाता है। अपनी प्रतिभा के बल पर कुछ कवि नये उपमानों को आविष्कृत भी करते हैं या फिर प्रसिद्ध उपमानों को नवीन ढग से प्रस्तुत करते हैं। रामकथाश्रित नाटकों के रचयिताओं ने यद्यपि परम्पराबद्ध प्राकृतिक उपमानों का ही चित्रण किया है तो भी अपनी उर्वरा कल्पना शक्ति के आधार पर उन्हें नया परिवेश, नई दिशा एव नई दृष्टि देने में वे सफल हुए। अपेक्षा दृष्टि से यदि विचार किया जाये तो जयदेव एव शक्तिभद्र के प्राकृतिक उपमान अधिक सजीव एव सरस प्रतीत होते हैं। आधुनिक कवियों में प्रसन्नहनुमन्नाटक के रचियता ने नये प्राकृतिक उपमानों को प्रस्तुत किया है जो रमणीय एव प्रभावोत्पादक हैं। आलोच्य सभी कवियों का औपमायिक प्रकृति-चित्रण सहज एव स्वाभाविक है जिसमें न तो कहीं रस में व्यवधान उत्पन्न होता है और न ही कविता अलकार-भाराक्रान्ता लक्षित होती है। कहीं भी उन्होंने अलंकारों की छटा या कलागत चमत्कार उत्पन्न करने के लिये प्रकृति का दुरुपयोग नहीं किया।

सन्दर्भ

१ का प्र, १०/८७
२ प्रकृति और काव्य (सस्कृत), पृ ३८
३ द्र, अभि, २/७-८, १३
४ द्र, वही, अक २, पृ ३२
५ द्र, वही, ६/२४
६ द्र वही, १/२४
७ द्र, वही, ४/१८
८ द्र, वही, ५/७ तथा पृ ६४
९ द्र, वही, ६/२
१० द्र वही, ६/१४
११ द्र, वही, ६/१०
१२ द्र, वही ६/११
१३ द्र, प्रति, १/२५

१४ द्र , वही, २/१
१५ द्र , वही, २/७
१६ द्र , वही, ३/१६
१७ द्र , वही, ७/१०
१८ द्र , वही, ७/१३-१४
१६ द्र , वही, १/४
२० द्र , वही, अक ७, पृ १६८
२१ द्र , वही, ७/६
२२ द्र , वही, ४/१६
२३ द्र , वही, ४/१३
२४ द्र , वही, १/३०
२५ द्र , वही, ३/१०
२६ कुन्द , १/२
२७ वही, ३/१०
२८ द्र , वही, ४/१६
२६ द्र , वही ४/२३
३० द्र वही, ५/६
३१ वही, (सत्यप्रकाशन) पचम अक, पृ १३२
३२ नरपतिरधिकप्रवृत्ततेजा गुणनिहितै सचिवैर्निवारणीय ।
भुवनमभिपतन् सहस्ररश्मि-जलगुरुभिर्व्ययनीयते हि मेघै ।।वही, ५/७
३३ द्र , वही, ५/८
३४ द्र , वही, अक ५, पृ १३६
३५ द्र , वही, ६/१५
३६ परिपूर्णे तत काले द्यौरिवेन्दुदिवाकरौ।
सीतापि जनयामास सा यमौ तनयावुभौ।। वही, ६/१७
३७ द्र , वही, ६/३७
३८ . शरच्चन्द्रनिर्मलस्येक्ष्वाकुकुलस्य वही, अक १, पृ॰ ७
३६ एषा विदेहराजतनया निदाघमासलतेव परिक्षामापाण्डुरयाऽवस्थया। वही, अक २, पृष्ठ ४६

४० त्वमसितपक्षचन्द्रलेखेव दिने दिने परिहीयसे। वही, अक २, पृ ५०

४१ एष मन्दरमहीधरसमानधैर्यो । वही, अक ३, पृ ६०

४२ को नु खल्वेष सजलजलधरस्तनितगम्भीरेण स्वरविशेषेण । वही, अक ३, पृ ७४

४३ नान्यत्र राघवाद्वशात्प्रसूतिरनयो समा।
दुग्धार्णवादृते जन्म चन्द्रकौस्तुभयो कुत ।। म च , १/२३

४४ वही, २/३१

४५ वही, ५/२१

४६ वही, ६/३६

४७ यद्दर्शनात्किमप्येव द्रवीभवति मे मन ।
राकासुधाकारलोकादिन्दुकान्तोपलो यथा।। वही, ७/३४

४८ वही, ६/५३

४६ शरासनस्य टकारात्सौमित्रे केवल किल।
रक्षसा प्रलय सिहगर्जनाद्दन्तिना यथा ।। वही, ७/२०

५० द्र , वही २/२१

५१ द्र. वही, ६/६

५२ वहीं, ७/१७

५३ द्र., वही, अक २, पृ ७६

५४ द्र , वही, अक २, पृ ८१

५५ द्र , वहीं, ३/१४

५६ द्र , वही, ३/४८

५७ वही, ६/१

५८ वही, ६/८

५६ वही, ६/२६

६० वही, ६/५५, पृ २६०

६१. द्र , वहीं, १/३७ तथा पृ ३७

६२ वही, ५/४४

६३ द्र ,उ च , अक १, पृ ५३

६४ नवकुवलयस्निग्धैरगैर्ददन्नयनोत्सवम्।
सततमपि न स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव स ।। वही ३/२२

६५ वही, अक ३, पृ २१०

६६ वही, अक ४, पृ ३३२

६७ वही, १/२०

६८ द्र , वहीं, १/३६, ३८

६९ वही, ३/११

७० वाष्पवर्षेण नीत वो जगन्मगलमाननम्।
अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम्।। वही, ६/२६

७१ वहीं, ३/५

७२ अपरिस्फुटनिक्वाणे, कुतस्त्येऽपि त्वमीदृशी।
स्तनयित्नोर्मयूरीव, चकितोत्कण्ठित स्थिता।। वही, ३/७

७३ वही, ३/४२

७४ द्र , वही, ४/१९

७५ द्र , वही, अक ४, पृ ३४४

७६ वहीं ६/१३

७७ द्र , वही, ६/१७

७८ वही, ६/२५

७९ वही, ५/८

८० दिनकरकुलचन्द्र! चन्द्रकेतो! सरभसमेहि दृढ परिष्वजस्व।
तुहिनशकलशीततलैस्तवाड्गै , शममुपयातु ममापि चित्तदाह ।। वही, ६/८

८१ वही, ५/२६

८२ वही, ४/२

८३ द्र , वही, ४/१०

८४ एक एव भवेदगी शृगारो वीर एव वा। सा द , ६/१०

८५ उ रा , ३/४७

८६ द्र वही ३/४७ पर टिप्पणी, पृ २६१
८७ वही, ६/१२
८८ द्र , अ रा ३/२१
८६ द्र , वही, अक ३, पृ १८४
६० वही, ५/३५
६१ वही, ६/६
६२ वहीं, ७/८१-८२
६३ द्र , वही, अक १, पृ ४३
६४ वही, अक १, पृ २४-२५
६५ वही, १/३५
६६ वहीं, १/४८
६७ अ शा , २/७
६८ अ रा , ४/२८
६६ द्र , आ चू ६/३१
१०० द्र , वही, अक ६, पृ ३८६
१०१ वही, ६/३५
१०२ द्र , वही, १/१
१०३ द्र , वही, ६/६
१०४ द्र , वही, ६/१७
१०५ द्र , वही, ३/२४
१०६ शरन्नीहाराशुच्छवि चतुरतारभ्रुवदनम्। वही, ५/१४
१०७ कुवलयपलाशाक्षि । वही, ६/८
१०८ द्र , वही, १/२२
१०६ द्र , वही, ६/७
११० द्र , वही, ३/३८
१११ द्र , वही, ४/५
११२ द्र , वही, ५/३०
११३ द्र , हनु ना , ३/२३

११४ द्र , वही, १४/५२

११५ वही, १४/७७-७८, ८४

११६ वही, ३/९

११७ वही, १२/१६-१७

११८ द्र , वही, ३/१२

११९ द्र , वही, ३/६

१२० द्र , वही, ३/२६

१२१ द्र , वही, ५/३

१२२ द्र , वही, २/२५

१२३ वही, २/२४

१२४ विदेहदुहितुर्दृष्टिर्दशग्रीवरिपौ बभौ।
सुनीलेव मनोरम्ये तमाले मधुपागना।। वही, ११/१२

१२५ वही, ११/१६

१२६ द्र , वही, ६/२८

१२७ द्र , वही, १/२८

१२८ वही, १/३०

१२९ वही, १/३७

१३० द्र , वही, १०/३

१३१ द्र , वही, ११/२३

१३२ द्र , वही, ११/२६

१३३ द्र , वही, ११/३

१३४ द्र , बा रा , ३/१६

१३५ द्र , वही, ९/१३

१३६ द्र , वही, ९/१८

१३७ द्र , वही, अक ९, पृ ३०९

१३८ वही, १/४२

१३९ वही, १०/३

१४० बा रा , अक ८, पृ २८७

१४१ वही, अक १०, पृ ३४८

१४२ वही, अक १०, पृ ३५०

१४३ वही, ६/८

१४४ वही, १/२४

१४५ प्र रा , १/४

१४६ वही, १/६

१४७ वही, १/७

१४८ वही, १/१३

१४९ वही, १/१५

१५० वही, २/८

१५१ वही, २/९

१५२ वही, २/१०

१५३ वही, २/१३

१५४ वही, २/१६

१५५ वही, २/१९

१५६ वही, २/२८

१५७ वही २/२९

१५८ द्र , वही, २/२१

१५९ द्र , वही, ४/४८

१६० द्र , वही, ३/१८

१६१ द्र , वही ३/१९

१६२ वही, अक ३ पृष्ठ १६०

१६३ वाराङ्गनाकरतरङ्गितचामरोर्मिश्वेतातपत्रशतपत्त्रिणि राजहसा ।
क्रीडन्ति राज्यरससि स्वरस च धीरा योगीन्द्रचन्द्रसुगमे पथि सञ्चरन्ति।।
वही, ३/११

१६४ वही, ७/२१

१६५ अ द , अक ६, पृ ७३

१६६ वही, अक ७, पृ ९८

१६७ वही, ८/३८

१६८ द्र , पौ व ३/१०, ४/३२

१६९ द्र , वही, ४/३२

१७० द्र , वही, ५/२७

१७१ वही, ३/१४

१७२ वही, १/१६

१७३ द्र , प्र हनु १/४३-४४

१७४ शरतकाल प्राप्तो न खलु शरदम्भोजनयना।
समुद्दीप्तश्चन्द्र परमिह न मे चन्द्रवदना।।
चरन्त्येते हसा क्वचिदपि न मे हसगमना।।
स्फुट काश पुष्प न बत दयिताकाशहसितम्।। वही, २/६४

१७५ द्र , वही, १/३७

१७६ द्र , वही, २/१५६

१७७ वही, १/२२-२३

१७८ वही, १/२५

१७९ वही, १/४०-४१

१८० वही, ४/२२३

षष्ठ अध्याय

रामाश्रित नाटकों में प्रकृति में मानवीय भावों का चित्रण

आदिकाल से ही मानव प्रकृति के सान्निध्य में रहा है। प्रकृति की सुरम्य क्रोड में उसने सदा सुख की अनुभूति की है। अपने सभी क्रिया-कलापों में मानव ने प्रकृति को अपनी सहचरी के रूप में पाया है। अत उसने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। प्राचीन वैदिक ऋषियों-शुन शेप, कुत्स, दीर्घतमा, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज आदि ने वरुण, सूर्य, अग्नि, उषा, सविता, पर्जन्य, पूषा आदि का जिस रूप में चित्रण किया है, उसमें उन्होंने इन लोकोत्तर प्राकृतिक उपादानों के देवत्व के साथ-साथ मानवीय भावों से भी अनुप्राणित किया है।[1] यहाँ इन देवताओं को मानव के समान सम्बोधित किया गया है तथा आमन्त्रण-निमन्त्रण दिया गया है। मानव के समान ही इनमें सम्बन्धों को प्रदर्शित किया गया है। यथा-ऋषि विश्वामित्र प्रात कालीन उषा को सूर्य की पत्नी के रूप में देखते हैं।[2]

परवर्त्ती सम्पूर्ण सस्कृत वाङ्मय में कवियों ने प्रकृति को चेतनता प्रदान की है, उसमें मानवीय भावों को भरा है। वाल्मीकि रामायण के सभी महत्त्वपूर्ण पात्रों का प्रकृति के साथ पारिवारिक सम्बन्ध है। राम सूर्यवश में उत्पन्न हैं,[3] लक्ष्मण शेषनाग के अवतार हैं,[4] सीता पृथ्वी-पुत्री हैं,[5] जनक सूर्य के शिष्य याज्ञवल्क्य के शिष्य हैं।[6] इसके अतिरिक्त पशु-पक्षी की योनि में उत्पन्न पात्रों की राम-कथा में विशेष भूमिका है। वानर जाति में उत्पन्न हनुमान्[7] एव सुग्रीव[8] क्रमश वायु एव सूर्य के पुत्र हैं, जाम्बवान् ऋक्षराज हैं[9] तथा जटायु गृध्रराज हैं।[10] ये सभी राम के हितैषी, मित्र, सेवक, भक्त तथा सहायक रूप में चित्रित हैं। समुद्र भी मानव के रूप में प्रकट देखा जाता है।[11] राम स्वय लक्ष्मण से पशु-पक्षियों में मानवीय-भावों की स्थिति के विषय में कहते हैं-

सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिण ।
शूरा· शरण्या सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि।।[12]

इस प्रकार वाल्मीकि ने रामकथा में पशु-पक्षियों को भी मानव के समान पात्रों के रूप में वर्णित किया है, उन्हें विशेष भूमिका दी है। ये सभी पात्र अपने विशिष्ट चरित्र द्वारा अपने अस्तित्त्व को सिद्ध करते हैं।

राम-कथा को उपजीव्य बनाकर लिखे गए नाटकों में प्रकृति में मानवीय भावों को वाल्मीकि-रामायण से भी अधिक समायोजित किया गया है। वरुण-अग्नि आदि देवता, वनदवेता, गगा-यमुना आदि नदी, समुद्र सभी में मानवोचित व्यवहार को देखा जाता है। राम-कथा भिन्न रचनाओं में 'अभिज्ञानशाकुन्तल' को उद्धृत किया जा सकता है जिसमें कालिदास ने शकुन्तला को प्रकृति-कन्या के रूप में चित्रित किया है। तपोवन के वृक्ष, लता, पशु-पक्षी उसके सगे-सम्बन्धी हैं।[१३]

आधुनिक हिन्दी आचार्यो एव कवियों ने भी प्रकृति को मानववत् आचरण करते देखा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल बडे प्रभावोत्पादक शब्दों में कहते हैं-"कौन कहता है सरिता में जीवन नहीं? मनुष्य अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के सहारे सुख की खोज में सरिता की भॉति बढता जाता है, जिसे वह जीवन तथा सस्कृति की प्रगति कहता है। सरिता गहराई खोजती है और शायद उसे ही वह सुख समझती है। मनुष्य और सरिता इसी तरह प्रगति करते जाते हैं, एक खोज, वही जीवन है- दोनों में है।"[१४] प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में प्रसिद्ध सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं- "प्रकृति को मैंने अपने से अलग सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है।"[१५]

कवि उपर्युक्त रूप में जब प्रकृति में मानवीय भावों, चेष्टाओं, व्यापारों का सम्पादन करता है तो वह प्रकृति का मानवीकरण कहलाता है। आलोच्य सस्कृत नाटकों में प्रकृति में मानवीय भावों एव सवेदनाओं का विवेचन इस प्रकार है-

अभिषेकनाटक में प्रकृति का मानवीकरण बहुत ही कम स्थलों पर हुआ है। प्रथम अक में बाली मरणासन्न अवस्था में कहता है- "ये गगा आदि महानदियॉ, ये उर्वशी आदि अप्सरायें मेरे पास आयी हैं। काल द्वारा भेजा गया वीरों को ढोने वाला यह सहस्र हसों से युक्त विमान मुझे लेने के लिए आया है।"[१६] द्वितीय अक में सीता की खोज में निकले वायुपुत्र हनुमान् पक्षिराज सम्पाति से सीता का वृत्तान्त प्राप्त कर लका जाते हैं।[१७] उपर्युक्त प्रसगों में गगा आदि महानदियों तथा पक्षिराज सम्पाति में मानवीय चेतना का सकेत किया गया है। चतुर्थ अक में राम जब समुद्र को बाणों से सुखाने

की चेतावनी देते हैं तो समुद्र के अधिष्ठाता वरुण देव स्वय मानव रूप में उपस्थित होते हैं तथा अपराध-बोध से ग्रस्त होकर राम की शरण में जाते हैं।[१८] इस प्रकार षष्ठ अक में अग्निदेव भी अग्नि में प्रविष्ट हुई जानकी को आगे कर श्रीराम के पास जाते हैं तथा जानकी की शुद्धता की पुष्टि करते हैं।

प्रतिमानाटक में मात्र तीन प्रसगों में प्रकृति में मानवीय भावनाओं का समावेश हुआ है। यथा द्वितीय अक में राम के वन चले जाने से सम्पूर्ण अयोध्या नगरी सूनी-सूनी हो गई है। राम के विवाह में हाथियों ने चारा खाना बन्द कर दिया है, घोडों की ऑखों में ऑसू भरे हैं और उन्होंने हिनहिनाना छोड दिया है।[१९] इस प्रकरण में हाथी, घोडों आदि पशुओं में राम के प्रति प्रेम-भाव दर्शाया गया है। पचम अक में पिता दशरथ के श्राद्ध के इच्छुक श्रीराम से जब ब्राह्मण वेशधारी रावण श्राद्धकर्म हेतु हिमालय पर्वत पर रहने वाले काञ्चनपार्श्व मृग को अपेक्षित बताता है तब राम सीता से कहते हैं - "सीते, अपने कृत्रिम पुत्र हिरण और वृक्षों से, विन्ध्यवन से, अपनी प्रिय सखियों और लताओं से तुम विदा ले लो, हम उन हिमालय के वनों में बसेंगे, जहॉ अहर्निश वनौषधियाँ चमकती रहती हैं।[२०] यहॉ वन में रहती हुई सीता का हिरण, वृक्ष, लताओं आदि के प्रति आत्मीय भाव है। षष्ठ अक में सीता का हरण करके जाते हुए रावण को ललकार कर 'मेरे यहॉ रहते कहॉ जाएगा"[२१] यह कहते हुए जटायु आकाश की ओर उड जाता है। रामायण में इस प्रसिद्ध रावण-जटायु ने युद्ध प्रसग में भास ने जटायु में पूर्णतः मानव के गुणों को भरा है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नाटककार भास ने प्रतिमानाटक के कुछ प्रसगों में प्रकृति में मानवीय प्रवृत्तियों का अनुबन्धन किया है।

महाकवि दिङ्नाग ने अपने नाटक कुन्दमाला में प्रकृति के विविध अगों में मानवीय मनोभावों एव प्रवृत्तियों का सफलतापूर्वक समायोजन किया है। कालिदास एव भवभूति के समान उनकी प्रकृति भी मानव के उदात्त गुणों से भरी पडी है। नाटक के ऐसे प्राय सभी प्रसगों का अवलोकन यहॉ अपेक्षित है यथा- प्रथम अक में लक्ष्मण सीता को वन में छोडने के लिये आया है। जैसे ही वे दोनों गगा के समीप पहुँचते हैं, वहॉ का वायु सीता जी की सेवा के लिए उपस्थित हो जाता है। लक्ष्मण सीता से निवेदन करता है- "कमलों के वन से मधु की गन्ध को लाकर अत्यन्त मधुर कलहसों की ध्वनि को

लाता हुआ, लहरों की शीतल बूदों को बिखेरता हुआ यह गगातट का वायु आपकी सेवा के लिए ही चल रहा है।"[२२]

सीता को वन में छोडकर जब लक्ष्मण अयोध्या लौटने लगते हैं, उस समय सीता सहज भव से रो पडती है। तब मानव से भी अधिक सहृदय वन के पशु-पक्षी भी रो उठते हैं। जिन्हें देखकर लक्ष्मण कहते हैं-

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति।
नृत्तं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं
तिर्यग्गता वरममी न परं मनुष्याः।।[२३]

अर्थात् यह हरिण घास खाना छोडकर रो रहे हैं, शोक में व्याकुल हस बहुत कूज कर रहे हैं, मोर भी देवी को देखकर नाचना छोड रहे हैं, पशु-पक्षी योनि में उत्पन्न हुए यह अच्छे हैं, परन्तु हम मनुष्य अच्छे नहीं हैं। मानवीय भावों से अनुप्राणित प्रकृति का यह अलौकिक दृश्य पढ-देखकर सहृदय रसिकजन भी रोए बिना नहीं रह सकता।

अयोध्या लौटने से पूर्व लक्ष्मण का भागीरथी गगा,[२४] वनदेवता,[२५] हिंसक जन्तु तथा हरिणियों[२६] के प्रति किया गया निवेदन मानवोचित भावों को ही अभिव्यक्त करता है। अन्तत वह कहता है- "सखी नदियों, लोकपाल स्वामियों, माता गगे, भाई पर्वतराजों, यह लक्ष्मण आपसे बार-बार प्रार्थना कर रहा है कि राजकुमारी की यत्नपूर्वक रक्षा करना, यह मैं अब जा रहा हूँ।"[२७]

लक्ष्मण के चले जाने पर निर्जन प्रदेश में अपने आपको पाकर सीता मूर्छित हो जाती है, जिसे गगा अपनी तरगों रूपी पॅखे से सचेत कर देती है। चेतनावस्था को प्राप्त सीता कहती है। -"क एष मा वीक्षते, न कोऽपि,- आज्ञप्तिकरलक्ष्मणविज्ञप्त्या अनुचरन्ती भगवती भागीरथी तरगैर्मामनुगृह्णाति।"[२८] इससे स्पष्ट है कि भगवती भागीरथी मानवीय भावनाओं से अनुप्राणित हैं, तभी तो महर्षि वाल्मीकि के साथ जाती हुई सीता हाथ जोडकर भागीरथी से निवेदन करती हैं- "भगवति भागीरथि, यदि मैं कुशलपूर्वक बालक उत्पन्न करूँगी तो प्रतिदिन कुन्द नामक फूलों की सुन्दर माला बनाकर आपको भेंट किया करूँगी।"[२९]

तृतीय अक के अन्त में अपराह्ण के वर्णन में छाया की पथिकों के रूप में कल्पना अन्यतम है-

"प्रविश्य तरुमूलानि नीत्वा माध्यन्दिनातपम्।
अध्वनीना इव च्छाया निर्गच्छन्ति शनै शनै ।।"[३०]

अर्थात् छाया पथिकों की भाँति पेड के नीचे आकर दोपहर की धूप बिताकर अब धीरे-धीरे बाहर जा रही है।

चतुर्थ अक का यह दृश्य भी प्रकृति के मानवीय भाव का ही अवबोधक है जिसमें कि बहुत समय तक साथ रहने के कारण सखी के स्नेह वाली वनदेवता ने स्मृति के रूप में चाँद सा सफेद और सुगन्धभरा अपना बढिया दुपट्टा ही सीता को दिया है जो राम की स्मृति में सखी के समान दु ख का साथी बन गया है। इस दुपट्टे का ओढना भी सीता को तरगों के साथ चलने वाली बावडी की दीर्घ वायु ने ही सिखलाया है।[३१]

नैमिषारण्य में हाथी भी बुद्धिमान् धार्मिकजनों की भाँति ही आचरण करते हैं। जैसा कि वे मुनियों के पुण्यमय मधुर साम की ध्वनि को बडे ध्यान से सुन रहे हैं तथा गण्डस्थल के मदजल को पीने में व्यस्त भौंरों को अपने कान हिलाकर इसलिये नहीं उडाते कि कहीं सामगान में विघ्न न हो जाए।[३२]

षष्ठ अक में महर्षि वाल्मीकि सीता से अपनी शुद्धि का प्रमाण देने के लिए कहते हैं। सीता अपनी चारित्रिक शुद्धि को दिखलाने के लिए जैसे ही लोकपालों, देवताओं, सिद्धों, गन्धर्वों, विद्याधरों, महर्षियों तथा सूर्य को सम्बोधित करती है, उसी क्षण सम्पूर्ण जड-चेतनमय जगत् अपने सभी कार्य छोडकर मानव के समान शान्त हो ध्यान में स्थित हो जाता है यथा- "समुद्र अपनी लहरों को रोककर शान्त हो गए हैं, प्रकृति से चचल वायु ने आकाश में चलना बन्द कर दिया है तथा हाथियों के समूह कानों को शान्त करके सीता के वचनों पर ध्यान दे रहे हैं।"[३३] सीता कहती है कि रघुनन्दन को छोडकर पतिव्रता से विरुद्ध भाव रखते हुए यदि मैंने किसी भी दूसरे पुरुष को देखा, उससे बात की अथवा हृदय से विचार किया तो दिव्य रूप धारण करने वाली महाप्रभावा पृथ्वी मेरे चित्त की शुद्धि को ससार के प्रति प्रकाशित करें।[३४] तभी आकाश के फटने के साथ पुष्प-वर्षा करती हुई एक जैसे उदात्त एव उज्ज्वल वेशवाली नारियों के साथ पृथ्वी प्रवेश करती है।[३५] पृथ्वी वस्तुत नारी रूप ही है, ऊपर उठे हुए विन्ध्य और कैलाश पर्वत उसके स्तन हैं, गगा जी हारलता है, चारों समुद्र रत्नों की मेखला है।[३६]

पृथ्वी सीता की पूर्ण चारित्रिक शुद्धता के विषय में सभी को सम्बोधित करते हुए कहती है-

"ऋषयो दानवाः सिद्धा यक्षगन्धर्वकिन्नराः
मानवा लोकपालाश्च भवन्त्ववहिताः क्षणम्।
रामं दाशरथिं मुक्त्वा न जातु पुरुषान्तरम्
मनसापि गता सीतेत्येवं विदितमस्तु वः।।[३७]

अर्थात् हे ऋषियों, दानवों, सिद्धों, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों! मनुष्यों तथा लोकपालों! आप लोग थोडी देर के लिए सावधान हो कर सुनें! दशरथ के पुत्र राम को छोडकर सीता ने मन से किसी दूसरे पुरुष का ध्यान नहीं किया है, यह आप सबको ज्ञात होना चाहिए। यहाँ पृथ्वी का एक नारी के रूप में प्रकट होकर सीता के पातिव्रत्य की श्रेष्ठता बताना प्रकृति पर मनुष्यत्व का ही आरोपण है।

नाटक के अन्त में कुश के राज्याभिषेक के समय इन्द्र, गगा आदि भी मानवोचित क्रियाएँ करते हैं। इस सन्दर्भ में लक्ष्मण द्वारा राम को कहे गए वचन द्रष्टव्य हैं- "हे आर्य! देखिए, यह भगवान् इन्द्र चन्द्रमा के समान शुभ्र छत्र को उठाए हैं। देवी जाह्नवी तथा इन्द्राणी बाल-चमरियों से बने दो चामर डुला रही हैं। प्रजाजन जल से भरे सुवर्ण-कलशों को उठाए खडे हैं। ऐसे महापुरुषों को सब सम्पत्तियाँ स्नेहवश मिल जाती है इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं है।"[३८]

महावीरचरित में प्रकृति का मानवीय रूप दृष्टिगत नहीं होता है। जटायु एव सम्पाति[३९] तथा समुद्र[४०] को वाल्मीकि रामायण के कथा-प्रसग के अनुरूप ही मानवीय गुणों के साथ प्रस्तुत किया गया है। सप्तम अक में लका एव अलका नारी को पात्र बनाया गया है।[४१]

उत्तररामचरित में प्रकृति पूर्णत. सजीव तथा चेतन है। वह नाटक के अन्य प्रमुख पात्रों राम, सीता आदि के समान अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। नाटक के कथा-प्रवाह में प्राकृतिक पात्र अपनी स्वाभाविक एव प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह करते दृष्टिगत होते हैं। इस विषय में डा. अयोध्या प्रसाद सिह की ये पक्तियाँ उद्धरणीय हैं- "निर्वासिता सीता की रक्षा करने वाली प्रकृति की ही दो विराट् मूर्तियाँ हैं- गगा और पृथिवी। नाटकीय दृष्टि से विचार करने पर इन दोनों का व्यक्तित्व उतना ही दिव्य एव आकर्षक दीखता

है, जितना अरुन्धती और कौसल्या का। सातवें अक के अन्तर्नाटक में उक्त दोनों प्रकृति-देवियों ने मानव-हृदय को स्पर्श करने तथा भाव-विभोर बनाने में जैसी भूमिका निभाई है, वैसी कदाचित् किसी भी मानव पात्र से सम्भव नहीं होती। दूसरे अक में वन-श्री या वन देवता वासन्ती के रूप में सदेह प्रकट होती है। यह वासन्ती न केवल वन-सौन्दर्य की मूर्त कल्पना है, प्रत्युत आगे चलकर नाटकीय कार्य व्यापार के विकास में परम सहायक सिद्ध होती है। सबसे आश्चर्यजनक नाटकीय उपलब्धि तो वहाँ दीखती है, जहाँ तृतीय अक में सीता की सहचरी के रूप में तमसा एव मुरला की मानवीकृत मूर्तियों की सृष्टि शोकाकुल सीता को आश्वस्त करने के निमित्त हुई है।"[४२]

नाटककार भवभूति तपस्विनी आत्रेयी एव वनदेवता वासन्ती के प्रवेश के साथ द्वितीय अक का आरम्भ करते हैं। वासन्ती तापसी आत्रेयी से पूजा-सत्कारपूर्वक कहती है- "यह वन आपकी इच्छानुसार उपभोक्तव्य है। आज का दिन मेरे लिए बडा ही शुभ है क्योंकि आप पधारी हैं। सच तो यह है कि सत्पुरुषों का सम्बन्ध बडे पुण्यों से होता है। वृक्षों की छाया, शीतल एव निर्मल जल तथा तपस्या के लिए उपयुक्त भोजन, जो कुछ भी फल-मूल आदि हैं, वह भी आपके लिये अप्राप्य नहीं हैं।"[४३]

वासन्ती सीता की अति प्रिय एवं भावुक सखी है। आत्रेयी से सीता के विपत्तिग्रस्त होने तथा लोकापवाद से कलकित होने की बात सुनते ही वह "दुर्दैव का यह बडा भारी आघात हैं।" यह कहती हुई मूर्च्छित हो जाती है[४४] निर्दोष सीता के निर्वासन पर वह राम के प्रति क्रोध करती है, परन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि अश्वमेध यज्ञ में राम ने सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा को सहधर्मिणी बनाया है[४५] तो उसके हृदय में राम के प्रति आदर भाव हो जाता है। वह सहज ही कह उठती है- "वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी सुकुमार लोकोत्तर महापुरुषों के हृदयों को कौन समझ सकता है?" आगे भी वह एक हितकारिणी तथा लोकानुरूप आचरण करने वाली सखी के रूप में दृष्टिगोचर होती है।[४७]

तृतीय अक ╴ तमसा एव मुरला नामक दो नदियों का भावात्मक भूमिका के साथ अवतरण हुआ है। कवि भवभूति ने इन्हें दो सखियों के रूप में प्रस्तुत किया है जो नाटक के नायक राम एव नायिका सीता के हितार्थ प्रवृत्त हैं। मुरला भगवान् अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा के आदेश पर गोदावरी नदी से कहने जा रही है कि वह (गोदावरी) अपनी प्रिया सीता के वियोग

में दुर्बल रामभद्र की सेवा के प्रति सजग रहे, क्योंकि राम पञ्चवटी में सीता के साथ अपने स्वच्छन्द विहारों के साक्षी प्रदेशो को देखते हुए अनर्थ न कर बैठें। यहाँ गोदावरी के लिए आदेश है कि वह "पूर्व परिचित प्रदेशों को देखने से बार-बार मूर्च्छित रामभद्र को जल की छोटी-छोटी बूँदों से शीतल, मन्द-मन्द बहने वाले तथा कमल-केशर का गन्ध लेकर उडने से सुरभित अपनी लहरों के समीर से प्रकृतिस्थ रखे।"[४८] इस प्रसग से स्पष्ट है कि गोदावरी नदी भी तमसा, मुरला आदि के समान मानवीय भावों से समन्वित है।

भागीरथी गगा एव पृथ्वी दिव्य विभूतियाँ हैं जो सीता की सरक्षिका के रूप में चित्रित की गई है। गगा सीता के श्वसुर कुल की देवी है।[४९] लक्ष्मण द्वारा वाल्मीकि आश्रम के पास छोडी गई सीता प्रसववेदना से अत्यन्त दु खी होकर गगा-प्रवाह में कूद पडती है। वहीं वह दो बालकों को जन्म देती है। पृथ्वी एव गगा सीता पर अनुग्रह करके पाताल में पहुँचा देती है। माता का दूध छोड देने के बाद गगा देवी स्वय उन दोनों बालकों को महर्षि वाल्मीकि के पास छोड देती है[५०] गगा के प्रसाद से सीता सबके लिए अदर्शनीय हो गयी है।[५१]

पृथ्वी तो स्वय सीता की माता है।[५२] वह सीता के दु ख को देख स्वयं व्याकुल हो जाती है।[५३] वह इस बात से बहुत दु खी है कि राम ने सीता का परित्याग किया है। वह क्रोधपूर्वक गगा से कहती है- "भगवति गगे! क्या तुम्हारे रामभद्र के लिए यह सब कुछ उचित है? उस नासमझ राम ने बाल्यावस्था से पकडे हुए हाथ (पाणि-ग्रहण) को प्रमाण नहीं माना? और न मुझे, न जनक को, न अग्नि को, न सीता के पातिव्रत्य को ही प्रमाण माना। मुझसे उत्पन्न सीता की पवित्रता, तपस्वी जनक की अपत्यता, परम पवित्र अग्निदेव की विशुद्धि और सीता के सतीत्व- इन सबको राम ने प्रमाण नहीं माना। और तो और, उस सन्तान को भी, जिसके लिए ससार लालायित रहता है तुम्हारे राम ने चिन्ता न की? ओह उसकी क्षिप्रकारिता!"[५४]

इन कथा सन्दर्भो से स्पष्ट है कि कवि ने पृथिवी एव गगा को सवेदनशील एव भाव-प्रधान भूमिका के साथ नाटक में अवतरित किया है। दोनों का ही सीता के साथ पारिवारिक सम्बन्ध है। सीता के सन्तप्त एव व्याकुल हृदय को शमित करने में पृथिवी गगा की तदनुकूल प्रवृत्ति का विशेष योगदान है।

सीता एव राम का प्राकृतिक पदार्थो से आत्मिक सम्बन्ध है। तपोवन,

पञ्चवटी, गोदावरी नदी, प्रस्रवण गिरि आदि सीता के प्रिय बन्धु ही हैं जिन्हें देखकर आत्रेयी को सीता का स्मरण हो उठता है।[५५] पञ्चवटी में राम जब सीता के साथ रह रहे थे, उस समय वहॉ के वृक्ष एव मृग ही राम के बन्धु-बान्धव के समान थे।[५६] सीता का गजशावक के प्रति पुत्रवत् स्नेह है। राम स्वय सीता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं- "सुन्दरि! जो पहले अपने उगते हुए मृणाल किसलय के समान स्निग्ध दॉत से तुम्हारे कर्णमूल से लवली लता का पत्ता खींच लिया करता था, वही तुम्हारा पुत्र अब मद-मत्त मतगों का विजेता होकर युवावस्था का जो सुख होता है, उसका भाजन बन रहा है।[५७] यौवन को प्राप्त हुआ गजशावक मानवीय भावनाओं से अनुप्राणित है। जिस प्रकार मनुष्य युवावस्था में अपनी पत्नी के साथ भोजन-पानादि सुख का अनुभव करता है, उसी प्रकार युवा गज "पहले खेल ही खेल में मृणालों को उखाडकर उनके छोटे-छोटे ग्रास बनाकर अपनी प्रियतमा को खिलाता है। फिर विकसित कमलों से सुवासित सरोवर के जल को अपनी सूँड में भरकर उसे पिलाता है। तदनन्तर अपने सूँड से जल की फुहारें छोडकर उसे खूब स्नान कराता है और अन्त में बडे स्नेह से एक सीधी नाल वाले कमल-पत्र के छाते को उसके ऊपर तान देता है।"[५८]

सीता ने पञ्चवटी प्रदेश में रहते हुए एक मोर भी पाला था जो आज सीता को वहॉ न पाकर व्याकुल है। वासन्ती उस मोर को दिखलाते हुए राम से कहती है- "नये निकले हुए सुन्दर और चञ्चल पखों वाले जिस मयूर को आपकी प्रिय सीता ने प्रतिदिन पाला था, वह अब कदम्ब के वृक्ष पर अपनी पत्नी के साथ ऊँची कलगी से युक्त होकर कूक रहा है।" मोर को सम्बोधित करते हुए राम कहते हैं - "मयूर ! जब प्रियतमा कर-किसलयों द्वारा ताल देकर तुम्हें नचाया करती थी, तब तुम जैसे-जैसे चारों ओर गोलाकार घूमते थे, वैसे ही वैसे उसके नेत्र भी अन्दर ही अन्दर घूमते थे। भौंहों के इस निपुण नृत्य से उनकी बडी शोभा होती थी। आज उन बातों को यादकर प्रेमपूर्ण मन से पुत्र की भॉति मैं तुम्हारा स्मरण करता हूँ।"[६०] साथ ही सोचते हैं कि "प्रियतमा ने कुछ कलियों से युक्त जिस कदम्ब को जलादानादि से बडा किया था, उस पर बैठकर यह पहाडी मोर देवी को याद कर रहा है, क्योंकि इस पर यह स्वजन की भॉति आनन्द प्राप्त कर रहा है।"[६१]

वनदेवता वासन्ती राम का स्वागत करने के लिए वहॉ स्थित वृक्ष, वायु

एव पक्षियों को आदेश देती है- "क्योंकि भगवान् राम पुन स्वय इस वन में आये हैं, अत इनका स्वागत करने के लिये मकरन्द बरसाने वाले वृक्ष फल और फूलों से अर्ध्य दें। विकसित कमलों का सौरभ लेकर वन का समीर बहे और पक्षीगण सुरीले कण्ठ से निरन्तर कूजन करें।"[६२]

इस प्रकार उत्तररामचरित में प्रकृति मानवीय भावों से ओत-प्रोत हैं। उसका सम्पूर्ण व्यवहार मानव-भावनाओं के विकास, वृद्धि एव उद्दीपन में सहायक है। उन्होंने कोमल प्राकृतिक उपादानों के साथ-साथ कठोर तत्त्वों में भी मानवीय सवेदना को पूरी तरह भर दिया है। शून्य जनस्थान में भगवान् राम के विलाप से पत्थर भी पिघल उठे थे और वज्र का हृदय भी फट गया था।[६३] पत्थर एव वज्र को भी सवेदनशील बनाने वाले भवभूति के सम्बन्ध में गोवर्धनाचार्य ने ठीक ही कहा है-

"भवभूतेः सम्बन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा।।"[६४]

अनर्घराघव में प्रकृति का मानवीय रूप में वर्णन अनेक सन्दर्भो में देखा जा सकता है। कवि मुरारि पशु-पक्षी आदि को मानव के समान चिन्तनशील मानते हैं, तभी तो वे नाटक के प्रारम्भ में घोषणा करते हैं- "न्यायसगतमार्ग से चलने वालों को पशु-पक्षी भी सहायता प्रदान करते हैं और अपथप्रवृत्त जन को उनके सोदर भी छोड देते हैं।[६४] सिद्धाश्रम में मुनिजनों एव हरिणों की आत्मीयता देखिए- "अग्निगृह में बलि के लिए रखे गये तण्डुलों को हरिण खा जाते हैं, इस पर मुनिस्त्रियॉ खीझकर उनको डराने के लिए दण्ड उठाती हैं, परन्तु हरिण इतने हिले-मिले हैं कि वे उस दण्ड को सूँघने की इच्छा करने लगते हैं, जिसे देखकर मुनिगण उनके मृगों की ढिठाई पर हॅस देते हैं। दूसरी ओर ऑगन में वर्तमान यज्ञवेदी के समीपस्थ तृण नई व्याही हुई हरिणी चर रही है, उसके बच्चे जिन्हें तपस्वी कुमार अपने हाथों से नीवार खिलाते हैं, उन्हें वह स्वस्थ भाव से देख भी रही है।"[६५] श्रीराम के वियोगकालीन शोक में वृक्ष एव मयूर भी उनके साथ सहानुभूति रखते हैं। स्वय राम सीता को माल्यवान् पर्वत पर बिताए गए समय का स्मरण कर कहते हैं- "इस माल्यवान् नामक पर्वत के समीप में मेघ के उमडने पर वर्षा न भी हो पाई थी, फिर भी हमारी ऑखों में पानी की बाढ सी आ गई थी, धारा-वृष्टि होने पर भी मुझे उस दु ख की स्थिति में देखकर वृक्षों ने नवपल्लव नहीं प्रकट किए थे और मयूरों ने सगीत भी छोड दिया था।"[६६]

मध्याह्नकालीन सन्ध्या में नागकन्याएँ राजा दशरथ के गुणों का गान कर रही हैं। यह बात वैतालिक के मुख से सुनकर ऋषि विश्वामित्र स्वय राजा दशरथ से कहते हैं- "बेला-शैल के अक में वर्तमान नागललनायें तुम्हारे गुण गाती हैं, उनके सिर मन्द-मन्द डोल रहे हैं, जिन पर मणिगण का भार विद्यमान है, अधिक रोमाञ्च होने से उनके केंचुल में छिद्र हो आए हैं और उन्हीं मार्गो से उनके स्वेद प्रवाहित हो रहे हैं, दो जिह्वायें होने के कारण पूर्ण मुख से आवाज विषम भाव से निकल रही है, जो बडी सुन्दर लगती है।"[६७] अहेतुक विशुद्ध प्रेम को परिभाषित करने के माध्यम से कवि ने समुद्र, चन्द्र एव कुमुद के सम्बन्ध को बडी सुन्दर शब्द योजना के साथ प्रस्तुत किया है - "समुद्र जो चन्द्रमा के उदय में उदय और व्यसन में व्यसन प्राप्त करता है, इसका तो कारण स्पष्ट है कि वह चन्द्रमा का जनक है और जनक का यही स्वभाव होता है, परन्तु चन्द्रमा का अनुसरण कुमुद करता है इसमें कौन सा सम्बन्ध है। अत स्पष्ट है कि विशुद्ध विशुद्ध के साथ बिना किसी कारण ही प्रेम करते हैं। सागर पिता हैं और अमृत, कौस्तुभ और पारिजात सोदर हैं। इनके सम्बन्ध में क्या कहना है। उनके सम्बन्ध में कुछ भी अचिन्त्य है, परन्तु चन्द्रमा के लिए कुमुद कुछ अद्भुत तत्त्व हैं, जिससे वह 'कुमुद-बन्धु' ही पुकारा जाता है अमृतबन्धु या कौस्तभबन्धु नहीं।"[६८]

नदियों का नारीरूप में चित्रण बडा सजीव है। विन्ध्य वन में प्रवाहित नदियों को दिखाते हुए लक्ष्मण राम से कहते हैं- "विन्ध्यगिरिराज की कन्याओं का अन्त.पुर स्वरूप से नदियाँ बेंत के वृक्षों से होकर बहने वाले अपने जलों से गीत-नृत्य वाद्यरूप तौर्यत्रिक का अभ्यास सा कर रही हैं।"[७०]

समुद्र में कायर-पुरुष का भाव देखिए- "इस रावण को जिसकी नकल नहीं की जा सकती है, ऐसे कल्पतरु-प्रसूत भूषणों द्वारा इन्द्र सदा आराधित करता है, फिर इस गरीब समुद्र का क्या कहना है? यह समुद्र दण्ड की अधिकता के भय से किसी तरह मणियों को कन्धे पर लाकर रावण को सौंपता है और यह भी निवेदन कर जाता है कि इससे अधिक मणि मेरे आकर में है ही नहीं।"[७१] समुद्र नदियों का पति होता है, उसका अपनी गगा एव ताम्रपर्णी पत्नियों के प्रति व्यवहार-भेद द्रष्टव्य है- "समुद्र भद्रता के कारण ही गगा को बडी स्त्री समझकर पक्षपात करता है, नहीं तो समुद्र का सारा प्रेम ताम्रपर्णी पर ही प्रतीत हो रहा है, क्योंकि उसका सम्पूर्ण शरीर मौक्तिकाभरणों से लदा हुआ है।"[७२]

पर्वतों में पिता-पुत्र के सम्बन्ध को अभिव्यक्त करने के लिए कवि ने एक प्रसग की योजना कर डाली है। विभीषण श्रीराम से कहते हैं- "समुद्र में जो पर्वत डाले जाते थे, वे समुद्र का पानी अपनी कन्दराओं में भर लिया करते थे, फिर समुद्र की उदरदरी में जब उन्हें अपने मित्र मैनाक के दर्शन होते थे, तब उनके आनन्दाश्रु प्रवाहकृत झरनों के बहने से समुद्र भर जाता था।"[७३] इस पर राम कहते हैं-

"क्रौञ्चं विमुच्य पुत्रं च पितरं च हिमालयम्।
प्रविश्य जलधिं पक्षौ रक्षताऽनेन किं कृतम्।।"[७४]

यहॉ कवि ने एक कथा का सकेत किया है जिसके अनुसार एकबार इन्द्र ने सभी पर्वतों के पख काट डाले थे, इससे डरकर मैनाक समुद्र में जा छिपा था।[७५]

राम सुग्रीव को किष्किन्धा नगरी का राजा बना देते हैं। अपने पुत्र सुग्रीव के नवीन राज्य लाभ से प्रसन्न सूर्य पहले की अपेक्षा अधिक तपते हैं।[७६]

महाकवि शक्तिभद्र ने प्रकृति में मानवीय प्रवृत्तियों को देखा है। आश्चर्यचूडामणि के पचम अक में अशोकवाटिका में स्थित सीता को लुभाने के लिए रावण अनेक ससाधन जुटाता है। उसकी ओर से मेघ, वायु आदि को भी वातावरण को मधुर बनाने की आज्ञा दी जाती है। जैसे कि - "मेघ, परागमिश्रित मकरन्द रस से गीले पत्तों से युक्त फूलों की वर्षा करें, स्वर्ग के पवन स्वच्छ आकाश-गगा के तरग समूह को बढावें। वसन्त-प्रभृति सभी ऋतुयें एक ही समय पुष्पवाटिका की शोभा को धारण करें। चन्द्रमा भी अपनी किरणों को फैलाकर दिशाओं को आनन्दित करे।"[७७] सीता के विरह में व्याकुल राम सीता के पास सदेश भेजने की कामना से चकवी के द्वारा प्रदत्त सेवार से युक्त चक्रवाक, कमल के मकरन्द को पीते हुए भ्रमर और कमल के नालसमूह के रस को जानने वाले हस की सेवा करते हैं।[७८] इस प्रसग में चक्रवाक, भ्रमर और हस आदि प्राणियों में दूतत्व रूप मानवीय कर्म का आरोप हुआ है।

सप्तम अक में सीता की अग्नि परीक्षा के प्रसग में अग्नि में देवत्व के साथ-साथ मनुष्यत्व भी दर्शाया गया है। लक्ष्मण राम से कहते हैं कि सीता के "भगवन् अग्नि! तुम्हारे समक्ष सत्य की शपथ लूँगी .. " कहकर अग्नि में प्रविष्ट हो जाने पर स्तब्ध नेत्रों से चारों ओर देखते हुए हम लोगों के

समक्ष मानो बिजलियों के सगम को धारण करते हुए अग्निदेव दोषरहित आपकी देवी को आगे करके देवताओं के सम्मुख इस पृथिवी पर प्रकट हुए तथा तटवर्ती उद्यान के फूले हुये वृक्षों को छोडकर उडते हुए भौंरों के झुण्ड ने आकाश को मलिन कर दिया। अग्नि के आगे सीता के सिर पर कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा बहुत देर तक होकर सहसा बन्द हो गई।"[७८]

हनुमन्नाटक में प्रकृति में मानवीय भावों का सयोजन आस्वाद्य है। उदीयमान रक्तिमवर्ण चन्द्रमा का मानवीकरण दर्शनीय है- "मेरा उदय होने पर भी सुन्दरियों के हृदय में मान बैठा रहना चाहता था? धिक्कार है इसे। इस प्रकार क्रोध से लाल हुआ चन्द्रमा अपने उदीयमान 'कर' फैलाकर कुमुद-कोष से निकलती हुई भ्रमर-पक्तिरूपी तलवार को खींच रहा है।"[८०] रागानन्तर पाण्डुरता को प्राप्त हुए चन्द्रमा के विषय में कवि की कल्पना चातुरी अपूर्व है- "अस्त हुए सूर्य का लाल वेष धारण कर स्वच्छन्द विचरने वाले उस चन्द्रमा ने सूर्यप्रिया कमलिनी का आलिगन करने के लिए अपना 'कर' फैलाया, किन्तु उसका शीत स्पर्श पाकर उसके अपना मुख-कमल सकुचित कर लेने पर खिलती हुई अपनी प्रियाकुमुदिनी की हॅसी से बेचारा पीला पड गया।"[८१]

सूर्य पुत्रवधू सीता एव पुत्र राम का विवाहोत्सव देखने के लिए आकाश के मध्यभाग में उपस्थित हो जाते हैं।[८२] चित्रकूट में सीता जी भरत को सिर पर जटा बॉधे तथा शरीर पर भोज-पत्र लपेटे देखकर भावविह्वल हो रो पडती हैं। उस दृश्य को देख पक्षी भी विकल होकर वृक्षों से उड जाते हैं, जगली हिंसक पशु भी उन्मत्त हो जाते हैं और स्वय चित्रकूट भी झरने के रूप में ऑसू बहाने लगता है। सीतापहरण के पश्चात् राम मार्ग में आए सर्प से पूछते हैं कि क्या तुमने कोमलागी किसी स्त्री को इधर जाते हुए देखा है?[८३] सर्प मधुर वाणी में उत्तर देता है- "हॉ हॉ, चम्पा के समान वर्ण वाली, पीनोत्तुगस्तनशालिनी, कुकुम से लिप्त शरीरवाली आकाशगगा के समान शीतलागी, तारागणों के मध्य से चन्द्ररेखा के समान एक सुन्दरी इधर गई है।"[८४]

प्रकृति में मानवीय सद्भाव का एक चित्र देखिए-हनुमान् जी सीता का पता लगाने समुद्र को लॉघकर लकापुरी जा रहे हैं- "समुद्र से प्रेरणा पाकर हिमालय का पुत्र मैनाक जो पक्ष काटने वाले इन्द्र के भय से समुद्र में छिपा बैठा था, बोला- हनुमान् जी! आप बहुत दूर से आ रहे हैं, अत थोडी देर मेरे इस शिखर पर विश्राम कर मार्गश्रम दूर कीजिये। उसकी यह प्रार्थना

स्वीकार कर हनुमान् जी ने अपने पैर के अँगूठे से उसके शिखर का स्पर्श किया और प्रचण्डवेगजन्य वायु से दिशाओं को भरते आगे बढे।"[८५] लकापुरी मे हनुमान् जी की पूँछ में लगी आग को देखकर सीता जी अग्निदेव से हनुमान् जी को सन्तप्त न करने की प्रार्थना करती हैं। सीता जी की प्रार्थना सुन अग्निदेव शीतल हो जाते हैं।[८६] प्राकृतिक तत्त्व रावण के प्रभाव में देखे जाते हैं, तभी तो 'राक्षसराज रावण को साक्षात् युद्धभूमि में पहुँचा हुआ देख वायु धीरे-धीरे बहने लगा, सूर्य ने अपनी किरणों की तीक्ष्णता कम कर दी तथा नदियों ने उत्ताल तरगों को स्थापित कर दिया।"[८७]

बालरामायण में प्रकृति का मानवीय रूप दो-तीन प्रसगों में द्रष्टव्य है। राम के पीछे जब सीता भी वन की ओर जाने के लिए उद्यत होती है, उस समय क्रीडा-हस भी उनके पीछे चल पडता है जिसे पिजडे में बद कर दिया जाता है, पीछे आ रही हरिणी सखियों द्वारा पकड ली जाती है और गृह-शुक भी आवाज करता है जिस पर वैदेही ध्यान नहीं देती। पक्षियों की सीता के प्रति प्रीति देख उपस्थित जनसमूह की ऑखों से सहज ही अश्रुप्रवाह होने लगता है।[८८] रामभद्र के प्रवास के समय पुरवासियों की विकलता के साथ ही शुक का कूजन करना बडा मार्मिक है- "जोर से वक्षस्थल पर आघात करने से टूटकर गिर रही हार के मोतियों से ऑसू की बूँदों को सशय में डालते हुए पुर की स्त्रियों ने इस प्रकार रोना प्रारम्भ किया कि मूल से पखों को शिथिल कर एव ग्रीवा तथा चोंच की नोक झुकाकर रास्ते पर पिंजडों में रहने वाले शुक भी उत्कण्ठित होकर कूजने लगे।"[८६] लका से पुष्पक-विमान द्वारा लौटते हुए सीता एव राम को एक साथ देखकर वह मयूर प्रसन्न हो जाता है, जिसे सीताजी ने अपहरण से पूर्व पुत्र के समान पाला था। राम स्वय सीता से कहते हैं- "हे मानिनि! यह वही तुम्हारा कृतक पुत्र मयूर है जो पर्वत के तट से अभी ग्रीवा उठाकर स्नेहार्द्र दृष्टि से हम दोनों को देखकर अपनी प्रिया को आगे कर नृत्य कर रहा है।"[६०]

सायकाल का एक चित्र देखिए, जिसमें कवि ने दिन एव सन्ध्या को वर-वधू का रूप दे दिया है- "सूर्य दिन और सन्ध्यारूप वर तथा वधू के विवाहाग्नि का विभ्रम धारण कर रहे हैं तथा चमकता तारा-समूह लाजा का रूप धारण कर रहा है।"[६१]

सप्तम अक में राम के समुद्र पारकर लकापुरी जाने के समय समुद्र, गगा तथा यमुना को कवि ने मानवीय पात्र के रूप में उपस्थिति किया है। राम के क्रोध से भयापन्न समुद्र गगा एव यमुना के साथ जल से बाहर आता

है, उसके घावों पर पट्टी बॅधी है तथा औषधि लगी हुई है।[६२] गगा यमुना को सम्बोधित करते हुए कहती है- "हे सखि यमुने! समुद्र के जो अग वाराह भगवान् के खुरों से दलित नहीं हुए और जिन अगों की त्वचायें मन्दराचल की चिरकाल तक रगडों से भी नहीं टूटी और जिस पर वासुकि नाग के विष की ज्वाला भी शान्त हो गई, इस समुद्र के वे ही अग राम के बाणों से विद्ध और दग्ध हो गये।"[६३] समुद्र भी अपराधी सा होकर राम से क्षमा याचना करता है तथा गगा एव यमुना का परिचय देता है।[६४]

बालरामायण में राम एव रावण आदि पात्र अनेक प्राकृतिक पदार्थो को अपने सुहृद् अथवा सेवक की तरह सम्बोधित करते हैं।[६५]

महाकवि जयदेव ने अपने नाटक में प्राकृतिक पदार्थों में मानवीय चेतन भावों को भी बहुत ही सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। प्रसन्नराघवनाटक के प्रथम अक में प्रस्तावना के बाद दो भौंरे गुञ्जार करते हुए आते हैं। इनके नाम कलालाप एव मधुरप्रिय हैं। अपने गुरु याज्ञवल्क्य ऋषि की कृपा से अन्य प्राणियों के वचनों को जानने की सिद्धि को प्राप्त दाल्भ्यायन उन भौंरों की बातचीत सुनता है। वार्तालाप उद्धृत हैं-

मधुरप्रिय- मित्र कलालाप! कहॉ से आये हो?

कलालाप- मित्र मधुरप्रिय! निरन्तर खिले रहने वाले, शकर जी की मन्दाकिनी के कुमुदों के वन से आया हूॅ।

मधुरप्रिय- कोई नवीन वृत्तान्त हैं?

कलालाप- है। अभी कुछ ही पहले किसी समय बलि के पुत्र बाणासुर ने कमलों की माला से भगवान् शकर को पूजकर सविनय यह कहा कि हे भगवन्! पृथ्वी तल पर कैलास से भी अधिक वजनी कौन पदार्थ है? जिसके विषय में मेरा बाहुमण्डल सफलता को प्राप्त करें।

तब हसकर भगवान् शकर ने यह कहा- राजा जनक के पास रखा गया मेरा दिव्य धनुष कैलास पर्वत से भी अधिक भार वाला है, जिसके बाणाग्नि में तीनों नगर पतगों की अवस्था को प्राप्त हो गये।

यह सुनकर वह बाणासुर उस धनुष को देखने के लिये वहॉ गया। मैं यहॉ चला आया। अच्छा तुम कहॉ से आए हो?

मधुरप्रिय- मैं नन्दनवन से आया हूॅ और वहॉ मैंने रावण के सेवक का गर्जन सुना-अरे क्यों रे नन्दनवन के रखवालों! रावण के शकर की पूजा न करने के पहले ही नन्दनवन के सभी फूल तोड लिए गए? तदनन्तर उन

देवताओं के द्वारा वह निशाचर यह कहा गया- इसे क्षमा कर देना चाहिए। आज राजा जनक की कन्या के स्वयवर को देखने के लिए उत्कण्ठित सम्पूर्ण देवों के विमान को सजाने के लिए फूलों का पर्याप्त उपयोग हुआ है। उस बात को सुनकर "इसी समाचार को लकेश्वर रावण को निवेदन करता है, ऐसा कहकर वह निशाचर चल पडा। मैं भी उत्कण्ठावश यहॉ चला आया हूॅ।"[६६]

भौंरों के इस वार्तालाप से स्पष्ट है कि कविश्री जयदेव ने उन्हें मानवीय भावनाओं से अनुप्राणित किया है, तभी तो उन्होंने भौंरों को स्तुतिपाठकों की सज्ञा दी है-

मकरन्दरसस्यन्दसुन्दरोद्‌गारधारिणौ।
श्रवणानन्दिनावेतौ बन्दिनाविव राजतः।।[६७]

अर्थात् पुष्परस के प्रवाह के समान सुन्दर वचनों को धारण करने वाले, कानों को आनन्दित करने वाले ये दो भौंरे स्तुतिपाठकों के समान सुशोभित हो रहे हैं।

कवि ने सीता के मुख, नयन आदि की सुन्दरता के समक्ष कमल, चन्द्र आदि की सुन्दरता को न्यून माना है। वे कमल आदि को मानव की तरह ही सम्बोधित करते हुए कहते हैं- "हे कमल! तू व्यर्थ जी रहा है। हे चन्द्र! तुम इसके चरणों के नख के भी बराबर नहीं हो, तो मुख के बराबर कहॉ से हो सकते हो? मृगनयनी इस सुन्दरी के सामने हरिण क्या है? अत हे खञ्जन! तुम भी क्या लोगों का मनोरजन करने के लिये हो।"[६८]

गुनगुनाते हुए भौंरे तो रावण के पराक्रम का ही गुणगान कर रहे हैं। रावण स्वय कहता है-"मन्दोदरी के घुॅघराले और कोमल केशसमूह में मन्दार के पुष्पों की माला के रस को पीते हुए, वीणा की झकृति के समान मधुर आवाज को करते हुए भौंरे भी हमारे पराक्रम का वर्णन करते हैं।"[६६]

मिथिलानगरी के उद्यान में सीता चलती हुई एक लता की ओट में आ जाती है, सीता को न देख पा सकने के कारण राम लता को उपालम्भ देते हुए कहते है- "हे लते! अपने स्तनों से जीत ली गई है पुष्पगुच्छ की शोभा जिसकी ऐसी, अधर से तिरस्कृत कर दी गई है नवीन पत्रों की शोभा जिसकी ऐसी तुम चञ्चल नेत्रों वाली इस युवती को छिपाती हुई लज्जित नहीं हो रही हो?"

इसी बीच कदली-पत्रों के बीच से प्रकट हुई सीता को देखकर आनन्दित हुए राम कदली वृक्षों में सुवर्ण लता को आरोपित कर उसे लक्ष्य करके कहते हैं- "हे कोमल सुवर्णलते! निश्चय ही तुम चञ्चल तथा विशाल नेत्रों वाली सीता की जॉघों की सुन्दरता को प्राप्त करना चाहती हो। इसलिए इस कामुक स्त्री को काफी देर तक रोको, क्योंकि स्त्रियों की कलाएँ सीख ली जाने पर चिरस्थायिनी बन जाती हैं।"[१०१]

यहॉ कवि ने लताओं को एक युवती के रूप में प्रस्तुत किया है। इन लताओं के अगों की सुन्दरता सीता के अगों की सुन्दरता ने न्यून है।

पचम अक प्रकृति के मानवीकरण का उत्कृष्टतम रूप है। इस सम्पूर्ण अक में यमुना, गगा, सरयू, गोदावरी आदि नदियों, सागर तथा कलहस पक्षी ही पात्रों के रूप में आए हैं। उनके सवाद के द्वारा कवि ने राम-वनवास से लेकर राम-सुग्रीव-मित्रता तक की कथा को प्रस्तुत किया है। इस वार्तालाप में उनकी सभी क्रियाए मानवीय भावनाओं से अनुप्राणित हैं। जैसे कि गगा-यमुना के पास सरयू नदी आकर अभिवादन करती है। गगा आशीर्वाद देते हुए उसका हाथ पकडती है तथा पूछती है– सखि, तुम्हारा शरीर गरम क्यों हैं? सरयू इस प्रकार उत्तर देती है- "हे मात! अधिक गिरे हुए, सन्ताप के कारण गरम, किनारे-किनारे बहने वाले, अयोध्या की नगरनिवासिनी स्त्रियों के ऑसुओं से बढे हुए अपने शरीर को धारण करती हुई मैं सम्प्रति लज्जा का अनुभव कर रही हूँ तथा उसे छोड भी रही हूँ।"[१०२]

सरयू के मुख से दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर गगा दशरथ का अनेक रूप में स्मरण करती हुई मूर्च्छित हो जाती है तथा यमुना के द्वारा ऑचल से हवा करने पर चेतनता को प्राप्त करती है तथा सरयू से कहती है कि हे सखि, यह दु ख केवल तुम्हें ही नहीं है, अपितु यह सभी लोगों के लिये समान है।[१०३]

राम-वन-गमन के बाद की कथा को जानने के लिए सरयू अपने जल में स्थित कमलों के वन में निवास करने वाले एक कल-हस को भेजती है तथा वह कलहस भी मानव के समान सभी वृतान्त जानकर लौटता है तथा उन तीनों को सुनाता है। इसी प्रकार गोदावरी, सागर, तुगभद्रा का आगमन तथा बातचीत भी मानवीय मनोवृत्तियों से परिपूर्ण है।[१०४]

महाकवि जयदेव ने पशु-पक्षी आदि प्रकृति के तत्त्वों में प्रेमी-प्रेमिकाओं के भाव भी सयोजित किए हैं। यथा - रात्रि होने पर चकवा एक विरहीजन

के समान हो गया हैं। अपनी प्रिय चकवी के वियोग में उसका हृदय विदीर्ण हो गया है। उसके फटे हृदय का रक्त उसके पूरे शरीर पर फैल गया है। इसी कारण वह लाल-लाल दिखलाई पड रहा हैं।[१०५] एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है - "अपने नखों के अग्रभागों से खरोंचे गये और फडकने वाले कमल रूप कुचों से युक्त, अत्यन्त अनुरक्त भौंरों की कतारों से गुञ्जित, निर्दय चन्द्र के चचल चरणों के प्रहार से मूर्च्छित, अत्यन्त मलिन कमल-लता के पास जाता हुआ कलहस बार-बार उसे देख रहा है।"[१०६] यहॉ कवि ने कलहस को प्रेमी, कमललता को प्रेमिका, भौंरों को चाटुकारिता करने वाले कामुक तथा चन्द्रमा को खलनायक के रूप में चित्रित किया है।

सीता दर्शन के लिए व्याकुल श्रीराम के लिए गोदावरी नदी तो सेविका के रूप में ही उपस्थित होती है। नेपथ्य से राम को लक्ष्य करके कहे गये ये वचन उद्धरणीय हैं-

"तव सुभग उत्क्षिपन्ती तरंगसितचामरं रघुमृगाङ्क।
धवलकमलातपत्र धारयति गोदानदी स्वहस्तेन।।"[१०७]

अर्थात् हे दर्शनीय रघुकुलचन्द्र, आपके लिए तरगों रूप सफेद चामरों को डुलाती हुई गोदावरी नदी अपने हाथ से सफेद कमल रूप छत्र को धारण कर रही है।

पृथ्वी में नारी-भाव की अभिव्यजना अपूर्व है। ऐन्द्रजालिक द्वारा दिखलाए गए अशोक वाटिका के दृश्य में सीता की दयनीय दशा देखकर राम पृथ्वी से कहते हैं- "हे पृथिवि! तीनों लोकों की स्त्रियों में रत्नस्वरूप जिसको गर्भ में धारण करती हुई आप सार्थक होने के कारण ससार में रत्नगर्भा हुई, उसी सीता को अपनी गोद में लुढकी देखती हुई क्यों शीघ्र फट नहीं गयी? हे देवि! तुम सर्वसहा हो, तो सीता को जगाने के लिए सम्प्रति इस पृथिवी की प्रार्थना करूँ अथवा प्रार्थना करने से क्या लाभ? यह पृथिवी अपनी पुत्री सीता को भी नहीं जगायेगी, क्योंकि कठिन स्वभाव-वाली स्त्री को अपनी सन्तान के ऊपर भी करुणा कहॉ से हो सकती है?"[१०८]

इसी प्रसग में अशोक वृक्ष में प्रत्युपकार के भाव की कल्पना अनुपम है। राम अशोक वृक्ष को सम्बोधित करते हुए कहते हैं- "हे स्नेह करने वाले अशोक वृक्ष, इस अपनी सखी को नूतन पत्ररूप हाथों से गिरने वाले जलबिन्दुओं से सींच-सींच कर शीघ्र जगा दो। इस सीता के नेत्र-कमलों से

बहने वाले अतिशय घने अश्रु-प्रवाहों से तुम प्रतिदिन क्या सींची गयी क्यारी वाले नहीं हो जाते हो?"[१०९]

नाटक के अन्त में मानवीकरण का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है जहाँ चन्द्रमा, वसन्त-वायु तथा वरुण रावण के सेवक के रूप में आचरण कर रहे हैं- "चन्द्रमा अपनी कोमल किरणों के द्वारा चन्दन से अग में लेप कर रहा है। वसन्त-वायु धीरे-धीरे हिलने वाले पख को डुलाने में व्यस्त है और यह वरुण कमललता के पत्तों से शय्या बना रहे हैं। इस तरह काम से पीडित हृदय वाला रावण देवताओं के द्वारा सेवा किया जा रहा है।"[११०]

अद्भुतदर्पण में प्रकृति का मानवीय रूप मात्र त्रिकूट पर्वत के वर्णन में देखा जा सकता है - "यह लका का वरण जो त्रिकूट पर्वत के सिर पर रेखाकार दिखायी दे रहा है, यही मानो इसकी पगडी है। वानरों द्वारा परिधूत होकर दिशाहीन सागर की आकृति लेखामात्र शेष रह गयी है। यह वानरों से ढका हुआ समुद्र ही इस त्रिकूट पर्वत का काला वस्त्र दिखायी दे रहा है।"[१११]

पौलस्त्यवध में प्रकृति में मानवीय भावों का सयोजन हृदयस्पर्शी है। प्रथम अक में सीता के प्रति आसक्त राम की दृष्टि को पुण्यसलिला गोदावरी सीता की सखी प्रतीत होती है। वे सीता से कहते हैं- "सुन्दर कण्ठ की ध्वनि को उत्पन्न करने वाली, मन्द-मन्द वायु की प्रेयसी, हसों के जोडे की सखी, कुजों में आने वाले भ्रमरों का अतिथि-सत्कार करने वाली, चचल तरगों रूपी हाथों को प्रेम से फैलाने वाली यह गोदावरी, हे रसिके! सखी के समान मानों तुम्हें बुला रही है।"[११२] यहाँ गोदावरी में कवि ने मानवीय सद्गुणों को कुशलतापूर्वक समाविष्ट किया है।

तृतीय अक में सीता की खोज में निकले राम एक वृक्ष को अपनी प्रिया लता के साथ सुखी देखकर कहते हैं- "हे वृक्ष! खिले पुष्परूपी पवित्र मुस्कान वाली, प्रवालरूपी अधर वाली, पुष्पगुच्छ रूपी स्तनों वाली, वनलता रूप प्रिया का स्कन्ध से भली-भाँति आलिगन कर तुम बहुत सुखी हो। हे सखे! तुम मेरी मित्रता के योग्य हो और मैं तुम्हारी दया का पात्र हूँ। मेरी प्रिया का समाचार देते हुए तुम्हें कभी अपनी प्रिया का वियोगजन्य दु ख नहीं सहना पड़ेगा।"[११३] इस कथन के साथ ही राम उस वृक्ष में श्रेष्ठ-पुरुष जैसा भावोद्रेक देखते हैं जो कि दु ख के साथ पूर्ण सहानुभूति रखता है। राम सोचते हैं- "फलों के भार से झुके सिर वाला, पराग से धूसरित अगों वाला, पुष्पों के

गिरने के बहाने से ऑसुओं को बहाता हुआ, मेरी गति का चिन्तन करके स्तम्भित मन वाला, यह महात्मा वृक्ष अत्यन्त दुख के कारण कुछ कहने में समर्थ नहीं हो रहा है।"[११४]

मार्ग में मिले हरिण राम एव लक्ष्मण को सीता के जाने के मार्ग का सकेत करते हैं। वे कभी आगे की ओर जाते हैं, कभी उनके पास आकर कुछ कहते हैं, पुन सामने देखते हुए एव मार्ग पर चलते हुए सीता की स्थिति का उपदेश करते हैं। मृगों की आत्मीयता देखकर राम लक्ष्मण से कहते हैं-"मुझे दीन, कृश एव अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ सीता को ढूँढता देखकर ये मृग भी दीन, दुर्बल एव रोते हुए ही मेरा सहयोग दे रहे हैं। इस प्रकार आचरण करते हुए ये मेरे बन्धु-बान्धव हैं।"[११५]

प विश्वेश्वर दयालु ने भी प्रसन्नहनुमन्नाटक में प्रकृति में मानवीय भावों को समाविष्ट किया है तथा उषाकालीन शोभा के वर्णन में कवि ने पूर्वदिशा एव रात्रि को नायिका के रूप में चित्रित किया है- "यह प्राची रूपी सुन्दरी अपने प्रियतम सूर्य से मिलने के लिए केसर के समान लाल रेशमी वस्त्र धारण करके, मधुर कोयल के स्वर से स्वागत वचन बोल रही है तथा निशा रूपी कामिनी चन्द्रमा पर क्रोध करने से लाल हुई, नक्षत्र माला को तोडती हुई तथा ढीले हुए अन्धकार रूपी नीले वस्त्र वाली दूर से ही जा रही है।"[११६]

प्रथम अक के अन्त में श्रीराम सुग्रीव से गगन के मध्य अध्यारूढ भगवान् सूर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं- "यह भगवान् सूर्य हमारे वश के गुरु तथा तुम्हारे पिता हैं। अत ये हम दोनों की शीघ्र फल प्रदान करने वाली तथा दृढ मैत्री को देखकर गगनांगन के मध्य घोडों के वेग को मन्द करके आनन्दित हो रहे हैं।"[११७] यहॉ पर सूर्य में कवि ने मानवीय गुणों का समावेश किया है। जिस प्रकार पिता अपने बच्चों में पारस्परिक स्नेह देखकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार राम एव सुग्रीव को एक साथ मैत्रीबद्ध देखकर सूर्य का चित्त बहुत आह्लादित है।

द्वितीय अक में वर्षा-ऋतु के वर्णन में कवि की कल्पना द्रष्टव्य है-

"चण्डांशोः प्रखरैः करैरतितरां तप्तां विशुष्कामृता-
मालोक्याश्रु विमुञ्चतीव सदयं धारामिषेणाम्बुदः।।"[११८]

अर्थात् प्रचण्ड सूर्य की तेज किरणों से सन्तप्त एव पृथ्वी को देखकर बादल दयापूर्वक जलधारा के बहाने ऑसू बहा रहा है। यहॉ पृथ्वी एव बादल में मानवीय गुणों का सयोजन हृदयस्पर्शी है। ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी का दु ख देखकर मेघ का हृदय द्रवीभूत हो गया है।

साता की विरहाग्नि में अत्यन्त विदग्ध राम आकाश-मार्ग में जाते हुए मेघ को देखकर लक्ष्मण से कहते हैं- "हे लक्ष्मण, यह बलवान् वीर मेघ काला कवच धारण किए हुए जा रहा है। इन्द्रधनुष ही इसका चाप है, बिजली धनुष की सुन्दर डोरी है, यह मूसलाधार बौछारों से पृथ्वी पर प्रलय कर रहा है, वज्र-ध्वनि सुनाई पड रही है। यह चन्द्राभा को जीतकर सामने से जा रहा है, इससे इस चन्द्राभा की रक्षा करो।"[११६] यहॉ कवि ने मेघ को एक वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया है।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि सस्कृत साहित्य में प्रकृति को वैदिक काल से ही मानवीय रूप प्रदान किया गया। इसी का परिणाम है कि आज भी पृथ्वी जल, तेज, वायु, आकाश, वृक्ष, नदियों आदि प्रकृति के असख्य उपकरणों में देवत्व मानकर उनकी उपासना की जाती है। प्रकृति को चेतन सत्ता मानकर जब कवि उसके साथ मानव की भॉति आचरण की कल्पना करता है तो वह प्रकृति मित्र, प्रिया, मॉ, तात आदि विभिन्न रूपों में उपस्थित होकर उसके साथ हॅसने, रोने, गाने एव बात करने आदि नाना प्रकार की चेष्टायें करती हुई प्रतीत होती है। मानवीकरण द्वारा प्रकृति चित्रण के शिल्प की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कवि का हृदय कितना सवेदनशील है, क्योंकि वस्तुत प्रकृति स्वय मानवीय आचरण नहीं करती। उस पर उसका आरोप किया जाता है। यह सवेदन की सहजता तथा कल्पना शक्ति की उर्वरता -दोनों पर निर्भर करता है। कवि अपनी इन दोनों शक्तियों के आधार पर ही प्रकृति में चेतन का आरोप कर उसे सवेदनशील एव मानवीय भावों से आपूर्ण बनाता है। मानव के दु ख में वह दु खी और सुख में आनन्द का अनुभव करता है। आलोच्य सभी नाटककार अन्त प्रकृति तथा बाह्य प्रकृति के कुशल पारखी थे। अत दोनों का तादात्म्यमूलक वर्णन करने में सफल सिद्ध हुये, परन्तु इस दृष्टि से महाकवि भवभूति सर्वश्रेष्ठ नाटककार कहे जाते हैं। उनकी वाणी का स्पर्श पाकर ही पत्थर चित्कार कर उठे और वज्र का हृदय भी दहल गया। 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' की भणिति

सर्वसाधारण के कण्ठ का हार बन गयी।

कोई भी मानव व्यापार प्रकृति के क्षेत्र से बाहर नहीं है। अत नाटककारों ने अपनी कृतियों में प्रकृति और मानव में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया है तथा प्रकृति का सश्लिष्ट एव रूपयोजनात्मक वर्णन किया है। अपनी सशक्त शैली एव सम्यक् चित्रण कला के बल पर सभी कवि जीवन और प्रकृति का एकात्मक रूप प्रस्तुत करने में सफल हुए।

संदर्भ

१ द्र , ऋग्सूक्तसग्रह (साहित्य भण्डार), पृ ६-१०५

२ अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी। ऋग्वेद ३/६१/४

३ तिष्ठतु चिराय दिवसकरान्वयो य विभूषयता रामेण । आ चू , अक ३, पृ ६५

४ अनन्ताशेन सम्भूतो लक्ष्मण पर वीरहा। कल्याण, रामाक, पृ ८३ पर उद्धृत।

५ विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत। उ च , १/६

६ द्र , अ रा , ३/१४

७ भगवत प्रभञ्जनस्य पुत्रो हनुमान्। वही, अक ५, पृ ३१४

८ सहस्रकिरण आत्मजन्मनो वानरयोने सुग्रीवस्य । वही, द्वितीय अक, पृ ६६

६ द्र , वा रा किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ६६-६७

१० द्र , म च , ५/६

११ द्र , वही, अक ६, विष्कम्भक, पृ २५७

१२ वा रा , अरण्यकाण्ड ६८/२४

१३ द्र , हजारीप्रसाद द्विवेदी, कालिदास की लालित्य योजना, पृ ४५-४६

१४ कला और आधुनिक प्रवृत्तियॉ, पृ १

१५ आधुनिक कवि (पर्यालोचन), पृ ६

१६ द्र , अभि , अक १, पृ २१

१७ द्र , वही, २/१

१८ द्र , वही, ४/१३

१६ द्र , प्रति २/२

२० द्र., वही, ५/११

२१. द्र , वही, अक ६, पृ १७४

२२ द्र , कुन्द, १/५

२३ वही, १/१८

२४ द्र , वही, १/२२

२५ द्र , वही, १/२४

२६ द्र , वही, १/२५

२७ सख्यो नद्य स्वामिनो लोकपाला
मातर्गङ्गे! भ्रातर शैलराजा ।
भूयो भूयो याचते लक्ष्मणोऽय
यत्नाद्रक्ष्या राजपुत्री गतोऽहम् ।। कुन्द , १/२६

२८ वही, अक १, पृ ३५

२६ द्र , वही, अक १, पृ ४०

३० वही, ३/१६

३१ द्र , वही, अक ४, पृ ६०-६१

३२ द्र , वही, ४/६

३३ द्र , वही ६/२३

३४ द्र , वही, अक ६, पृ १६०

३५ द्र , वही, अक ६, पृ १६४

३६ उन्नतौ विन्ध्यकैलासौ तव देवि! पयोधरौ।
जाह्नवी हारयष्टिस्ते समुद्रा रत्नमेखला ।। वही, ६/२८

३७ वही, ६/३३-३४

३८ द्र , वही, ६/४०

३६ द्र , म च , अक ५, विष्कम्भक

४०. द्र , वही, अक ६, पृ २५७

४१ द्र , वही, अक ७, विष्कम्भक
४२ भवभूति और उनकी नाट्य-कला पृ २६४
४३ उ च , २/१
४४ वही, अक २, पृ १४५
४५ वही, अक २, पृ १४७
४६ वही, २/७
४७ द्र , वही, अक ३
४८ उ च , ३/२
४९ 'इय ते श्वसुरकुलदेवता भागीरथी' वही, अक ७, पृ ४८०
५० द्र , वही, अक ३, पृ १६६
५१ द्र , वही, अक ३, पृ २२०
५२ 'इय ते जननी विश्वभरा'। वही अक ७, पृ ४८०
५३ वही, अक ७, पृ ४८२
५४ उ च , ७/५ तथा द्र पृ ४८७-८८, ४९२
५५ वही, अक २, पृ १३६
५६ द्र , वही, २/८
५७ उ च , ३/१५
५८ वही, ३/१६
५९ वही, ३/१८
६० उ च , ३/१९
६१ वही, ३/२०
६२ वही, ३/२४
६३ जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्। वही, १/२८
६४ आर्यासप्तशती, १/३६
६५ यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।
अपन्थान तु गच्छन्त सोदरोऽपि विमुञ्चति।। अ रा , १/४
६६ वही, २/२०-२१

६७ अ रा , ७/१००

६८ वही, १/५६

६६ वही, १/५८-५६

७० विन्ध्यगिरिराजकन्यान्त पुरमेतास्तरगमालिन्य ।
वेतस्वतीभिरद्भिस्तौर्यत्रिकगुणनिका दधते।। अ रा , ५/१८

७१ वही, ६/३०

७२ वही, अक ७, पृ ४६१

७३ वही, ७/२२

७४ वही, ७/२३

७५ द्र , वा रा , सुन्दरकाण्ड, सर्ग १/११५-११६

७६ अ रा , ५/३४

७७ द्र , आ चू , ५/१

७८ द्र , आ चू , ६/१०

७६ द्र , वही, ७/१६-२०

८० हनु ना , २/५

८१ वही, २/६

८२ द्र , वही, २/२

८३ द्र , वही, ५/२६

८४ वही, ५/३०

८५ द्र , हनु ना , ६/११

८६ वही, ६/२४

८७ वही, १४/१३

८८. द्र , बा रा , ६/२८

८६ द्र , वही, ६/३१

६० वही १०/५३

६१ वही, ३/८७

६२ वही, अक ७, पृ २२५-२६

६३ वही ७/३५

६४ द्र , बा रा , अक ७, पृ २२६-२८

६५ द्र , वही, अक १, पृ १६, २५, २६, अक ५, पृ १४६, १५६, १६०, १६१, १६२, १६५, अक ६, पृ १८६ तथा अक ८, पृ २७०-७१

६६ द्र , प्र रा , अक१

६७ वही, १/२६

६८ वही, १/३६

६९ वही, १/५८

१०० वही, २/१२

१०१ प्र रा , २/१४

१०२ वही, ५/१

१०३ द्र , वही, अक ५, पृ २३४

१०४ द्र , वही, अक ५

१०५ द्र , वही, अक ६, पृ २८६

१०६ द्र , वही, ६/८

१०७ प्र रा , ६/१३

१०८ द्र , वही ६/१७-१८

१०९ द्र , वही, ६/१६

११० द्र , वही, ७/७

१११ अ द , ३/४

११२ पौ व , १/१५

११३ वही, ३/१८

११४ वही, ३/१६

११५ वही व , ३/३२

११६ प्र हनु , अक १ पृ १३

११७ वही, १/५७

११८ वही, २/८१

११९ वही, २/११२

सप्तम अध्याय

रामाश्रित नाटकों में प्राप्त प्राकृतिक स्थलों का भौगोलिक परिचय

आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण में भगवान् श्रीराम का चरित जिस रूप में चित्रित किया हैं उसमें राम का प्रकृति के साथ सान्निध्य सहज ही परिलक्षित होता है। वनवास की चतुर्दशवर्षीय अवधि को राम ने पूर्णत प्राकृतिक उपादानों के बीच प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए व्यतीत किया है। महर्षि वाल्मीकि ने प्रसगश आये प्राकृतिक स्थलों पर्वत, नदी, वन, सरोवर, आश्रम आदि का नैसर्गिक चित्राकन किया है। रामकथा का आश्रय लेकर नाटकों की रचना करने वाले कवियों ने भी वाल्मीकि के समान ही कथानुकूल प्राप्त प्राकृतिक स्थलों का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। यहॉ रामाश्रित नाटकों में वर्णित पर्वत-नदी आदि के साथ नगर-ग्राम आदि का भी चित्रण प्रस्तुत है। इन स्थलों की वर्तमान समय में क्या स्थिति है? इसका भी सकेत द्रष्टव्य है-

(क) पर्वत

उदयाचल एवं अस्ताचल

उदयाचल पूर्व दिशा का एक पर्वत है, जहॉ से सूर्य का उदय होना माना गया है, अत इस पर्वत को उदयगिरि भी कहते हैं। यह शाकद्वीप में है और महाराज पृथु के राज्य की सीमा निर्धारित करता था।[1] अस्ताचल भी शाकद्वीप का एक पहाड है।[2] इस पर्वत के पीछे सूर्य अस्त हो जाता है, इसीलिए यह अस्ताचल कहलाता है।

प्रसन्नराघव में कहा गया है कि सूर्य उदयाचल की चोटी पर चढ़कर आकाश को लॉघते है[3]। महावीरचरित में सुग्रीव अयोध्या लौटते हुए राम को उदयाचल के साथ ही अस्ताचल का परिचय देते हैं- "यह उदयाचल तथा अस्ताचल हैं, जिनकी गोदों में चन्द्रमा तथा सूर्य विश्वासपूर्वक लडकपन तथा बुढापे का सुख लूटते है।"[4] एक अन्य स्थान पर आया है कि सूर्य और

उसकी किरणें समस्त आकाश में घूमकर अस्ताचल पर पहुँचती है।[५]

ऋष्यमूक

ऋष्यमूक पर्वत दक्षिण भारतवर्ष में अवस्थित है।[६] यह सुग्रीव का निवास-स्थान है।[७] विभीषण अपने बन्धुओं को छोडकर सर्वप्रथम ऋष्यमूक पर्वत पर अपने मित्र सुग्रीव के पास ही आता है। इसी पर्वत पर रावण द्वारा हरण की जाती हुई सीता ने अपना अनसूया नामाकित उत्तरीय फेंका था जिसे राम-पक्षपात से सुग्रीव, विभीषण तथा हनुमान् ने उठाया था। राम वहीं पर सुग्रीव आदि से मिलते है। ऋष्यमूक पर्वत पर पम्पा नामक प्रसिद्ध सरोवर तथा मतग ऋषि का आश्रम है।[८] अनर्घराघव के अनुसार राम-लक्ष्मण गुह के साथ सुग्रीव से मिलने ऋष्यमूक पर्वत पर जाते है।[९] हनुमन्नाटक में हनुमान् राम से कहते है कि आप चलकर सुग्रीव के निवासभूत ऋष्यमूक पर्वत को अपने सुन्दर चरण-कमलों से सुशोभित कीजिए और यहाँ की विघ्न-बाधाओं को दूर कीजिए।[१०]

ऋष्यमूक पर्वत की वर्तमान स्थिति स्पष्ट है। विजयनगर (हम्पी)[११] में विरूपाक्ष-मन्दिर है। उसके सामने से एक सडक सीधी ऋष्यमूक पर्वत के पास जाती है। यहाँ तुड्ग-भद्रा नदी धनुषाकर बहती है, अत वहाँ नदी में चक्रतीर्थ माना जाता है। चक्रतीर्थ के पास श्रीराम मन्दिर है।[१२]

कैलास पर्वत

पुराणानुसार कैलास पर्वत हिमालय पर्वत का एक शिखर है जो मेरु पर्वत के दक्षिण में है। यह भगवान् शिव एव धनपति कुबेर का निवास-स्थान है।[१३] आलोच्य नाटकों में कैलास पर्वत का उल्लेख शिव-निवास तथा रावण द्वारा उठाए जाने के रूप में अनेकश हुआ है। हनुमन्नाटक में धनुर्भङ्ग के प्रसग में आया है कि शिव, पार्वती, गणेश, षडानन, नन्दीश्वर एव अनेकानेक शिव गणों से भरे कैलास को रावण खेल-खेल में उठा लेता था।[१४] आश्चर्य-चूडामणि में कैलास का कुबेर के निवास के रूप में सकेत मिलता है।[१५]

अनर्घराघव के सप्तम अक में कैलासपर्वत के वैशिष्ट्य का बहुत ही मनोहारी, नैसर्गिक एव विस्तृत वर्जन द्रष्टव्य है- कैलास पर्वत दिन में एकत्रित हुई सूर्य की किरणों की तरह चमकता है। इसे सौ बार देखने के बाद भी ऑखों की उत्कण्ठा शान्त नहीं होती है। इस पर्वत पर स्फटिकमय भूमि में

पैदा होने वाले वृक्षों की छाया केवल प्रतिबिम्ब में ही देखी जा सकती है और यहीं समीप में घूमने वाले सूर्य के हाथ में रखे गये कमल को भी महादेव के सिर पर रहने वाले चन्द्रमा की किरणें सकुचित कर देती हैं। कैलास पर्वत रावण के केयूर में वर्तमान मणिगण के पत्राकुर में बने मकराकृति चिह्नों से अकित है तथा सभी अवयवों में श्वेतवर्ण कैलास पर चढकर यक्षलोग नागलोक का चरित भी देखा करते हैं। रावण जब अपने भुजदण्डों से कैलास की मेखला को जोरों से पीडित कर देता था, तब इसके भीतर से पानी ऊपर निकलकर प्रवाहित होने लगता था, उस समय यह कैलास महादेव को स्नानागार का सुख प्रदान किया करता था। कैलास पर्वत की तलहटी में महादेव के सिर को भूषित करने वाले चन्द्रमा की कला से निर्गत चन्द्रिका द्वारा स्पृष्ट चन्द्रमणियों के जलस्राव से नदीमातृक बनने वाले तथा जिन्हें पार्वती ने अपने हाथों से पाला-पोसा है और जो साथ-साथ खेलने वाले कार्त्तिकेय रूप अपने भाई के साथ बाल क्रीडा का सुख भोग चुके हैं- ऐसे यह वृक्ष फूल रहें है और इस कैलास की अधित्यका में महादेव नित्य वास किया करते हैं- ऐसे सहस्र नेत्रों से अलकृत अपने अगों से जब इन्द्र महादेव को प्रणाम करतें है तब ऐसा लगने लगता है, मानो वह नील कमल की माला महादेव को उपहृत कर रहे हों और उस नीलकमलमाला के समान प्रतीत होने वाले इन्द्र के आनत शरीर को खेलने में रसिक कुमार उठाकर ले जाना चाहतें हैं जिन्हें हॅसी लगने लगती है, ऐसे महादेव आपका कल्याण करें।[१६]

महावीरचरित में कैलास पर्वत का अञ्जन पर्वत के साथ उल्लेख हुआ है तथा कहा गया है कि ये पर्वत ऊँचाई और विशालता में समान हैं तथा कस्तूरी और चन्दन से लिप्त पृथिवी के स्तन के समान हैं।[१७]

वर्तमान समय में कैलास पर्वत तिब्बत में स्थित है। यह मानसरोवर से २० मील दूर है। पूरे कैलास की आकृति एक विराट् शिवलिग जैसी है, जो पर्वतों से बने एक षोडशदल कमल के मध्य रखा है। कैलास की परिक्रमा ३२ मील की है। कैलास के शिखर की ऊँचाई समुद्र-स्तर से १६,००० फुट कही जाती है।[१८]

क्रौञ्च पर्वत

नाटकों में क्रौञ्च पर्वत का उल्लेख पौराणिक कथा सदर्भो के साथ हुआ है। पुराणों के अनुसार स्वामी कीर्तिकेय के शस्त्र-प्रहार से इसका कटिप्रदेश और लता-निकुञ्जादि क्षत-विक्षत हो गए थे।[१९] परशुराम ने क्रौञ्च

पर्वत को बेंधकर क्रौञ्चरन्ध्र बनाया था। हस इसी मार्ग से मानसरोवर आते जाते हैं।[२०]

अभिषेकनाटक में भास लिखते हैं कि राम के बाण से विदीर्ण हृदय बाली पृथिवी पर पडा है जैसे कीर्तिकेय की शक्ति से विदीर्ण क्रौञ्च पर्वत हो।[२१] बायें हाथ से धनुष पकडकर दक्षिण हाथ से बाण चढाते हुए रथस्थ शत्रु को देख रहे भूमि पर खडे वीर राम युद्ध में क्रौञ्च पर्वत को देख रहे कीर्तिकेय के सदृश हैं।[२२] प्रतिमानाटक में कञ्चनपार्श्व मृग की प्राप्ति के विषय में कहते है कि हिमालय स्वय उस स्वर्णमृग को मेरे सामने उपस्थित करेगा या मेरे बाणों से बिंधकर क्रौञ्च पर्वत की दशा को प्राप्त करेगा।[२३] महावीर चरित में परशुराम की वीरता का वर्णन करते हुए भवभूति कहते हैं कि उन्होनें क्रौञ्च पर्वत का भेदन करके पृथ्वी पर सर्वप्रथम हसों को आने का अवसर दिया था।[२४] अनर्घराघव[२५] एव हनुमन्नाटक में भी इसी तरह का सकेत है कि परशुराम ने क्रौञ्च नामक पर्वत में अपने बाणों के प्रहार से छेद कर डाला था जिस मार्ग से हस आते-जाते ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो वे क्रौञ्च के झरते हुए अस्थिकण हों। इसी प्रकार उत्तररामचरित में भवभूति ने जनस्थान एव अगस्त्याश्रम के बीच क्रौञ्च पर्वत का वर्णन किया है। अगस्त्याश्रम से शम्बूक राम के पास जनस्थान पर आता है तथा कहता है कि ऋषि अगस्त्य लोपामुद्रा तथा अन्य ऋषियों के साथ उनकी प्रतीक्षा कर रहें हैं। राम वहॉ से अगस्त्याश्रम की ओर चल पडते हैं, तभी शम्बूक उन्हें क्रौञ्च पर्वत को दिखलाते हुए कहता है कि यह क्रौञ्च पर्वत है। यहॉ कीचकों के झुण्डों में उल्लू घू-घू करके चिल्ला रहें हैं। उनके इस शब्द को सुनकर कौए भय से बिल्कुल शान्त हो गए हैं। इधर-उधर मोर कूक रहें हैं, जिनके शब्दों से डरकर बेचारे सर्प पुराने चन्दन के वृक्षों से लिपट रहें हैं।[२७]

डॉ० कृष्ण कुमार मानते हैं कि क्रौञ्चरन्ध्र वर्तमान समय का नीति दर्रा रहा होगा। यह गढवाल के चमोली जिलें में स्थित है।[२८] डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार अल्मोडा से आगे का दर्रा ही क्रौञ्चरन्ध्र है।[२९]

चित्रकूट

चित्रकूट पर्वत वनवास काल में राम द्वारा उपभुक्त स्थलों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। श्री राम अपने भाई लक्ष्मण एव पत्नी सीता के साथ बहुत समय तक वहॉ रहे थे। महावीरचरित के अनुसार शृगवेरपुरवासी

निषादराज गुह के निवदेन पर श्रीराम पापी विराध को मारने के लिए प्रयागपार्श्ववर्ती गगा के पावन तटों पर अवस्थित चित्रकूट पर जाते हैं।[३०] अनर्घराघवकार लिखते हैं कि राम सीता एव लक्ष्मण सहित गुह द्वारा उपस्थित नाव पर चढकर गगा नदी को पार करते हैं तथा चित्रकूट पर्वत की ओर चल पडते हैं। कुछ दिनों बाद भरत भी पिता दशरथ के निधन के पश्चात् रामभद्र को अयोध्या ले जाने के लिये चित्रकूट आते हैं।[३१] बालरामायण में सुमन्त्र दशरथ से बताते हैं कि राम देवनदी गगा को पार कर गगा यमुना के मध्यवर्ती भूमि के निवासियों के स्थान को गए और प्रयाग के पश्चिम में एक रात बिताकर सूर्यतनया यमुना को पारकर नाना धातुओं से चित्रित चित्रकूट पर्वत पर गए।[३२] जयदेव ने लका विजय के पश्चात् राम के लका से अयोध्या लौटते हुए चित्रकूट का उल्लेख किया है। राम लक्ष्मण कहते हैं- "सागर को पारकर, दण्डकारण्य को लॉघकर, गगा-यमुना नदियों को पारकर यह हम लोग सैंकडों मयूरों के द्वारा दलित वृक्ष-समूह वाले चित्रकूट पर्वत पर आ गये हैं।"[३३]

कुन्दमालानाटक के अनुसार वन-प्रदेश में परित्यक्त सीता चित्रकूट के समीपवर्ती प्रदेशों में रही हैं।[३४] उत्तररामचरित में चित्रवीथी दर्शन में चित्रकूट का उल्लेख हुआ हैं।[३५] षष्ठ अक में लव-कुश द्वारा रामायण-वाचन के प्रसग से ज्ञात होता है कि राम चित्रकूट के मार्ग में सीता जी के साथ मन्दाकिनी-विहार किया करते थे।[३६]

आज चित्रकूट भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। यह उत्तर प्रदेश के बॉदा जिले की कर्वी तहसील तथा मध्यप्रदेश के सतना जिले की सीमा में स्थित है। चित्रकूट पर्वत के रूप में कामदगिरि प्रसिद्ध है, जिसके नीचे कामतानाथ जी का मन्दिर है। चित्रकूट में हनुमान्धारा, जानकीकुण्ड, स्फटिकशिला, अनसूया-आश्रम, गुप्त गोदावरी, भरतकूप, रामशय्या प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल हैं।[३७]

त्रिकूट पर्वत

देवीभागवत के अनुसार त्रिकूट पर्वत पर लका बसी है।[३८] भवभूति ने लंका-दहन के प्रसग में लिखा है कि भयानक आग त्रिकूट के पर्वत के साथ लका को दग्ध करने में प्रवृत्त हैं।[३९] बालरामायण में भी लकापुरी के साथ त्रिकूटपर्वत का उल्लेख हुआ है।[४०] भास ने अभिषेक नाटक में त्रिकूट नामक कानन का उल्लेख किया है। लका में पहुॅचे हनुमान् रावण को अपने आने

की सूचना देने का उपाय सोचतें हैं कि कोकिल समूहों से नादित, कमलवनों से रमणीय वृक्षों वाले रावण के मेघतुल्य त्रिकूट कानन को हाथ-पैर से रौंदकर चूर्ण करके राक्षसेश रावण को विषयों के दर्प से विरहित करूँगा।[८१]

नाटकों में प्राप्त प्रसगों के अनुसार त्रिकूट पर्वत की स्थिति लका में हो सकती है।

द्रोणाचल

द्रोणाचल शाल्मलिद्वीप का पर्वत है जिसे क्षीरोद समुद्र में स्थित कहा गया है। वहॉ विशल्यकरणी तथा मृत सजीवनी बूटियॉ होती थी।[८२] हनुमन्नाटक में लक्ष्मण-मूर्च्छा के प्रसग में द्रोण-पर्वत का उल्लेख मिलता है और इस पर्वत को द्रुहिण-पर्वत भी कहा गया है। सुषेण वैद्य बताता है कि द्रुहिण-पर्वत पर रात में चन्द्रकान्ति से प्रकाशित सजीवनी बूटी (विशल्यवल्ली) से लक्ष्मण सचेत हो सकते हैं।[८३] हनुमान् द्रोणाचल पर पहुँचते हैं तथा सजीवनी बूटी को न पहचान द्रोणाचल को ही उठा लाते हैं।[८४] बालरामायण में भी इसका सकेत मिलता है।[८५]

द्रोणाचल कूर्माचल श्रेणी का एक पर्वत हैं, जिसे आजकल दूनागिरि कहते हैं। यह अल्मोडा जिले के रानीखेत से १६ मील दूरी पर है।[८६]

प्रस्रवण पर्वत

महावीरचरित में भवभूति ने प्रस्रवण पर्वत का सुन्दर परिचय दिया है। जटायु अपने भाई सम्पाति से मिलकर मलयाचल से लौटता है तथा प्रस्रवण पर्वत को देखते हुए कहता है- "यही है वह प्रस्रवण नामक जनस्थान का मध्यवर्ती पर्वत, जिसकी गुफायें सघन वृक्षों की निरन्तर मनोहर नीले वर्ण की छायावाले वनों की पक्तियों से युक्त गोदावरी के मुख भाग के समीप हैं और जिस पर सदैव बरसते हुए बादलों की नीलिमा फैली हुई है।"[८७] कवि ने उत्तररामचरित के प्रथम अक में चित्रवीथी दर्शन के प्रसग में भी लक्ष्मण के मुख से प्रस्रवण पर्वत का पूर्ववत् चित्राकन कराया है।[८८] इसके साथ ही राम सीता से पूछते हैं- "सुन्दरी! तुम उस प्रस्रवण पर्वत में लक्ष्मण के द्वारा की गयी सेवा से प्रसन्न हम दोनों के उन सुखमय दिनों का, निर्मल जलवाली गोदावरी नदी का और उसके किनारे पर हमारे विहार का स्मरण करती हो?"[८९] इमसे स्पष्ट है कि राम ने अपने वनवास काल में प्रस्रवण पर्वत पर भी कुछ समय व्यतीत किया था। शम्बूक वध के लिए राम जब जनस्थान जाते

हैं तो वह वहॉ प्रस्रवण पर्वत को पहचान लेते हैं तथा कहते हैं कि मेघालयों के समान जो बिल्कुल पास में खडा हुआ सा लग रहा है, यह वह प्रस्रवण पर्वत हैं।[५०] इस पर्वत के ऊँचे शिखर पर गृध्रराज जटायु का निवास स्थान था, उसी के नीचे हम लोग पर्णकुटी में आनन्द-पूर्वक रहते थे, जहॉ गोदावरी के जल में वृक्षों की छाया पडने से नीली-नीली कान्ति वाला सुन्दर वन-प्रान्त है। इसमें अनेक पक्षि-गण चहचहा रहें हैं, जिससे प्रतीत होता है कि मानों उनके बहाने से यह स्वय ही शब्द कर रहा हो।[५१] अगस्त्याश्रम से लौटते हुए भगवान् राम मार्ग में पुन प्रस्रवण पर्वत के रमणीय प्रदेशों को देखकर उत्कण्ठित हो जाते हैं तथा कहते हैं- "जहॉ वृक्ष और मृग भी मेरे बन्धु थे और जिनमें मैंने प्रियतमा के साथ बहुत दिनों तक निवास किया था, ये बहुत सी गुफाओं और झरनों से युक्त गोदावरी के निकटवर्ती वे ही प्रस्रवण पर्वत के प्रदेश हैं।"[५२]

प्रस्रवण पर्वत पर वर्णित जनस्थान, गोदावरी, पञ्चवटी आदि के विषय में विद्वान् एक मत नहीं हैं फिर भी नासिक के समीप इनकी स्थिति मानी जाती हैं,[५३] अत प्रस्रवण पर्वत भी वहीं कोई पर्वत है।

मन्दर पर्वत

महाभारत के अनुसार मन्दराचल हिमालय की शृखला का ही एक भाग है।[५४] पौराणिक कथा है कि मन्दराचल को मथानी बनाकर देवताओं तथा राक्षसों ने समुद्रमन्थन किया था।[५५] अनर्घराघव में हिमालय के उपरान्त पौराणिक कथा सकेत के साथ मन्दराचल का भावात्मक वर्णन मिलता है।[५६] अयोध्या लौटते राम को विभीषण मन्दराचल को दिखलाते हुए कहते हैं- "दानवों के सहार करने वाले भगवान् विष्णु के भुज में वर्तमान केयूर में खचित हीरे की रगड से चिह्नित यह मन्दराचल ऑखों को आनन्दित कर रहा है, इसके नीचे जो कूर्मराज हैं, उनकी पीठ में घिसते रहने से इसकी जड घिस गई है, मैं समझता हूँ कि समुद्र मन्थन से पूर्वकाल में यह मन्दराचल बहुत ऊँचा पहाड रहा होगा।"[५७]

मलयाचल

सस्कृत साहित्य में मलय पर्वत का वर्णन बहुतायत है। भागवतपुराण के अनुसार यह सात कुल पर्वतों में से एक है तथा इस पर चन्दन के वृक्ष बहुत मात्रा में पाए जाते हैं। यह अगस्त्य ऋषि का निवास-स्थान रहा है।[५८] नाटकों में मलय समीर को शृगार के उद्दीपन के रूप में वर्णित किया गया हैं।[५९]

महावीरचरित के अनुसार मलयाचल कावेरी नदी की धारा से चतुर्दिक् घिरा हुआ है[६०] तथा जटायु के अग्रज सम्पाति इसी पर्वत की गुफा में रहते थे।[६१] मुरारि ने भी इसका सकेत किया है।[६२] बालरामायण के अनुसार जटायु का निवास भी मलयाचल पर ही था।[६३]

प० केदारनाथ शर्मा के अनुसार मलयाचल दक्षिण देश की पर्वत श्रेणियों का वह प्रदेश है, जो कावेरी के दक्षिण तक फैला है। मैसूर से ट्रावनकोर तक फैली हुई पर्वत माला का नाम मलय श्रेणी है।[६४] कुछ विद्वान् कोयम्बटूर से लेकर कुमार अन्तरीप तक विस्तीर्ण पर्वतीय भाग को मलय मानते हैं। अन्नामलाई और एलामलाई की पर्वत श्रेणियॉ मलय के अन्तर्गत आती हैं।[६५]

माल्यवान् पर्वत

पुराणानुसार माल्यवान् मेरु के पूर्व का एक पर्वत है।[६६] उत्तररामचरित में चित्रवीथी दर्शन में माल्यवान् पर्वत का वर्णन है। यह पर्वत कदम्ब के वृक्षों से सुसज्जित, अर्जुन पुष्पों से सुरभित, नीले-नीले नए-नए मेघों का विश्राम स्थल है तथा यहॉ मोर नृत्य करते हैं। सीता के वियोग में राम ने यहॉ कुछ समय व्यतीत किया था।[६७] मुरारि ने राम के अयोध्या लौटने के प्रसग में गोदावरी के साथ माल्यवान् पर्वत का वर्णन किया है। राम माल्यवान् को दिखलाते हुए सीता से कहते हैं कि इस माल्यवान् पर्वत के समीप में मेघ के उमडने पर वर्षा न भी हो पायी थी, लेकिन तुम्हारा हरण हो जाने से हमारी ऑखों में पानी की बाढ सी आ गयी थी।[६८]

मुरारि ने जनस्थान (दण्डकारण्य) में ही पञ्चवटी, प्रस्रवण पर्वत, गोदावरी, माल्यवान् पर्वत का वर्णन किया है। आज माल्यवान् की स्थिति पूर्ण स्पष्ट नहीं है। सम्भवत नासिक औरगाबाद का समीपवर्ती पर्वतीय भाग ही माल्यवान् पर्वत है।

मैनाक पर्वत

नाटकों में मैनाक पर्वत का राम कथा से प्रत्यक्ष सम्बन्ध दृष्टिगत नहीं होता है, प्रसन्नराघव में सीता का पता लगाने हेतु आकाश मार्ग से जाते हुए हनुमान् को देखकर सागर सन्देहपूर्वक कहता है- 'वज्र ने सभी पर्वतों की पॉख काट डाली है। वह एक मैनाक पर्वत जिसकी पॉख नही कटी है, मेरे जल में डूबा रहता है। अरे! तब दो कोस का विस्तार वाला हिमालय या विन्ध्य, शीघ्रगामी यह कौन सा पर्वत मुझे लॉघ रहा है।

आश्चर्य चूडामणि में लका पहुँचे हनुमान् कहते हैं कि मैं नागकन्याओं की कामक्रीडा के उपकारक, समुद्र-बन्धु, मैनाक पर्वत को पारकर लकापुरी पहुँच गया हूँ।[७०] अद्भुत-दर्पणकार ने नई उद्भावना के साथ मैनाक का उल्लेख किया है। विभीषण का मन्त्री सम्पाति अपने मित्र अनल से बता रहा है कि नीच मेघनाद ने मुझे विभीषण का परिवार सहित घर जलाने का आदेश दिया था। मैं तो स्वामी के परिवार को लेकर गुप्त मार्ग से मैनाक पर्वत पर आकर रुक गया हूँ तथा यहाँ से विभीषण के आदेश से श्रीराम के पास जा रहा हूँ।[७१]

बालरामायण में लका पर चढाई करने हेतु राम के सागर तट पर जाने के प्रसग में मैनाक पर्वत का उल्लेख हुआ है। सुग्रीव समुद्र की महत्ता का वर्णन करते हुए कहते हैं– "भगवान् समुद्र की ऐसी ही महिमा है, क्योंकि स्त्रियों की अधिष्ठात्री देवी जो गिरिसुता पार्वती है, उनका सहोदर रजत की खान वाला मैनाक है और उस मैनाक से गिरिराज हिमालय सुपुत्रवान् है। वह मैनाक भी इस समुद्र के पाताल रूप कीचड वाले विकराल कोख की गुहा में पर्वत की पॉख काटने के लिए उद्यत इन्द्र के वज्र से डरकर छिप गया।"[७२]

महर्षि-वाल्मीकि ने मैनाक पर्वत को राम कथा के साथ सम्बद्ध कर सजीवता प्रदान की है– हनुमान् जी जब आकाश मार्ग से प्रयाण कर रहे थे, तब इक्ष्वाकुकुलाधिपति सागर राजा के द्वारा बढाये हुए समुद्र ने उसी कुल में उत्पन्न श्रीराम को सहायता करने का उत्कृष्ट विचार किया। तब उसने अपने जल में आच्छादित सुवर्णमय पर्वतश्रेष्ठ मैनाक को हनुमान् की सहायता करने के लिए जल के बाहर आने को कहा। मैनाक ने मनुष्य रूप धारण कर अपने ही शिखर पर स्थित हो हनुमान् जी से आतिथ्य ग्रहण करने का निवेदन किया। हनुमान् जी ने अपने कार्य को शीघ्र करणीय बताते हुए मैनाक का अपने हाथ से स्पर्श कर उसे कृतार्थ किया तथा वे आकाश में ऊपर उठकर चले गए।[७३] इसी प्रसग में वाल्मीकि जी ने उस पौराणिक कथा का भी संकेत किया है जिसके अनुसार पहले पर्वतों के पख होते थे उनके कहीं भी बैठ जाने के भय से सभी देवता तथा प्राणी त्रस्त थे, अत इन्द्र ने अपने वज्र से सभी पर्वतों के पख काट दिए थे। केवल मैनाक पर्वत के पख नहीं काटे जा सके, क्योंकि वह वायु की कृपा से समुद्र में गिर गया था।[७४]

अनर्घराघवकार ने उक्त कथा-प्रसगों को बडे भावात्मक शब्दों में प्रस्तुत किया है जिसमें मैनाक पर्वत की पिता एव पुत्र के प्रति कर्त्तव्यहीनता द्रष्टव्य

है। सप्तम अक में अयोध्या लौटते हुए सीता राम से कहती हैं कि 'गौरी के पिता पर्वतराज के युवराज ने मैनाक का पक्ष नहीं कटा फिर भी वह स्थावर तो हो गये।''[७५] इस पर मैनाक ने पुत्र क्रौञ्च तथा पिता हिमालय को छोडकर अपनी रक्षा यदि कर ही ली तो क्या किया? उचित तो यह था कि अपनी रक्षा भी करते, साथ ही पुत्र तथा पिता की रक्षा भी करते।''[७६]

उपर्युक्त कथा सन्दर्भों के अनुसार मैनाक पर्वत भारत एव लका के मध्यवर्ती समुद्र के अन्तर्गत विद्यमान है। कुछ विद्वान् शिवालिक पर्वतमाला को ही मैनाक पर्वत मानते हैं।[७७] डॉ० कृष्णकुमार के अनुसार भारत के दक्षिणी छोर पर धनुष्कोटि से लका तक चली गई समुद्र के गर्भ में विद्यमान पर्वत शृखला को मैनाक माना जा सकता है।[७८]

विन्ध्य पर्वत

विन्ध्य सात कुलपर्वतों में से एक है। यह प्रसिद्ध पर्वतश्रेणी है जो आर्यावर्त देश की दक्षिण सीमा पर है।[७९] राम अपने वनवास काल में विन्ध्य-पर्वत के प्रदेशों में भ्रमण करते रहे हैं। महावीरचरित में वर्णन आया है कि सीता-हरण के पश्चात् राम लक्ष्मण श्रमणा नामक शबरी के साथ मतग ऋषि के आश्रम की ओर जा रहे है। मार्ग में बाधा रूप में पडे दुन्दुभि नामक दैत्यमहिष के अस्थिकूट को राम पैर के अँगूठे से हिलाकर विन्ध्य से दूर देश में फेंक देते हैं।[८०] अनर्घराघव में सीता-हरण की योजना के विषय में माल्यवान् शूर्पणखा से कहता है कि विराध आदि राक्षसों से अधिष्ठित विन्ध्यपर्वत की गुफाओं में भ्रमण करने वाले राम की स्त्री का अपहरण सुकर हो जाएगा।[८१] हनुमन्नाटक के अनुसार चित्रकूट पर्वत के साथ ही विन्ध्य पर्वत की भूमि है। भरत जी जब राम से मिलकर चित्रकूट से लौटते हैं तो राम आगे चल पडते हैं तब सीता जी उनसे कहती हैं- ''जब कि गौतम ऋषि ने, शाप से शिला रूप हुई अहल्या को तुम्हारे चरण-कमल की धूलि के स्पर्श से पुन अपनी धर्मपत्नी के रूप में प्राप्त किया, तब विन्ध्यगिरि के ये बिखरे पत्थर भी तुम्हारे चरणस्पर्श से स्त्रिया बनेंगे और तब कितने ही तापसों को पत्नियाँ प्राप्त होंगी।''[८२]

बालरामायण में विन्ध्य-पर्वत के भू-भाग का विस्तार से वर्णन है। षष्ठ अक में सुमन्त्र दशरथ से सीता के साथ राम का विन्ध्य-प्रदेश में घूमने के विषय में कहते हैं कि वनवासी ऋषिजनों की पत्नियाँ सीता को स्नेहपूर्वक निर्देश देती हैं कि ये विन्ध्य के भू-प्रदेश हिंसक पशुओं से भरे हुए हैं। यहाँ

हाथी, भालू, सिह, लगूर आदि पशु घूमते फिरते हैं। जगह-जगह पत्थर पडे हैं, कटीली लताए फैली हुई हैं, वृक्षों की शाखाए टेढी-मेढी हैं, चींटियों की ऊची-नीची बॉबियॉ हैं, बॉसों के गुल्म हैं, अत इस वन-प्रदेश में सावधानीपूर्वक चलना।[८३]

महाभारत के अनुसार विन्ध्य ने एक बार सूर्य से कहा कि मेरी परिक्रमा किया करो। सूर्य के अस्वीकार करने पर यह ऊपर बढने लगा। कहीं यह सूर्य का मार्ग न रोक दे, यह सोचकर अगस्त्य ऋषि उसके पास आये। इसने उन्हें साष्टाग प्रणाम किया, तब मुनि अपने लौटने के समय तक इसे इसी तरह रहने के लिए कह कर चले गये और फिर नहीं लौटे। इसीलिये यह पर्वत अब तक लेटा पडा है।[८४] विन्ध्य पर्वत से सम्बन्धित इस कथा का सकेत महावीरचरित[८५], अनर्घराघव[८६] तथा बालरामायण[८७] में उपलब्ध होता है।

विन्ध्य-पर्वत भारत के मध्यमार्ग में पूर्व से पश्चिम तक फैल हुआ है। बिहार, उडीसा से लेकर गुजरात तक सारी पर्वत शृखलाए विन्ध्य से सम्बन्धित है।[८८]

सुमेरु पर्वत

भागवतपुराण के अनुसार सुमेरु पर्वत इलावृत्त-वर्ष के मध्य स्थित है। यह कुलपर्वतों का राजा है तथा ऊपर से नीचे तक सुवर्णमय है।[८९] इस पर्वत को मेरु पर्वत भी कहा जाता है। मुरारि ने अनर्घराघव में सुमेरु का नैसर्गिक चित्राकन किया है– "नीचे की ओर पडने वाली प्रभा के विस्तार से वृक्षों की शाखाओं पर जिनकी छाया पडा करती है, ऐसी मेरु की अधित्कायें आनन्द प्रदान करती हैं, जब जब प्रतिमास में देवों द्वारा चन्द्रमा की सारी अमृतकला पी ली जाती है, तब-तब स्वतन्त्र भाव से विचरण करने वाले मृगगण यहॉ के दर्भाकुरों को चर जाया करते हैं। इस पर्वत के नितम्ब देश में वर्तमान यह हरिचन्दनवृक्षों की पक्ति पार्श्वदेश में अवस्थित सूर्यबिम्ब से सस्पृष्ट होते रहने के कारण मध्यदिन में भी लम्बी छाया फैलाती है जो बडी अच्छी लगती है। स्वर्णमय भूमि होने के कारण फलसमृद्ध वृक्षों से हॅसता हुआ यह सुमेरु का मध्यभाग ऐसा लगता है, मानो सूर्य के रथ से चलने का राजमार्ग हो, इस सुमेरुरूप राजमार्ग में प्रचण्ड सूर्यकर से सोने के पिघल जाने से जब रथ स्वर्णपक मग्न हो जाता है तब उसमें से सूर्य के घोडे बहुम श्रम से रथ को बाहर लाते हैं।"[९०]

आश्चर्यचूडामणि में कवि लिखता है कि समुद्र पर सेतु रूप में विद्यमान

पर्वत सुमेरु पर्वत की चोटियों के समान लग रहे हैं।[६१] बालरामायण में राजशेखर ने एक अन्य पौराणिक कथा सन्दर्भ के साथ समेरु पर्वत को उद्धृत किया है। परशुराम पर शिव की अतिशय कृपा को देखते हुए दशरथ कहते हैं-"सुमेरु के तट को ताडित कर काटने वाले जिस परशु के कारण भगवान् शकर खण्ड-परशु कहे जाते हैं, उस कुठार को शिव स्वय हाथ जोडे हुए एव विजयी परशुराम को दे रहें हैं।"[६२]

सुवेल पर्वत

सुवेल पर्वत लका में स्थित है। आलोच्य नाटकों के अनुसार राम ने समुद्र पारकर लका में सुवेल पर्वत पर अपना शिविर बनाया था तथा सेना को स्वच्छन्द विचरण के लिये मुक्त कर दिया था।[६३] राम-लक्ष्मण को सुवेल पर्वत पर आए सुनकर रावण युद्ध के लिए अस्त्र-शस्त्र तैयार करने लग जाता है।[६४] राम एव रावण का युद्ध लका के पूर्व तथा सुवेल पर्वत के पश्चिम में हुआ था।[६५] आज लका में एडम्स पीक को सुवेल पर्वत माना गया है।[६६]

हिमालय

सस्कृत साहित्य में हिमालय पर्वत का वर्णन कवियों ने बडे आदर से किया है। महाकवि भास ने हिमालय के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन करने के लिए एक नवीन प्रसग की योजना की है। राम पितृश्राद्ध के लिए चिन्तातुर हैं। तभी कपटी परिव्राजक के वेश में उपस्थित रावण राम को श्राद्ध के लिए काञ्चन पार्श्व मृग के निवाप का उपदेश देता है।[६७] इस प्रसग में हिमालय का वर्णन द्रष्टव्य है। हिमालय के सप्तम शिखर पर भगवान् शिव विराजते हैं। उनके सिर से गगा प्रवाहित हो रही है। वहीं काञ्चन पार्श्व नामक मृग रहते हैं जो वैदूर्यमणि के समान श्यामल पृष्ठभाग वाले तथा वायु के समान परम वेगशाली हैं। वे गगा-जल का पान करते हैं।[६८] इस हिमालय पर्वत पर अहर्निश चमकने वाली औषधियों के वन हैं।[६९]

भवभूति ने महावीरचरित में हिमालय की दिव्यता का वर्णन विभीषण के मुख से कराया है। अयोध्या लौटते हुए विमानारूढ राम को विभीषण हिमालय का परिचय इन शब्दों मे देते हैं– 'देवनदी गगा जी के द्वारा जिनके शिलाखण्ड धोये जाते हैं, जो कर्पूर के चूर्ण के समान श्वेत-शुभ्र एव पुराने जर्जर भोजपत्रों से युक्त हैं, ये वही गौरी के पिता हिमालय के पवित्र चरण-प्रान्त हैं, जिनमें परमात्म-तत्त्व के दर्शन से अपने अज्ञानान्धकार को

नष्ट करने वाले, अध्यात्मविद्या के प्रेमी ब्रह्मविद्या के वेत्ताओं का स्वभाव से ही मधुर एव शान्त तेज जागता रहता हैं।[१००] इस पर लक्ष्मण कहते हैं कि ये भूखण्ड लोगों को इतना आकृष्ट करते हैं कि उन्हें छोड किसी नवीन वस्तु को देखने का मन ही नहीं होता है।[१०१]

अनर्घराघव के सप्तम अक में कवि ने राम-सीता आदि के वार्तालाप के माध्यम से पार्वती की तपस्या एव शिव-विवाह आदि की सक्षिप्त कथा के साथ हिमालय का परिचय दिया है। हिमालय पर्वत स्वच्छ और ऊँचे शिखरों से आकाश को स्पर्श करता सा प्रतीत हो रहा है। इस पर देवदारू के वृक्षों की सुन्दर पक्ति है। यहीं पार्वती ने जन्म लिया था तथा महादेव ने अपनी नेत्राग्नि से कामदेव को भस्म किया था। यहीं पार्वती की तपस्या से प्रसन्न शिव उनसे विवाह के लिये तैयार हो गये। औषधिप्रस्थ नाम हिमालय के नगर में पर्वतराज हिमालय ने कन्यादान किया था तथा महादेव ने पार्वती का पाणिग्रहण किया था।[१०२] राजशेखर ने भी हिमालय का सुन्दर चित्र उपस्थित किया हैं।[१०३]

महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य कुमारसम्भव का श्रीगणेश हिमालय के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए ही किया है।[१०४] साथ ही हिमालय की भौगोलिक स्थिति का सुन्दर निरूपण किया है– "भारतवर्ष की उत्तरदिशा में देवता स्वरूप पर्वतों का राजा हिमालय पूर्व और पश्चिम समुद्रों में प्रविष्ट होकर पृथ्वी के मानदण्ड की तरह स्थित है।"[१०५] हिमालय की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट एव सुनिश्चित है। यह पश्चिम में हिन्दुकुश से लेकर पूर्व में वर्मा की सीमा तक २००० मील तक फैला है। उत्तर-दक्षिण में इसका विस्तार १५०-२०० मील है और यह चीन तथा भारत का मध्यवर्ती है।[१०६]

(ख) नदी

कावेरी

कावेरी दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी है। भागवतपुराण के अनुसार कावेरी नदी का उद्‌गम स्थान सह्यपर्वत है।[१०७] महावीरचरित में भवभूति लिखते हैं कि यह नदी मलयाचल को परिवेष्टित करके बह रही है।[१०८] विभीषण अयोध्या लौटते हुए रामचन्द्र को कावेरी नदी की तीरभूमि को दिखाते हुए कहते हैं– "महाराज रामचन्द्र! यह कावेरी तटवर्ती भूमिखण्ड अब दिखाई देने लगे हैं, जिसमें समीपवर्ती पर्वतों की सीमा में ताम्बूली लताओं

से गिरती हुई मकरन्द की धारा से हर्षित सुपारी के वृक्षों की सघन पक्तियों से आवृत्त भूमियॉ फैली हुई हैं और बहुतेरे पुराने वृक्षों के समूहों में अनेक तपोवन के आश्रम दिखायी पड रहे हैं, जिनमें अपनी अविचल तपस्या एव स्वाध्याय के बल पर ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले तथा कल्पान्त के अवसर के साथी मुनिगण निवास करते हैं।[१०९] बालरामायण में भी उक्त सन्दर्भ में ही कावेरी नदी का उल्लेख हुआ है। राजशेखर लिखते हैं कि इस नदी के दोनों तट नारियल और सुपारी के वृक्षों की पक्ति से सुशोभित हैं।[११०]

कावेरी नदी मैसूर प्रदेश के कुर्ग जिले के ब्रह्मगिरि पर्वत के चन्द्रतीर्थ नामक स्रोत से निकलती है। यह ४७५ मील लम्बा मार्ग पार करके पूर्व समुद्र बगाल की खाडी में गिर जाती है।[१११]

कौशिकी नदी

अनर्घराघव के अनुसार राम-लक्ष्मण जब महर्षि विश्वामित्र के सिद्धाश्रम में जाते हैं तो वहॉ घूमते हुए वे कौशिकी नदी के दर्शन से अपने को पवित्र करने की इच्छा करते हैं। इस नदी के तट पर पलाश के सुन्दर वन हैं।[११२]

कौशिकी नदी आधुनिक कोसी नदी ही है[११३] जो पूर्वी नेपाल से निकलकर बिहार में बहती हुई बगाल में गगा में मिल जाती हैं।[११४]

गोदावरी

वायुपुराण के अनुसार गोदावरी सह्य पर्वत से निकली एक पवित्र नदी है।[११५] वनवास काल में राम गोदावरी के तटवर्ती प्रदेशों में बहुत समय तक रहे हैं।[११६] महावीरचरित के अनुसार यह नदी प्रस्रवण पर्वत से होकर बहती है।[११७] भगवान् राम ने गोदावरी के किनारे पञ्चवटी में पर्णकुटी बनायी थी।[११८] मुरारि[११९], शक्तिभद्र[१२०], हनुमन्नाटककार[१२१] और जयदेव[१२२] ने भी इसका उल्लेख किया है। उत्तररामचरित में राम शम्बूक-वध हेतु जब दण्डकारण्य जाते हैं तो वहॉ गोदावरी के तटवर्ती प्रदेशों को देखकर उन्हे अपने पूर्व दिनों का स्मरण हो आता है।[१२३]

गोदावरी नदी भारत की प्रसिद्ध सात-नदियों में से एक है। नासिक के पास यह नदी आज भी बहती है। वहॉ इसके दोनों ओर देवालय हैं। रामकुण्ड, सीताकुण्ड, लक्ष्मणकुण्ड, धनुषकुण्ड आदि तीर्थ हैं। गोदावरी पश्चिमी घाट की पर्वत-श्रेणी =यम्बक-पर्वत से निकलकर ९०० मील पूर्व-दक्षिण की ओर बहकर पूर्वीघाट नामक पर्वत श्रेणी के पास बगोपसागर में मिल जाती हैं।[१२४]

गोमती

गोमती गगा की सहायक नदी है। पुराणानुसार इसकी स्थिति नैमिषेय क्षेत्र में है।[१२५] दिङ्नाग ने नैमिष में गोमती का वर्णन किया है। राम लक्ष्मण के साथ नैमिषारण्य में पहुँचते हैं। वे भगवान् वाल्मीकि के दर्शन के लिए गोमती के तीर पर स्थित उनके आश्रम की ओर जाते हैं। लक्ष्मण गोमती नदी की शोभा को देखकर राम से कहते हैं- "हे नरश्रेष्ठ, आपके सामने मरकत-मणि सरीखे हरे जल का एक मात्र उत्पत्ति-स्थान, मदमाती कलहसी के मधुर सगीत से रमणीय तटों वाली, खिले नीले कमलों के समूहों से दिशाओं के कोनों को सुवासित करती हुई, यह गोमती दिखाई दे रही है।"[१२६] इस गोमती नदी में राम-लक्ष्मण सीता द्वारा अर्पित कुन्दमाला को देखते हैं।[१२७]

गोमती नदी उत्तर प्रदेश में पीलीभीत जिले के वीसलपुर नगर के समीप एक झील से निकलकर सीतापुर, लखनऊ, सुलतानपुर जिलों को पार कर गगा में मिल जाती है। यह नैमिषारण्य में से बहती है। उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ इसके तट पर है।[१२८]

तमसा नदी

तमसा वह प्रसिद्ध नदी है जहॉ मध्याह्नकालिक स्नान के लिए गए हुए महर्षि वाल्मीकि ने परस्पर विहार करने वाले क्रौञ्च नामक पक्षियों के जोडे में से एक को किसी व्याध के द्वारा मारे जाते हुए देखा था तथा इस करुण दृश्य को देखकर उनके मुख से अकस्मात् व्याध के शाप के लिये अनुष्टुप् छन्दोबद्ध वाणी प्रादुर्भूत हुई थी जो रामायण की रचना का कारण बनी थी। भवभूति ने उत्तररामचरित में उक्त कथा को सुन्दर रूप में वर्णित किया है।[१२९] साथ ही तमसा को सीता की हितैषिणी पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है।[१३०]

तमसा नदी मध्यप्रदेश में कटनी के समीप कैमूर की पहाडियों से निकलकर विन्ध्यप्रदेश के रीवा जिले में उत्तर को बहती हुई गगा-यमुना के सगम से लगभग २०-२२ मील पूर्व में गगा में मिल जाती है।[१३१]

ताम्रपर्णी नदी

ताम्रपर्णी दक्षिण भारत की नदी है। बालरामायण के अनुसार यह नदी मलय पर्वत से निकलती है। अयोध्या लौटते हुए राम सीता को ताम्रपर्णी नदी को दिखलाते हुए कहते हैं कि इस मलयशैल में ताम्रपर्णी नदी को देखो, जो

रत्नों की जननी होने के कारण समस्त नदियों में भगवान् समुद्र की प्रिय पत्नी है। इसका जल चन्दन वन से व्याप्त तट प्रदेश में स्थित नारियल के जल से स्वादिष्ट हैं।[१३२]

वर्तमान समय में ताम्रपर्णी नदी ताम्बरवरी के नाम से प्रसिद्ध है। यह मलयपर्वत श्रेणी में अगस्त्यकुण्ड से निकलकर पूर्वी समुद्र में गिरती है। यह स्थान मनार की खाडी कहलाता है। इस समय भी यह स्थान मोतियों तथा मत्स्य उद्योग के लिये प्रसिद्ध है।[१३३]

नर्मदा

नर्मदा दक्षिण की एक पवित्र नदी है। पुराणानुसार यह विन्ध्यपर्वत के पुत्र पर्यकगिरि से निकली है।[१३४] इसका अपर नाम रेवा भी है। राजशेखर ने इसका उल्लेख किया है। बालरामायण में सुमन्त्र दशरथ से राम के वनगमन का वृत्तान्त सुनाते हुए कहते हैं कि जब राम विन्ध्यपर्वत को पारकर आगे चलते हैं तो पर्वतों की जयपताकाभूत, विन्ध्यपर्वत की भुजारूप, हाथियों से पिए गए जल वाली पश्चिम सागर की प्रेयसी नर्मदा नदी दिखाई पडती है, जिसे वे सीता के साथ पार करते हैं तथा दक्षिण दिशा की ओर चल पडते है।[१३५] राजशेखर के अनुसार भगवती नर्मदा आर्यावर्त्त और दक्षिणा पथ की विभाग रेखा है।[१३६]

वर्तमान समय में नर्मदा नदी विन्ध्य शृखला के अमरकण्टक पर्वत की मेखल शृखला से निकलकर ८०० मील तक बहकर पश्चिम समुद्र (अरब सागर) में खम्वात की खाडी में भृगुकच्छ (भडौच) के समीप गिरती है।[१३७]

भागीरथी गंगा

गगा भारतवर्ष की परम पवित्र प्रसिद्ध नदी है। पुराणानुसार गगा पहले स्वर्ग में थी। कपिल मुनि ने जब राजा सगर के साठ पुत्रों को भस्म कर दिया, तब उनके उद्धारार्थ राजा भगीरथ तपोबल से गगा जी को पृथ्वी पर लाए। इसी से गगा जी को भागीरथी कहते हैं। जब गगा स्वर्ग से गिरी थी, तब सारी पृथ्वी न बह जाए, इसलिये शकर जी ने इन्हें अपनी जटा में रोक लिया था। राजा भगीरथ जब गगा को गगासागर लिए जा रहे थे, तब मार्ग में जह्नु ऋषि ने इन्हें पी लिया और बडी प्रार्थना पर अपनी जॉघ से निकाला है, अत गगा को जाह्नवी भी कहते हैं।[१३८] इस भागीरथी गगा का एक नाम मन्दाकिनी है[१३९] जिसका प्रयोग भवभूति ने किया है।[१४०]

आलोच्य नाटकों में विविध सन्दर्भों में गगा का उल्लेख हुआ है। प्रतिमानाटक में काञ्चनपार्श्व मृगों की विशेषता में कहा गया है कि ये मृग हिमालय की सातवीं चोटी पर भगवान् शिव के सिर से गिरने वाली गगा-जल पीते हैं।[१८१] कुन्दमाला में इसे पापनाशिका तथा पृथ्वी की हारलता के समान कहा गया है।[१८२] इस नाटक की कथा का गगा से विशेष सम्बन्ध है। सीता दोहद के रूप में भागीरथी का दर्शन करना चाहती है। लक्ष्मण राम की आज्ञा से सीता को भागीरथी के तट पर छोड आता है। गगा का तटवर्ती शीतल मन्द, सुगन्ध समीर सीता की सेवा में लग जाता है। लक्ष्मण भागीरथी से प्रार्थना करता है- "हे भागीरथि, आप भी इसे थकने पर कमलों की सुवास से सुगन्धित तरगों के वायु से अनुगृहीत करो और जब यह स्नान के लिये आपके जल में उतरे, तो थोडी देर के लिये अपने जल के वेग को शान्त कर लो।"[१८३] तथा चला जाता है। इधर वाल्मीकि जी को अपने शिष्यों से सीता का समाचार मिलता है और वे उसे अपने आश्रम में ले जाते हैं। जाते समय सीता श्रीगगा से प्रार्थना करती हैं–"हे भगवति भागीरथि, यदि मैं स्वस्थ रहकर बालक उत्पन्न करूँगी, तो प्रतिदिन कुन्द नामक फूलों की सुन्दर माला बनाकर आपकी भेंट किया करूँगी।"[१८४]

उत्तररामचरित में चित्रवीथी दर्शन में गगावतरण की कथा का सकेत है। राम कहते हैं- "रघुकुल की देवि! आपको प्रणाम है! भगवति! राजा सगर के यज्ञ के घोडे को खोजने में व्याकुल पृथ्वी को खोदने वाले तथा महर्षि कपिल की क्रोधाग्नि से दग्ध अपने पिता दिलीप के भी पितामह सगरपुत्रों के शारीरिक कष्टों का तनिक भी विचार न करते हुए, भगीरथ ने घोर तपस्या कर तुम्हारे पवित्र जल के सम्पर्क से उद्धार कर दिया था। वह रघुकुल की प्रसिद्ध देवि माँ! पुत्रवधू सीता के लिए भगवती अरुन्धती की भाँति सदा कल्याण-कारिणी होना।[१३६]

सीता-त्याग के प्रसग में गगा को विशेष महत्त्व दिया गया है। भवभूति लिखते हैं कि जब लक्ष्मण सीता जी को वाल्मीकि-ऋषि के तपोवन के पास छोड़कर चले गए थे, तब प्रसव-वेदना के कारण वे गगा जी में कूद पडी थी। वहाँ उनके दो पुत्र हुए, जिनको गगा एव पृथ्वी ने पाताल में पहुँचा दिया, दुग्धत्याग के अनतर गगा जी ने उनको वाल्मीकि के आश्रम पर पहुँचा दिया।[१८६] अपने पुत्रों की बारहवीं वर्षगाँठ पर सीता पृथ्वी पर आई हैं जिसे गगा जी के प्रभाव से मनुष्य तो क्या, वनदेवता भी नहीं देख सकते हैं।[१८७]

अनर्घराघवकार लिखते हैं कि राम शिव के सिर पर माल्यभाव को प्राप्त

गगा जी को पार करके चित्रकूटाचल की ओर चलते हैं। कवि ने राम के अयोध्या लौटने के प्रसग में गगा जी के माहात्म्य पर प्रकाश डाला है। गगा को देखकर राम उसके महत्त्व को बताते हुए सीता से कहते हैं– "कमल-योनि ब्रह्मा के घर से समुद्र तक आने वाली तथा महादेव के मस्तक को अलकृत करने वाली यही हैं भगवती भागीरथी। इसके तट पर जो लोग शरीर त्याग करते हैं उन्हें यह प्रवाह के विरुद्ध दिशा में प्रवाह की अपेक्षा तेजी से चलकर शीघ्र ब्रह्मलोक पहुँचा देती हैं।"[१४८] लक्ष्मण विचार करते हैं कि "भगवान् विष्णु के चरणनखकान्तियों से, महादेव के शिरोभूषण चन्द्रमा की किरणों से और हिमालय के निष्यन्द रूप से पग-पग पर गगा की कान्ति समृद्ध होती रहती है।"[१४६] वे ही हाथ जोडकर प्रार्थना करते हैं– "महादेव के सिर पर खेलने वाली तथा चन्द्रमा के बालमित्र जलों से सगरपुत्रों की चितास्वरूप सागर को पवित्र करने वाली यह गगा हमारे पापों को दूर करें।"[१५०]

गगा हिमालय से निकलने के पश्चात् १५६० मील पूर्व की ओर बहकर बगाल की खाडी में गिरती है।[१५१]

मन्दाकिनी

पुराणानुसार मन्दाकिनी स्वर्ग में स्थित गगा की एक धारा है।[१५२] महाभारत के अनुसार मन्दाकिनी नदी सभी पापों का नाश करने वाली, चित्रकूट पर्वत पर स्थित एक पवित्र नदी है।[१५३] महाकवि कालिदास ने चित्रकूट के प्रसग में इसका वर्णन किया हैं।[१५४] भवभूति ने चित्रकूट पर्वत के समीप ही मन्दाकिनी का उल्लेख किया है। महावीरचरित में राम विराध को मारने के लिए मन्दाकिनी के पावन तटों पर स्थित चित्रकूट पर्वत की ओर जाते हैं।[१५५] उत्तररामचरित में प्रसग आया है कि राम वनवास काल में सीता के साथ चित्रकूट के मार्ग में मन्दाकिनी में विहार किया करते थे।[१५६]

आज चित्रकूट में पयस्विनी नदी के साथ मिलती एक छोटी सी नदी को मन्दाकिनी कहते हैं।[१५७]

मुरला

भवभूति ने उत्तररामचरित में एक पात्र के रूप में तमसा के साथ मुरला नदी को प्रस्तुत किया है। यह तमसा से कहती है कि उसे अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा ने गोदावरी नदी के पास एक सदेश देकर भेजा

हैं।[१५८]

मुरला की वर्तमान समय में स्थिति संदिग्ध है। डॉ० कृष्ण कुमार ने विभिन्न विद्वानों के मत प्रस्तुत कर मुरला का गोदावरी की सहायक नदी के रूप में दण्डकारण्य में बहना निश्चित किया है, जो उपयुक्त जान पडता है।[१५६]

यमुना नदी

यमुना भारत की सुप्रसिद्ध नदी है। पुराणानुसार यह यम की बहिन तथा सूर्य की पुत्री है।[१६०] अनर्घराघवकार ने इसका वर्णन किया है। अयोध्या लौटते समय विमान में बैठे राम यमुना को दिखलाते हुए सीता से कहते हैं– "देवी पृथ्वी के लिए कस्तूरी-लेप-भूषण की तरह दीखने वाली, गगा की सगिनी यह यमुना अपने तट पर रहने वाले जनों को प्रेम की प्रचुरता के कारण अपने भाई यमराज के हाथों उसे बलपूर्वक छीनकर अपने पिता के मण्डल तक पहॅचा देती है जहॉ किसी प्रकार का कोई क्लेश नहीं होता है।[१६१] राजशेखर ने भी इसका वर्णन किया है।[१६२] उत्तररामचरित में चित्रवीथी दर्शन में यमुना के तट पर श्यामवट का उल्लेख हुआ है।[१६३] यमुना के तट पर रहने वाले महातपस्वी ऋषिगण लवण नामक राक्षस से भयभीत होकर श्रीराम के पास जाते हैं।[१६४] बालरामायण में सुमन्त्र राजा दशरथ से बताते हैं कि श्रीराम प्रयाग के पश्चिम में एक रात बिताकर यमुना नदी को पारकर चित्रकूट पर्वत पर आ गए।[१६५]

यमुना नदी हिमालय की शृखलाओं से निकलकर उत्तर-प्रदेश के मैदानों को पार करती हुई प्रयाग में गगा में मिल जाती है। हिमालय में इसका उद्गम स्थान यमुनोत्तरी कहलाता है।

सरयू नदी

सरयू वह प्रसिद्ध नदी है जिसके तट पर श्रीराम की नगरी अयोध्या बसी है। महाभारत के अनुसार यह हिमालय के स्वर्ण शिखर से उद्भूत गगा की सात धाराओं में से एक हैं, जो लोग इसका जल पीते हैं उनके सब पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं।[१६६] अनर्घराघवकार लिखते हैं कि वनवास के बाद अयोध्या लौटे राम विमान में बैठे हुए ही सरयू को देखकर प्रणाम करते हैं तथा सीता से कहते हैं– "यूपाकुर समुदाय की गिनती से जहॉ मनुवशी राजगण के यज्ञों की गिनती की जा सकती है। वह इक्ष्वाकु राजगण की

प्रधान रानी अयोध्या के पट्टवस्त्र की शोभा धारण करने वाली भगवती सरयू दीख रही है।"[१६७] राजशेखर के अनुसार इस सरयू नदी की धारा से ही अयोध्या घिरी हुई है।[१६८]

वर्तमान समय में भी अयोध्या सरयू के तट पर ही है। सरयू का मूल उद्गम मानसरोवर है। यहाँ इसका नाम कोडयानी हैं। तदनन्तर यह कुमायुँ के पिथोरागढ जिले के पर्वतीय क्षेत्रों से होकर काली नदी के नाम से भारत और नेपाल की सीमाओं का विभाजन करती हुई टनकपुर के समीप मैदानों में प्रवेश करती है। यहाँ इसको शारदा कहते हैं। तदनन्तर यह नदी उत्तरी उत्तरप्रदेश में से बहती हुई छपारे के समीप गगा में मिल जाती है। कहीं-कहीं यह घाघरा भी कहलाती है।[१६९]

(ग) सरोवर

पम्पासर

पम्पासर दक्षिण में स्थित एक प्रसिद्ध सरोवर है।[१७०] महावीरचरित के अनुसार यह सरोवर ऋष्यमूक पर्वत पर स्थित है तथा इसके समीप में मतग ऋषि का आश्रम है।[१७१] अयोध्या लौटते हुए राम को विभीषण पम्पा-सरोवर के दर्शन कराते हैं। अपनी रमणीयता से यह बलपूर्वक ऑखों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता हैं।[१७२] उत्तररामचरित में चित्रवीथी दर्शन में पम्पा-सरोवर का वर्णन आया है। राम सीता को पम्पासर दिखलाते हुए कहते हैं कि यह वही पम्पासर है जहॉ तुम्हारा विरह मेरे लिए अत्यन्त दु खदायी हो गया था, क्योंकि इस सरोवर में अत्यन्त मधुर शब्द करते हुए मल्लिकाक्ष हसों के पखों से मृणाल-दण्ड हिल रहे थे। नीले कमलों वाले प्रदेशों की ऐसी शोभा देखकर तुम्हारे नेत्रों का स्मरण हो जाने के कारण मेरे नेत्रों में ऑसू भर आए। मैंने डबडबायी ऑखों से इन प्रदेशों को देखा था।[१७३] आश्चर्यचूडामणि में भी पम्पासर का उल्लेख हुआ है। हनुमान् अशोक वाटिका में सीता जी से कहते हैं कि आपके वियोग में व्याकुल राम का चित्त आपके गुणों में ही रमा रहा, पथिकों के सुहृद् पम्पासर की रमणीयता भी उनके चित्त को आकृष्ट न कर सकीं।[१७४]

वर्तमान समय में हम्पी (विजयनगर)[१७५] के समीप पम्पा सरोवर एक पर्वत के नीचे लघुरूप में है। सरोवर से लगे मन्दिर में शबरी गुफा तथा रामचन्द्र जी के चरण-चिह्न राम के यहॉ आने के सकेतक हैं। पर्वतीय भाग में स्थित बाली दुर्ग में एक विशाल गुफा है।[१७६]

मानसरोवर

राजशेखर ने बालरामायण में मानसरोवर का उल्लेख किया है। यह कैलास पर्वत पर स्थित है। रत्नशेखर नामक विद्याधर अयोध्या लौटते हुए राम को मानसरोवर का परिचय देता है, जिसके अनुसार इसमें कलहस विराजते हैं, स्वर्ण-कमल खिलते हैं, भगवान् शकर सपरिवार विहार करते हैं। यह देवों का सरोवर है।[१७७]

मानसरोवर भारतीयों के लिये परमपवित्र तीर्थ रहा है। इसके साथ अनेक पौराणिक कथाए जुडी हैं।[१७८] वर्तमान समय में यह सरोवर तिब्बत में समुद्र के धरातल से १५,००० फीट ऊँचाई पर स्थित है। इसका जल अत्यन्त स्वच्छ और अद्भुत नीलाभ है। इसका आकार अण्डकार है और इसका बाहरी घेरा २२ मील का है। यहॉ हस बहुत हैं। वृक्ष, पुष्पादि नहीं हैं।[१७९]

(घ) वन-प्रदेश

जनस्थान दण्डकारण्य का एक भाग है जो हिसक पशुओं से व्याप्त है, विकट गिरि-कन्दराओं से युक्त है तथा इसकी सीमाओं में स्थित वन दक्षिण दिशा तक फैले हुए हैं। वनवास काल में श्रीराम ने कुछ समय यहॉ निवास किया था। यहीं उन्होनें खर-दूषण आदि अनेकों राक्षसों को मारा था।[१८०] जिससे यह स्थान ऋषियों के लिये निष्कण्टक हो गया था।[१८१] इसी स्थान से रावण ने सीता का अपहरण किया था। प्रतिमानाटक में सीता का हाथ पकडकर रावण कहता है– “हे जन-स्थानवासी तपस्वियों, आप लोग सुनें– सीता को मैं रावण बलपूर्वक हरण कर ले जा रहा हूँ। यदि राम को अपने क्षात्रधर्म के प्रति कुछ भी आस्था है तो पराक्रम प्रकट करें।”[१८२]

उत्तररामचरित में चित्रवीथी दर्शन में जनस्थान का दृश्य देखकर राम को वहॉ दु खदायी घटनाओं का स्मरण हो आता है। इस सन्दर्भ में भवभूति द्वारा लक्ष्मण के मुख से प्रस्तुत ये भावात्मक शब्द द्रष्टव्य हैं– “तदनन्तर उन नीच राक्षसों ने सुवर्ण मृग के छल से ऐसा दुष्कर्म किया जो कि प्रतिकार किए जाने पर भी हमको पीडित कर रहा है। उस सुनसान जन-स्थान में विकल इन्द्रियों वाले आर्य के चरित्रों से मूर्छा आदि व्यापारों से एक बार तो पत्थर भी रो उठता है और वज्र का हृदय भी टुकडे-टुकडे हो जाता हैं।”[१८३]

जनस्थान में ही शम्बूक ने तप किया था।[१८४] राम ने वहॉ जाकर शम्बूक का वध किया था।[१८५] इस समय जनस्थान को देखकर राम पूर्व वृत्तान्तों को

प्रत्यक्ष सा अनुभव करते हैं।[१८६] भरत के आदेश पर सुमन्त्र राम की कुशलता का समाचार जानने के लिये जनस्थान जाते हैं।[१८७] पुष्पक विमान से राम के साथ अयोध्या लौटती हुई सीता जनस्थान के देवताओं को प्रणाम करती हैं।[१८८]

डॉ० वडेर के अनुसार जनस्थान गोदावरी के मुहाने के समीप के प्रदेश का नाम था।[१८९] यह आधुनिक नासिक के आस-पास का क्षेत्र रहा होगा।[१९०]

दण्डकारण्य

दण्डकारण्य विन्ध्याचल से गोदावरी तक फैला एक प्राचीन वन है।[१९१] महाकवि भवभूति ने दण्डकारण्य के कोमल एव कठोर रूपों का वर्णन किया है। उनके अनुसार दण्डकारण्य में कहीं हरियाली के कारण स्निग्ध तथा श्यामल भू-भाग है, कहीं रूखे और डरावने दृश्य। थोडी-थोडी दूर पर झरने झर रहे हैं। उनके प्रपातकालीन निनाद से दिशाए मुखरित हो रही हैं। कहीं ऋषियों के द्वारा सेवित तीर्थ हैं, कहीं मुनियों से अधिष्ठित आश्रम, कहीं पर्वत हैं, तो कहीं नदियॉ, कहीं गड्ढे हैं तो कहीं सघन वन। कहीं एक दम निस्तब्धता छायी हुई है और कहीं हिसक पशुओं का घोर गर्जन सुनाई पड रहा है। कहीं स्वेच्छा से सुखपूर्वक सोये हुए मोटे-मोटे सर्पो की फुकारों से आग धधक उठी है। कहीं-कहीं गड्ढों में थोडा सा पानी पडा है और कहीं प्यास से व्याकुल गिरगिट अजगर के पसीने को पीकर अपनी प्यास बुझा रहे हैं।[१९२] दण्डक-वन-प्रदेश में अगस्त्य प्रभृति अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषि रहते हैं।[१९३] जामदग्न्य श्रीराम से धनुष प्रदान करते हुए कहते है-"पुण्य सरोवरों के तट पर दण्डकारण्य में बहुत से ऋषि रहते है, उन्हें मारने, सताने के लिए वहॉ लका के राक्षस घूमा करते हैं, उनके विनाश में इस धनुष का उपयोग हो सकता है, अत इस धनुष के साथ इसका अधिकार भी तुम्हें सौंपता हूॅ।"[१९४]

वनवास-काल में राम सीता सहित बहुत समय तक दण्डकारण्य में रहे हैं।[१९५] यहीं विराध दनुकबन्ध आदि राक्षस रहते हैं।[१९६] यहीं राम ने खर, दूषण, त्रिशिरा आदि हजारों राक्षसों को मारा था।[१९७] इस दण्डक वन में लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक-कान काटे थे।[१९८] यहीं से सीता का अपहरण हुआ था। राज्याभिषेक के उपरान्त राम शम्बूक-वध हेतु दण्डक-वन जाते हैं।[१९९]

दण्डकारण्य की स्थिति भी जनस्थान ही रही होगी।

नैमिषारण्य

नैमिषारण्य एक पवित्र तीर्थस्थल है। श्रीराम ने यहॉ अश्वमेध यज्ञ किया था।[२००] नैमिषीय ऋषियों के तप के प्रभाव के विषय में भास लिखते हैं कि नैमिषीय ऋषिगण ध्यानमात्र से ही अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त कर लेते हैं।[२०१] दिङ्नाग ने कुन्दमाला में नैमिषारण्य के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन विस्तारपूर्वक किया है। चतुर्थ अक में वाल्मीकि शिष्य कण्व राम-लक्ष्मण को नैमिषारण्य के नैसर्गिक दृश्यों को दिखलाता हुआ कहता है कि यहॉ का वनप्रदेश नानाविध पुष्पों की सुगन्ध से सुवासित है, फलों के भार से झुके हजारों वृक्षों की पक्तियों से हरा-भरा है। निर्विघ्न तपस्या की सिद्धि का स्थान है। इक्ष्वाकुवश के राजा लोग यहॉ सैंकडों यज्ञ करते हैं तथा अपने पुत्रों को राज्य का भार सौंपकर मोक्ष-प्राप्ति की साधना के लिए इस वन का आश्रय लेते हैं।[२०२] अन्य तपोवनों से नैमिषारण्य का वैशिष्ट्य दिखलाते हुए कण्व राम से कहते हैं –"इस वन में ग्रीष्मकाल की प्रचण्ड आतप (घाम) भी भगवान् शकर के सिर पर सदा विराजमान चन्द्रमा की चॉदनी से मिलकर अपनी उष्णता को छोड कुछ शीतल हो जाता है। इसलिये यहॉ के वृक्षों के पत्ते नहीं मुरझाते और न तालाबों का पानी ही सूखता है। लोगों को सताप नहीं मालूम होता। परन्तु ऑखों को प्रकाशभाव देता है। इस नैमिष वन में निरन्तर यज्ञ के होने से इन्द्र सदा उपस्थित रहते हैं। नन्दन वन के चन्दन के पेडों को छोडकर इन ऊॅचे पेडों पर जिन्हें सिर ऊॅचा उठाकर देखना पडता है– इन्द्र का हाथी बॉधा जाता है। मत्त ऐरावत के गले की रस्सी के बाधने से पडे हुए चिह्न इन पेडों पर वर्तमान हैं। इस तपोवन में सामगान को सुनने में हृदय को एकाग्र तथा निश्चल कर और धीरे-धीरे हिलते हुए मत्त हाथियों के कर्णताल गाल के मद को पीने में व्यस्त भौरों के कार्य में कदापि विघ्न नहीं डाल रहें हैं।[२०३]

राम के मन में नैमिषारण्य के प्रति बहुत सम्मान हैं। वे कहते हैं– "मैं नैमिष में जगलों की आग को यज्ञ और हवन की आग समझकर, पेडों को यज्ञ के यूप समझकर, पक्षियों की अस्पष्ट ध्वनि को मुनियों द्वारा गाए गए साम की लय समझकर और जगली हरिणों को तपस्वी समझकर सम्मान दे रहा हूॅ। इस प्रकार जैसे-तैसे कष्ट से भूमि पर पैर रखता चला जा रहा हूॅ। यहॉ पर बड़ा भारी यज्ञ निरन्तर चल रहा है अत इस धार्मिक अरण्य ने भगवान् इन्द्र को नन्दनवन भी भुला दिया है। इन्द्राणी सदा ही यहॉ से

इन्द्र के लिए जाने वाली आवाज को कान लगाकर ध्यान में रखती है और आवाज सुनते ही अपनी सुहाग की माला उतारकर वियोग सूचक जूडा बना लेती है। मुनियों के पुण्यमय मधुर साम के सगीत प्रवासियों के मन को भी बहला देते हैं।"[२०४]

इस समय उत्तर पूर्वी रेलवे पर लखनऊ से बालामाऊ जाने वाले मार्ग पर नीमसार स्टेशन है। इसके समीप ही नैमिषारण्य है। यहा चक्रतीर्थ, पञ्चप्रयाग, ललिता देवी, जानकी कुण्ड, रुद्रावर्त आदि दर्शनीय तीर्थ हैं।[२०५]

पञ्चवटी

रामायण की कथा में पञ्चवटी का विशेष स्थान है। वनवास काल में राम ने बहुत समय पञ्चवटी में निवास किया था। महावीरचरित के अनुसार राम चित्रकूट से शरभगाश्रम को जाते हैं और वहॉ से अगस्त्य ऋषि के आश्रम में जाते हैं तथा उनके आदेश से पञ्चवटी में निवास बनाते हैं। यह पञ्चवटी गोदावरी के तट पर स्थित है। यहीं लक्ष्मण शूर्पणखा के नाक-कान काटते हैं। यहीं से रावण ने सीता का हरण किया था।[२०६] अनर्घराघव,[२०७] आश्चर्यचूडामणि[२०८] एव हनुमन्नाटक[२०९] में भी उक्त कथा-सकेतों के साथ पञ्चवटी का वर्णन है। हनुमन्नाटककार ने पञ्चवटी एव वहॉ बनाई कुटिया का बहुत सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं–"लक्ष्मण जी के साथ जाते हुए श्रीराम ने सीता जी को बेकली देखकर वहॉ ही गोदावरी नदी के आसन्नवर्त्ती दण्डक नामक वन में अपनी पर्णकुटी बनाई। लक्ष्मण जी कुटी की रमणीयता देखकर कह उठे हे रघूत्तम! वट के पॉच वृक्षों का समूह यह पञ्चवटी हमारी कुटी के सर्वथा योग्य हैं। इन पॉचों वटवृक्षों की जड में सरस्वती के पॉच कुण्ड है। यहॉ पथिकों को जल,छाया आदि मिलती है। इसके दोनों ओर बडी सुन्दर भूमि है। यह स्त्री-पुत्रादि की माया में फॅसे हुए पुरुषों के क्लेश को दूर करने वाली औषधि की वाटिका है। इसके समीप ही गोदावरी नाचती हुई चली जा रही है, जिसके तटों पर तरग उठ रही है। स्रोतों में कल्लोलों का शब्द हो रहा है, दिव्यानन्द का तो यह गोदावरी मानों स्थान है। यह ससार सागर की नौका है और प्राणियों को साधारण कर्मों से इसका मिलना अत्यन्त कठिन है।"[२१०]

उत्तररामचरित में भवभूति ने अनेक स्थलों पर पञ्चवटी का उल्लेख किया है। यथा, चित्रवीथी दर्शन में पञ्चवटी में शूर्पणखा-विवाद[२११] द्वितीय अक

में आत्रेयी का वाल्मीकि आश्रम से वनदेवता द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पञ्चवटी में प्रवेश करके गोदावरी के किनारे-किनारे चलकर अगस्त्याश्रम में पहुँचना,[२१२] शम्बूक-वध हेतु दण्डकवन में आए राम का पञ्चवटी में आकर सीता के साथ वनवास-काल के दिनों का स्मरण करना[२१३] आदि।

वर्तमान समय में पञ्चवटी महाराष्ट्र में नासिक के समीप मानी जाती है। नासिक बम्बई से ७५ मील पश्चिमोत्तर में है। नासिक और पञ्चवटी एक ही नगर के रूप में प्रसिद्ध है। इस नगर के बीच से गोदावरी नदी बहती है। गोदावरी के दक्षिण तट पर नगर का मुख्य भाग है जो नासिक कहलाता है तथा उत्तर तट का भाग पञ्चवटी कहा जाता है। गोदावरी से लगभग दो फर्लांग पर पञ्चवटी बस्ती में एक विशाल काला राम मन्दिर है। कुछ दूर पर वट के पाँच वृक्ष हैं। वृक्षों के पास एक मकान है, जिसमें सीतागुफा है।[२१४]

(ङ) आश्रम

अगस्त्याश्रम

भवभूति के अनुसार अगस्त्य ऋषि का आश्रम दण्डकारण्य में है। सीता को लेकर अयोध्या लौटते हुए राम को जब विभीषण अगस्त्य आश्रम का परिचय देते हैं तो राम विमानारूढ हो सभी के साथ अगस्त्य ऋषि की वन्दना करते हैं।[२१५] पुराणानुसार इन्होंने अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ मलयगिरि पर घोर तपस्या की थी।[२१६] बालरामायण में मलयपर्वत के साथ अगस्त्य आश्रम का वर्णन है।[२१७] यहाँ के वृक्षों की छाया में स्वाध्याय के अनन्तर विद्यार्थीगण विश्राम के सुख का अनुभव करते हैं, जो लोपामुद्रा की अञ्जलि के जल से प्रतिदिन सींचे गये हैं, अगस्त्य के इस आश्रम में रजोगुणी धर्मों से रहित वृक्षों की अनिर्वचनीय ही महिमा है जो अतिथियों के लिए सभी कालों में फलते हैं।[२१८] राजशेखर लिखते हैं कि भगवान् राम ऋषि अगस्त्य एव उनकी पत्नी लोपामुद्रा के आश्रम में जाकर उनके दर्शन करते हैं तथा आशीर्वाद लेकर ही अयोध्या लौटते हैं।[२१९]

उत्तररामचरित में भवभूति लिखते हैं कि वाल्मीकि-ऋषि के आश्रम में अध्ययन करने वाली तपस्विनी आत्रेयी वेदान्त-विद्या का अध्ययन करने के लिए वाल्मीकि के आश्रम को छोडकर अगस्त्य ८ादि ब्रह्मवेत्ताओं के पास दण्डकारण्य में आई हुई है और अगस्त्य अ।श्रम में जा रही है।[२२०]

इस समय अगस्त्य आश्रम नासिक से पूर्व में १५ मील दूर अकेला ग्राम में है। यहाँ अब भी एक विशाल कुण्ड 'अगस्त्य-कुण्ड' के नाम

से प्रसिद्ध है।[२२१]

भरद्वाज आश्रम

पौराणिक कोश के अनुसार भरद्वाज ऋषि का आश्रम गगा-यमुना सगम से थोडी दूर पर था।[२२२] रामायण के अनुसार वन जाते समय भगवान् राम इनके आश्रम में आए थे।[२२३] भवभूति ने उत्तररामचरित में इसका सकेत किया है। प्रथम अक के चित्रवीथी दर्शन के प्रसग में लक्ष्मण राम से कहते हैं कि यह चित्रकूट को जाने वाले मार्ग में यमुनातट पर भरद्वाज ऋषि द्वारा बताया गया श्याम नामक वटवृक्ष है।[२२४]

वर्तमान में भरद्वाज आश्रम इलाहाबाद के कर्नल गज मुहल्ले में स्थित हैं। आज यह भव्यता की दृष्टि से साधारण है। यहाँ शिव-परिवार के साथ भरद्वाज मुनि जी की मूर्ति है, बाए ओर याज्ञवल्क्य मुनि का मन्दिर एव गुफा है तथा प्रयागराज मन्दिर है। बिरला जन कल्याण ट्रस्ट द्वारा १६६८ ई० में इसका जीर्णोद्धार किया गया है।[२२५]

मतङ्ग आश्रम

महावीरचरित के अनुसार मतङ्ग ऋषि का आश्रम पम्पा सरोवर के समीप ऋष्यमूक पर्वत पर है। सिद्ध शबर तपस्विनी श्रमणा मतङ्गाश्रम में ही रहती है। जब राम-लक्ष्मण सीताहरण के बाद दण्डकारण्य में घूमते फिरते हैं, तभी श्रमणा उनके पास आती है तथा उन्हें विभीषण के आदेशानुसार मतङ्गाश्रम के दर्शन भी कराती है।[२२६] मुरारि ने भी कुछ अन्तर के साथ उक्त कथा का सकेत किया है तथा मतङ्गाश्रम का वर्णन किया है।[२२७] उत्तररामचरित में चित्रवीथी दर्शन में मतङ्गाश्रम का उल्लेख हुआ है।[२२८]

वर्तमान में ऋष्यमूकपर्वत[२२६] के पास की एक पहाडी मतगपर्वत कहलाती है। यह ऋष्यमूक का ही भाग है। इस पर एक मन्दिर है। कहा जाता है कि इसी शिखर पर मतङ्ग ऋषि का आश्रम था।[२३०]

वाल्मीकि आश्रम

कुन्दमाला एव उत्तररामचरित में सीता परित्याग की कथा के साथ वाल्मीकि-आश्रम का उल्लेख है। कुन्दमाला के अनुसार लक्ष्मण सीता को भागीरथी नदी के तट पर छोडकर चला जाता है। वाल्मीकि अपने शिष्यों से उसका समाचार पाकर उसे अपने आश्रम में ले जाते हैं।[२३१] वहीं सीता लव एव कुश को जन्म देती हैं।[२३२] राम नैमिषारण्य में अश्वमेध यज्ञ करते हैं तथा

उसका निमन्त्रण लेकर राम का दूत वाल्मीकि के तपोवन में भी आता है।[२३३] वाल्मीकि लव-कुश एव सीता को लेकर यज्ञ में सम्मिलित होने नैमिष जाते हैं।[२३४] भवभूति ने लव-कुश का वाल्मीकि आश्रम में पहुँचने का वृत्तान्त कुछ नवीनता के साथ प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार वाल्मीकि आश्रम में बडे-बडे ऋषि अध्ययन करने के लिये आते हैं। वाल्मीकि ने लव-कुश को वेदादि की शिक्षा दी है।[२३५]

रामायण के अनुसार वाल्मीकि आश्रम तमसा नदी के तट पर है, जहाँ स्नान करते हुए उन्होंने एक निषाद द्वारा क्रौञ्च पक्षी को मारा जाता देखा था तथा ब्रह्मा जी से प्रेरणा पाकर रामायण की रचना की थी।[२३६] साथ ही राम के वनवास काल में भ्रमण करने के प्रसग में वाल्मीकि आश्रम को चित्रकूट के निकट बताया गया है। राम सीता एव लक्ष्मण के साथ रमणीय एव मनोरम चित्रकूट पर्वत पर जाते हैं तथा वहीं वाल्मीकि आश्रम में जाकर महर्षि वाल्मीकि के दर्शन करते हैं। वाल्मीकि के परामर्श पर राम चित्रकूट में पर्णशाला बनाकर रहते हैं।[२३७] अध्यात्मरामायणकार ने भी इसका उल्लेख किया है कि वनवास-काल में श्रीराम चित्रकूट पर्वत की ओर गए जहाँ ऋषिगणों से समाकुल महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था।[२३८]

महर्षि वाल्मीकि का आश्रम तमसा नदी के तट पर था, आज वह नदी मध्य प्रदेश में कटनी के समीप कैमूर की पहाडियों से निकलकर विन्ध्यप्रदेश के रीवा जिले में उत्तर को बहती हुई गगा-यमुना के सगम से लगभग २०-२२ मील पूर्व में गगा में मिल जाती है। ऋषि वाल्मीकि का आश्रम इसी तमसा नदी के दाए किनारे पर, गगा नदी के दाए किनारे से थोडी दूर, इन दोनों नदियों के सगम के समीप ही था। तभी लक्ष्मण का सीता को गगा नदी पार कराना और वाल्मीकि का गगा तट पर आकर सीता को अपने आश्रम में ले जाना भौगोलिक दृष्टि से यथार्थ हो सकता है। इस बात की पुष्टि आधुनिक प्रमाणों से भी हो जाती है। इलाहाबाद जिले में मेजारोड नामक रेलवे स्टेशन है। वहाँ से लगभग पाँच किलोमीटर उत्तर में सिरसा नाम का एक कस्बा है। उसे 'सिरसा बाजार' भी कहते हैं। सिरसा बाजार से लगभग मिला हुआ, उससे पश्चिम दिशा में 'उपरौंडा' नामक गाँव है। इस गाँव के पश्चिम में गंगा और तमसा के सगम के समीप, तमसा के दाए किनारे पर आज भी महर्षि वाल्मीकि का आश्रम है।[२३९]

चित्रकूट के समीप भी आज एक वाल्मीकि आश्रम है। इलाहाबाद-कर्वी सडक मार्ग पर कर्वी से २० किमी० पहले लालापुर गाँव है। यहाँ एक पहाडी

पर वाल्मीकि आश्रम है। आश्रम के मार्ग में हनुमान् मन्दिर एव आसावर देवी मन्दिर है। महर्षि वाल्मीकि आश्रम धर्म सघ सस्कृत विद्यालय श्री रामानन्द जी महाराज द्वारा सचालित है। समीप में ओहन नदी बहती है।[२४०]

इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, हरियाणा, पजाब राज्यों में अनेक स्थल महर्षि वाल्मीकि के नाम से जुडे हैं, जहाँ आज भी महर्षि वाल्मीकि के मन्दिर, तीर्थस्थल एव आश्रम मिलते हैं।[२४१]

विश्वामित्र आश्रम

महर्षि विश्वामित्र का आश्रम सिद्धाश्रम है। यह हरे-भरे वातावरण से रमणीय कौशिकी नदी से घिरा हुआ है।[२४२] रामायण के अनुसार यज्ञ में राक्षसों के विघ्न डालने पर विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँगकर अपने आश्रम ले जाते हैं।[२४३] बालरामायण में भी राजशेखर ने इसका स्पष्ट सकेत किया है।[२४४] सिद्धाश्रम में ही राम ताडका नामक राक्षसी का वध करते हैं।[२४५] मुरारि ने विश्वामित्र के आश्रम की शोभा का सुन्दर चित्राकन किया है। इस महातीर्थ में भगवान् विष्णु ने वामनावतार में अद्भुत तप किया है। यहाँ रहने वाले ब्राह्मण निर्भय होकर अपने यजन-याजन आदि षट्कर्म का प्रयोग करते हैं। मुनिजनों के शरीर कठोर तपस्या से कृश हो गए हैं। वे प्रात साय पवित्र अग्निहोत्र करते हैं। मुनिस्त्रियाँ हरिणों के बच्चों को स्नेहपूर्वक पालती हैं। ऋषिकुमार चीटियों को श्यामक के चावल खिलाते हैं।[२४६] वस्तुत गाधिनन्दन विश्वामित्र का आश्रम बडा विचित्र है।

वर्तमान समय में बिहार राज्य में आरा जनपद में बक्सर विश्वामित्र के आश्रम स्थल सिद्धाश्रम के रूप में प्रसिद्ध है।[२४७] बक्सर मुगलसराय- पटना रेल-मार्ग पर पटना से पूर्व है।

शरभङ्ग आश्रम

रामायण के अनुसार शरभङ्ग ऋषि का आश्रम दण्डकारण्य में था। वनवास के समय श्रीराम इनके दर्शन के लिए इनके आश्रम में आए थे। शरभङ्ग ऋषि ने राम के दर्शन कर श्रीराम के सामने ही योगाग्नि में अपने शरीर को भस्म कर लिया था और वे दिव्य धाम को चले गए थे।[२४८] महावीरचरित में इस कथा का सकेत मिलता है कि राम चित्रकूट से शरभङ्गाश्रम को गए और उसके बाद शरभङ्ग ने आग में अपने को आहुत

कर दिया।[२४९]

वर्तमान समय में शरभड्ग आश्रम बादा जिले में है। इलाहाबाद-जबलपुर रेलवे मार्ग पर टिकरिया स्टेशन से लगभग १५ कि०मी० पर आश्रम है। आज यहाँ एक कुण्ड है, जिसे विराध कुण्ड कहते हैं, समीप में ही राम-मन्दिर है। कहा जाता है कि महर्षि शरभड्ग ने भगवान् श्रीराम के सामने अग्नि प्रज्वलित करके यहीं शरीर छोडा था।[२५०]

(च) नगर एवं ग्राम

अयोध्या

भगवान् राम की जन्मस्थली होने के कारण अयोध्या का भारतीय सस्कृति एव साहित्य में विशेष महत्त्व है। भारतवर्ष की सात पवित्र पुरियों में इसका प्रथम स्थान है।[२५१] महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में अयोध्या नगरी का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[२५२] उनके अनुसार यह नगरी कौशल जनपद में स्थित है तथा समस्त लोकों में विख्यात है। इसे स्वय महाराज मनु ने बनवाया और बसाया था।[२५३]

आलोच्य नाटकों में स्थान-स्थान पर इसका उल्लेख हुआ है। नाटककारों ने अयोध्या को रघुकुल के राजाओं की राजधानी कहा है।[२५४] यह सरयू नदी के तट पर बसी हुई है।[२५५] भास के अनुसार अयोध्या चारों ओर सघन एव शीतल वृक्षों से घिरी हुई है।[२५६] मुरारि ने इसे उत्तरकोशल की राजधानी कहा है।[२५७] अयोध्या का अपर नाम साकेत है। नाटकों में भी इसे साकेत कहा गया है।[२५८]

वर्तमान समय में अयोध्या नगरी सरयू नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित है। यह उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले में लखनऊ-वाराणसी मार्ग पर है। आज अयोध्या में श्रीराम जन्म-भूमि, हनुमान गढी, कनक-भवन, श्री गुरु वशिष्ठ मन्दिर, तुलसी चौरा, रामजी की पैडी (सरयू तट), वाल्मीकि रामायण मन्दिर आदि प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं।[२५९]

किष्किन्धा नगरी

किष्किन्धा नगरी भारत के दक्षिण में स्थित है। प्रतिमानाटक में भास लिखते हैं कि किष्किन्धा वनवासी वानरों का निवास-स्थान है।[२६०] अभिषेक नाटक में वे वर्णन करते हैं कि राम हनुमान् के निवेदन पर सुग्रीव को विजय देने के लिए किष्किन्धा नगरी को जाते हैं जहाँ का राजा बालि है, राम बालि को मारकर सुग्रीव को वहाँ का राजा बना देते हैं।[२६१] महावीरचरित में भवभूति ने बड़े भावात्मक शब्दों में इसका वर्णन किया है।[२६२] सुग्रीव के आदेश पर

किष्किन्धा नगरी से वानर सीता को ढूँढने सभी दिशाओं में जाते हैं।[२६३] अनर्घराघवकार ने कथा के अनुरूप किष्किन्धा का उल्लेख अनेकश किया है।[२६४]

वर्तमान समय में कर्नाटक प्रदेश में बल्लारी जनपद में हॉसपेट, हम्पी, विजयनगर, पारम्परिक किष्किन्धा क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। बम्बई मद्रास रेल मार्ग पर गुन्तकल जक्शन रेलवे स्टेशन से हुबली-धारवाड लाइन पर हॉसपेट स्टेशन है।[२६५]

कोसल

कोसल राज्य के राजा दशरथ हैं। भास लिखते हैं कि राजा दशरथ अपने बडे पुत्र राम को कोसल राज्य को सौंपने के लिए स्नेहपूर्वक बुलाते हैं।[२६६] कुन्दमाला में दशरथ के लिए 'कोसलाधिप' पद का प्रयोग हुआ है।[२६७] मुरारि ने दशरथ के राज्य को 'उत्तरकोसल' नाम दिया है। अनर्घराघव के अन्त में वसिष्ठ ऋषि राम से कहते हैं-''अब तुम रघुवशियों के इस सिहासन को अलकृत करो, तुम्हें सिहासनासीन पाकर सुराजा के राज्य में बसने के कारण उत्तर कोसल के प्रजाजन आनन्द प्राप्त करें।[२६८] आश्चर्यचूडामणि में भी उत्तरकोसल का उल्लेख हुआ है। निमित्त को सूचित करते हुए राम सीता से कहते हैं कि क्या, भरत अभी बच्चे हैं, ऐसा समझकर शत्रुओं ने हमारे उत्तर-कोसल पर आक्रमण कर दिया है?[२६९] राजशेखर ने बालरामायण में दशरथ के लिए 'उत्तरकोशलनरेन्द्र' तथा कौसल्या के लिए 'दक्षिणकोशलाधिपतिपुत्री' शब्द का प्रयोग किया है।[२७०]

भौगोलिक दृष्टि से आधुनिक गोंडा, फैजाबाद, बहराइच, बलिया और आजमगढ जिले उत्तर-कोसल में आते हैं। दक्षिण कोसल की स्थिति गगा के दक्षिण में थी।[२७१] दक्षिण कोसल को कुछ विद्वान् विदर्भ भी कहते हैं।[२७२]

नन्दिग्राम

नन्दिग्राम वह प्रसिद्ध स्थान है जहॉ भरत ने श्रीराम की चरणपादुकाओं का अभिषेक किया था तथा मुनिवेश धारणकर राम की प्रतीक्षा में १४ वर्ष तपस्या करते हुए व्यतीत किये थे एव अयोध्या की प्रजा का पालन किया था। भवभूति,[२७३] मुरारि[२७४] तथा हनुमन्नाटककार[२७५] ने इस कथा का सकेत किया है।

वर्तमान समय मे नन्दिग्राम अयोध्या-इलाहाबाद सडक मार्ग

पर अयोध्या से २१ किमी० दक्षिण दिशा में है। यहाँ भरतकुण्ड सरोवर, भरत मन्दिर, नन्दीश्वर-महादेव मन्दिर, राम-जानकी मन्दिर हैं। साथ ही दो वट-वृक्ष आलिगनबद्ध हैं जो राम-भरत-मिलन, के प्रतीक के रूप में विद्यमान हैं।[२७६]

प्रयाग

भारतीय साहित्य में प्रयाग को परम पावन तीर्थ के रूप में चित्रित किया गया है। यह गगा-यमुना के सगम पर स्थित है। पुराणों के अनुसार इस तीर्थ पर प्राण त्यागने वाला व्यक्ति स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है। यहाँ एक अक्षयवट है, जिसकी रक्षा भगवान् शिव स्वय करते हैं।[२७७] अनर्घराघव में मुरारि ने अयोध्या लौटते हुए राम-लक्ष्मण के मुख से प्रयाग के माहात्म्य पर प्रकाश डाला है– "यह प्रयाग सभी तीर्थों में ऊँचा तीर्थ है, यहाँ रहने वाले ससार सागर के उस पार को भी देख सकते हैं। सचमुच प्रयाग को लोग मोक्षद्वार कहते हैं जिसके दोनों भागों में बहने वाली गगा-यमुना उसकी शोभा समृद्धि को बढाया करती हैं। यहाँ आश्चर्यजनक श्यामवटवृक्ष है जिसकी छाया में रहने वाले परम ज्योति ब्रह्म का साक्षात्कार कर पाते हैं।[२७८]

बालरामायण में इसी सन्दर्भ में राम सीता से कहते हैं–"यह श्याम नाम का वट वृक्ष है, यह शम्भु के शिर से गिरी हुई जाह्नवी है तथा इसके जल से सयुक्त यमुना हैं, इनकी वन्दना करो, क्योंकि यह स्वर्ग का साधक प्रयाग तीर्थ है।"[२७९] राजा दशरथ गगा-यमुना के सगम पर प्राण त्यागने की इच्छा करते हैं। वे कैकेयी से कहते हैं- "जिस तीर्थ में सूर्यपुत्री यमुना के नीलोत्पल के समान जलों में मन्दाकिनी के कुमुद की कान्तिवाले अति स्वच्छ जल मिल गये हैं उस तीर्थ में अर्थात् प्रयाग में अपने अग के त्याग से देवता होकर इन्द्र के अर्धासन प्राप्ति के लिए मेरा निर्मल मन स्पृहा करता है।"[२८०]

प्रयाग आज भारत का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल है। इस समय यहाँ सगम, अकबर का किला, पातालपुरी मन्दिर, सरस्वतीकूप, बडे हनुमान् जी का मन्दिर, श्री आदिशकर विमानमण्डप, भरद्वाज आश्रम, भरद्वाज आश्रम पार्क, सिविल लाइन्स हनुमान मन्दिर, आनन्द भवन, विश्वविद्यालय दर्शनीय स्थल हैं।[२८१]

मिथिला

अयोध्या के समान मिथिला नगरी का भी साहित्य में विशेष महत्त्व है।

मुरारि ने इसे विदेह जनपद की राजधानी कहा है।[२८२] नाटकों में प्राय विदेह एव मिथिला को एक ही कहा गया है। यह सीता की जन्मस्थली है। यहॉ शिवधनु था जिसे तोडकर राम ने सीता से विवाह किया था।[२८३] राजा जनक यहॉ अधिपति हैं। कुन्दमाला में सीता के लिए 'मिथिलाजनप्रार्थनीया'[२८४] 'विदेहराजतनया',[२८५] 'मिथिलाधिराजतनया'[२८६] विशेषणों का प्रयोग हुआ है। बालरामायण में अयोध्या लौटते हुए राम जनक की राजधानी मिथिला का दर्शन कराते हुए कहते हैं– "सूर्य के शिष्य याज्ञवल्क्य जहॉ निवास करते हैं, निमिवशीय राजा जिसकी निरन्तर रक्षा करते हैं, जहॉ पर शकर के धनुष को तोडकर मैंने तुमसे विवाह किया, उस अपनी जन्मभूमि मिथिला मण्डल को देखो।"[२८७]

वर्तमान समय में मिथिला नगरी पूर्वी नेपाल में तराई प्रदेश में है। इसे जनकपुरी भी कहा जाता है।[२८८] यहॉ सीतामढी (सीता की जन्मभूमि), जानकी मन्दिर, राम मन्दिर, जनक मन्दिर, रंगभूमि, देवी मन्दिर आदि दर्शनीय स्थल हैं।[२८६]

वाराणसी

वाराणसी भारत की अति पवित्र प्रसिद्ध नगरी है। यह गगा के तट पर बसी है। इसका दूसरा नाम काशी है। मत्स्यपुराण के अनुसार वाराणसी महादेव का अतिशय गुह्य स्थान, श्रेष्ठ तीर्थ तथा तपोवन स्वरूप है। जो लोग उस उत्तम क्षेत्र में जाते हैं, वे पुन ससार में जन्म ग्रहण नहीं करते।[२६०] मुरारि ने अनर्घराघव में वाराणसी का महत्त्व इसी रूप में प्रतिपादित किया है। उन्होंने राम के अयोध्या लौटने के प्रसग में लक्ष्मण के मुख से कहलवाया है कि धनाधिनाथ कुबेर के स्नेहानुरोध से महादेव ने कैलास रूप अपना पुराना वासस्थान नष्ट नहीं किया, परन्तु प्रलयकाल में कपालपाणि बनने वाले शिवजी का वासस्थानभूत वाराणसी सामने दिखलाई पड रही है।[२६१] इस पर राम वाराणसी की महिमा को इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं– "यह ससार-सागर तैर करके पार करने वालों के लिए अपार है, इस वाराणसी नामक द्वीप में विश्राम करने पर ससार-सागर का पार प्राप्त किया जा सकता है।"[२६२] बालरामायणकार ने भी वाराणसी को भगवान् शिव का लीला-स्थान कहा है[२६३] तथा इसके वैशिष्ट्य को निम्नरूपेण अकित किया है- "वाणी पर सयम करने वाले, मुट्ठीभर नीवार का आहार करने वाले पुण्यात्मा जो परब्रह्म की उपासना करते हैं तथा शीघ्र सिद्धि भी प्राप्त नहीं करते हैं, यहॉ

भगवान् शिव के नित्य स्थित रहने से काशी के निवासी कामिनियों के सभोग द्वारा भी उस अक्षय-ज्योति को प्राप्त कर आनन्द का अनुभव करते हैं।"[२६४]

वाराणसी अनेकों धार्मिक केन्द्रों का अनुपम सगम है। यहाँ विश्वनाथ मन्दिर, भारतमाता मन्दिर, दुर्गा मन्दिर, सारनाथ, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, आलमगीर का मकबरा आदि दर्शनीय स्थल हैं।

शृंगवेरपुर

शृगवेरपुर का राम कथा में विशेष महत्त्व है। यह गगा के तट पर स्थित है।[२६५] प्रतिमानाटक के अनुसार राम के वनगमन के समय सुमन्त्र उन्हें रथ में बैठाकर शृगवेरपुर लाए थे। यहाँ उन्होंने अयोध्या की ओर मुख करके अपने पिता महाराज दशरथ को सन्देश देने की इच्छा की थी।[२६६] यहीं पर निषादराज गुह के साथ राम का परिचय हुआ था।[२६७] गुह ने राम से विराध नामक राक्षस के उपद्रवों के विषय में बताया था।[२६८] राम ने सीता एव लक्ष्मण के साथ गुह द्वारा उपस्थापित नाव पर चढकर गगा को पार किया था।[२६९]

प्राचीन काल से शृगवेरपुर अति महत्त्वपूर्ण तीर्थ रहा है। महाभारत के अनुसार इस तीर्थ में स्नान करने से व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है।[३००] अध्यात्मरामायण के टीकाकार के अनुसार शृङ्गी ऋषि का आश्रम होने के कारण इसे शृंगवेरपुर कहा गया है। शृङ्गी ऋषि ही ऋष्यशृङ्ग हैं।[३०१] उनकी पत्नी का नाम शान्ता था। भवभूति ने इसका उल्लेख किया है।[३०२]

वर्तमान समय में शृगवेरपुर इलाहाबाद से ३३ किमी० दूर इलाहाबाद-रायबरेली रेलमार्ग पर स्थित राम चौरा रोड स्टेशन से ५ किमी० दूर है। यह आज सिगरौर के नाम से जाना जाता है। यहाँ शृगी-शान्ता मन्दिर है। यहाँ एक मन्दिर में राम, लक्ष्मण एव सीता की पुरानी मूर्तियाँ हैं। रामचौरा ग्राम के गगा के किनारे पर स्थित एक मन्दिर में श्रीराम के चरण-चिह्न हैं।[३०३]

निष्कर्षत आलोच्य नाटकों में महाकवियों ने अपनी प्रतिभा एव व्युत्पत्ति के द्वारा रामजीवन से सम्बद्ध विभिन्न अरण्य, आश्रम, नदी, पर्वत, सरोवर तथा स्थानों का यथातथ्यपरक चित्राकन प्रस्तुत किया है। भारतीय सस्कृति के समुन्नयन में, लोक जीवन की आस्था के निर्माण में, धार्मिक महत्ता के

प्रतिपादन में, आलोच्य कवियों के प्रतिपाद्य प्राकृतिक परिवेश का महत्त्वपूर्ण योगदान है। रामजीवन के ससर्ग से जो पावन महत्ता, गौरव इन स्थानों को प्राप्त हुआ है उनको अक्षुण्ण रखते हुए अपनी-अपनी अभिव्यजना शक्ति से इन्हें काव्यात्मक रूप भी प्रदान किया गया। महाकवियों ने इनके माध्यम से अपने प्रौढ वैदुष्य एव पौराणिक ज्ञान को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। नाटक दृश्य-काव्य है जिसकी घटनाओं की अवतारणा रग-मञ्च पर की जाती है। इसलिये देशकाल एव वातावरण के प्रस्तुतीकरण के लिए आलोच्य नाटकों में प्राकृतिक स्थानों का यत्र-तत्र वर्णन दृष्टिगत होता है। दूसरे श्रीराम का अधिकाश जीवन वनों में ही व्यतीत हुआ। इसलिये भी इन नाटकों में प्रकृति वर्णन स्वाभाविक बन पडा है। सस्कृत के अन्य नाटकों की अपेक्षा इनमें प्रकृति वर्णन अधिक है।

सन्दर्भ

१ द्र , राणाप्रसाद शर्मा, पौराणिक कोष, पृ ५६

२ द्र , वही, पृ ४०

३ द्र , प्र रा , ६/५०

४ उदयास्ताचलावैतो यत्क्रोडे बाल्यवार्धके।
विस्रम्भाच्चन्द्रसूर्याभ्यामतीयते विनिर्भयम्।। म च , ७/२३

५ द्र , वही, ६/८

६ द्र , पौ को , पृ ७२

७ द्र , म च , ४/६

८ द्र , वही, अक ५, पृ २१४, २१६, २२३

९ द्र , अ रा , अक ५, पृ २६७

१० द्र , हनु ना , ५/३६

११ द्र , प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ ३०३

१२ द्र , कल्याण, तीर्थाक पृ ३०७

१३ द्र , भा पु , ४/६/८, २३, ५/१६/२७

१४ द्र , हनु ना , १/१७

१५ द्र , आ चू , अक ७, पृ २५८-५६

१६ अ रा , ७/४५-४६

१७ द्र , म च , ७/२४

१८ द्र , कल्याण, तीर्थाक, पृ ४०

१६ द्र , भा पु ५/२०/१६

२० द्र., पौ को , पृ १३८

२१ द्र , अभि , १/२४

२२ द्र , वही , ६/७

२३ प्रति , ५/१२

२४ द्र , म च , २/१७

२५ द्र , अ रा , ४/५२

२६ हनु ना , १/४२

२७ उ च , २/२६

२८ द्र , डॉ कृष्णकुमार, सस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश, पृ २५

२६ द्र , वही, पृ २६

३० द्र , म च , अक ४, पृ १६२

३१ द्र , अ रा , अक ५, पृ २६३-६४

३२ द्र , बा रा , अक ६, पृ १६५

३३ प्र रा , ७/७८

३४. द्र , कुन्द , अक ४, पृ ६१

३५ द्र , उ च , अक १, पृ ६६

३६ द्र , वही, अक ६, पृ ४६२

३७ स्वय दृष्ट

३८. द्र , पौ को , पृ २०५

३६ द्र , म च , ६/४

४० द्र , बा रा , अक ३, पृ ६६

४१ अभि , २/२६

४२ द्र , पौ को , पृ २३८, २४०, वि पु २/४/२६

४३ स व्याजहार हिमरश्मिरुचा रजन्या जीवत्यसौ द्रुहिणशैलविशल्यवल्लया।।
हनु ना , १३/१८

४४ द्र , वही, १३/२३,३१

४५ द्र , बा रा , १०/२०

४६ द्र , काव्यमीमासा (अनु केदारनाथ शर्मा), परिशिष्ट २, पृ ३०६

४७ म च , अक ५, पृ २०३

४८ द्र , उ च , अक १, पृ ७१

४९ वही, १/२६

५० मेघमालेव यश्चायमारादिव विभाव्यते।
गिरि प्रस्रवण सोऽयमत्र गोदावरी नदी।। उ च , २/२४

५१ उ च , २/२५

५२ उ च , ३/८

५३ द्र , वा रा अक १२, डॉ वडेर, रामायणकालीन भौगोलिक दिग्दर्शन पृ १६८७

५४ द्र , म भा , अनुशासन पर्व, अध्याय १९

५५ भा पु , ८/६/२२

५६ द्र , आ रा , ७/४०-४४

५७ वही, ७/४०

५८ द्र , वही, ५/१९/१६, १/८/३२, ६/३/३५

५९ द्र , कुन्द , अक २, पृ ४७, ३/६

६० द्र , म च , ५/३

६१ द्र , वही, अक ५, पृ १९४

६२ द्र , अ रा , अक ५, पृ २७५

६३ द्र , बा रा , अक ६, पृ २०३

६४ द्र , काव्यमीमासा, परिशिष्ट २, पृ ३१०

६५ द्र , स ना भौ , पृ १८
६६ द्र , वि पु , २ २ २७
६७ द्र , उ च , अक १, पृ ८८
६८ अ रा , ७/१००
६९ प्र रा , ५/५३
७० आ चू , ६/१
७१ अ.द , अक १, पृ ८
७२ बा. रा , ७/३६
७३ द्र , वा रा , सुन्दर , १/८७-१३४
७४ द्र , वही, सुन्दर , १/१२२-१२६
७५ अ.रा , अक ७, पृ ४१०-११
७६ क्रौञ्च विमुच्य पुत्र च पितर च हिमालयम्।
प्रविश्य जलधि पक्षौ रक्षताऽनेन कि कृतम्।। अ रा , ७/२३
७७ द्र , डा वडेर–रामयणकालीन भौगोलिक परिचय (वा रा) पृ १६६५
७८ द्र ,स ना भौ , पृ २६
७९ द्र , महा , आदिपर्व, २०८/७,१०
८० द्र , म च , ५/३६
८१. द्र , अ रा , अक ४, पृ २०७
८२. हनु. ना , ३/१६
८३ द्र , बा रा , ६/४५-४६
८४ द्र , महा , वन पर्व, १०४/६, १३-१४
८५ द्र , म च , ७/१४
८६ द्र , अ रा , अक ५, पृ २६६
८७ द्र , बा अ रा , १/२८
८८ द्र , स ना भौ , पृ १४
८९ द्र , भा पु ५/१६/७
९० अ रा , ७/५४-५६

९१ द्र , आ चू , ७/२३
९२ बा रा , ४/२७
९३ द्र , अभि अक ४, पृ ८१, हनु ना ८/१, अ रा , अक ६, पृ ३३०
९४ द्र , अ रा , ६/१७
९५ द्र , वही, ७/५
९६ द्र , ऐतिहासिक नामावली, पृ ६८१
९७ द्र , प्रति , अक ५, पृ १५६-६२
९८ वही, अक ५, पृ १६२-६३
९९ वही, ५/११
१०० म च , अक ७, पृ २७
१०१ वही, अक ७, पृ ३१८
१०२ द्र , अ रा , अक ७, पृ ४१४-१७
१०३ द्र , बा रा , अक १०, पृ ३४२-३४६
१०४ द्र , कुमारसम्भव १/१-१८
१०५ अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराज ।
पूर्वापरौ तोयनिधिऽवगाह्य, स्थित पृथिव्या इव मानदण्ड ।। वही १/१
१०६ द्र , स ना भौ , पृ २००
१०७ भा पु , ७/१३/१२
१०८ द्र , म च , ५/३
१०९ वही, ७/१३
११० द्र , बा रा , अक १०, पृ ३६०
१११ द्र , स ना भौ , पृ ४२
११२ द्र , अ रा , २/२६-२७
११३ द्र , पौ को , पृ १३५
११४ द्र०, स ना ना भौ , पृ १६४
११५ द्र , वायुपुराण, ४५/१०४
११६ द्र , अ रा , ७/९९

११७ द्र , म च , अक ५, पृ २०३
११८ द्र , वही, अक ५, पृ १६६
११६ द्र , अ रा , अक ५, पृ २७४
१२० द्र , आ चू , अक १, पृ ६
१२१ दृष्ट्वातिदैन्य जनकात्मजायास्तत्रैव राम सह लक्ष्मणेन।
गोदावरीतीरसमाश्रितेषु वनेषु चक्रे निजपर्णशालाम्।। हनु ना , ३/२१
१२२ प्र रा , अक ५, पृ २६२
१२३ यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बान्धवो मे, यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।
एतानि तानि बहुकन्दरनिर्झराणि, गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि।। उ च , ३/८
१२४ द्र , कल्याण, तीर्थाक, पृ २४४-४५
१२५ वि पु , ३/१४/१८
१२६ कुन्द , ३/५
१२७ द्र , वही, ३/७
१२८ द्र , (१) स ना भौ , पृ ४३
(२) कल्याण, तीर्थाक, पृ ११०
१२६ द्र , उ च , अक २, पृ १३६
१३० द्र , वही, अक ३
१३१ द्र , डा मञ्जुला सहदेव, महर्षि वाल्मीकि एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ १२६
१३२ द्र , बा रा , १०/५६-५७
१३३ सना भौ , पृ ४५
१३४ द्र , पौ को , पृ २६३
१३५ द्र , बा रा , ६/५२, ५४-५५
१३६ या किल भगवत्यार्यावर्त्तदक्षिणापथयोर्विभागरेखा।
वही, अक ६, पृ २०२
१३७ द्र , स ना भौ , पृ ४६
१३८ द्र , पौ को , पृ १४३

१३९ द्र , आप्टे कोश, पृ ७७६

१४० सर्वदेवताभ्य प्रकृष्टतममैश्वर्य मन्दाकिन्या ।
उ च , अक ३, पृ २२६

१४१ प्रति , अक ५, पृ १६२

१४२ द्र , कुन्द , अक १, पृ १० तथा अक ६, पृ १६४

१४३ वही, १/२२

१४४ वही, १/४०

१४५ उ च , १/२३

१४६ द्र , उ च , अक ३, विष्कम्भक

१४७ भागीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामप्यदृश्यासि सवृत्ता।
वही, अक ३, पृ २२०

१४८ अ रा , ७/११९

१४९ वही, ७/१२६

१५० वही, ७/११७

१५१ द्र , पौ को , पृ १४३

१५२ द्र भा पु , १०/७०/४४

१५३ ततो गिरिवरश्रेष्ठे चित्रकूटे विशाम्पते।
मन्दाकिनीं समासाद्य सर्वपापप्रणाशिनीम्। महा वन , ८५/५८

१५४ एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमे ।। रघु. १३/४८

१५५ द्र , म च., अक ४, पृ १६२

१५६ अय तु चित्रकूटवर्त्मनि मन्दाकिनीविहारे सीतादेवीमुद्दिश्य ।
उ च , अक ६, पृ ४६१

१५७ स्वय दृष्ट

१५८ द्र , उ च , अक ३, पृ १६६

१५९ द्र , स ना भौ , पृ ५१

१६० द्र , पो को , पृ ४३६

१६१ अ रा., ७/११६

१६२ द्र , बा रा , १०/८५

१६३ एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पति कालिन्दीतटे वट श्यामो नाम। उ च , अक १, पृ ६८

१६४ उ च , अक १/५०

१६५. द्र , बा रा , अक ६, पृ १६५

१६६ द्र , महा आदि , १६६/१६-२१

१६७ अ रा , ७/१३०

१६८ य एष दृश्यते सरयूसरित स्रोतसा परिक्षिप्तप्राकारो धरणितलैकदेश सा त्वियमयोध्या। बा रा , अक ६, पृ १८०

१६९ द्र , स ना भौ , पृ ५५

१७०. द्र , पौ को , पृ २८७

१७१ द्र , म च , अक ५, पृ २२३

१७२ एतास्ता पम्पापर्यन्तभूमय यासु बहो कालादनुभूयमानान्यप्यभिज्ञानानि बलाच्चक्षुराकर्षन्ति। म च , अक ७, पृ ३१०

१७३ द्र , उ च , अक १, पृ ८४

१७४. द्र., आ च , ६/९

१७५ द्र., प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृ ३०३

१७६ द्र , कल्याण, तीर्थांक, पृ ३०८ तथा अयोध्या से रामेश्वरम् पृ १८

१७७. द्र , बा रा , अक १०, पृ ३४६-४७

१७८ द्र , पौ को , पृ ४१६-१७

१७९. द्र., कल्याण, तीर्थांक, पृ ३९-४० तथा स ना भौ , पृ ३६

१८०. द्र., उ च , अक २, पृ १६६

१८१ द्र , आ चू , अक ३, पृ ७५

१८२ प्रति , ५/२१

१८३ उ च ,१/२८

१८४ द्र , वही, अक २, पृ १५०

१८५ द्र , वही, अक २, पृ १५७

१८६ पश्यामि च जनस्थान भूतपूर्वखरालयम्। प्रत्यक्षानिव वृत्तान्तान् पूर्वाननुभवामि च।। वही, २/१७

१८७ द्र , प्रति , अक ६, पृ १८३

१८८ द्र , अ रा , अक ७, पृ ४६६

१८९ द्र , डॉ वडेर रामायणकालीन भौगोलिक दिग्दर्शन (वा रा), पृ १६८८

१९० द्र , स ना भौ , पृ ३३

१९१ द्र , पौ को , पृ २१२

१९२ उ च , २/१४, १६

१९३ वही, २/३

१९४ म च , ४/३८

१९५ द्र , वही, ४/४१-४२

१९६ द्र , वही, अक ४, पृ १४४

१९७ द्र , उ च , २/१५

१९८ द्र , आ चू , २/१३, १६

१९९ द्र , उ च , २/१३

२०० द्र , कुन्द, अक २-३, पृ ५६-५९

२०१ द्र , प्रति , अक ५, पृ १६३

२०२ द्र , कुन्द , ४/३, ५

२०३ वही, ४/६, ७ एव ९

२०४ वही, ४/४, ८ एव १०

२०५ द्र , कल्याण, तीर्थाक, पृ ११०-११

२०६ द्र., म च , अक ५, पृ १९८-२०३

२०७ द्र , अ रा , अक ५, पृ २६७-२७८

२०८ द्र , आ चू , द्वितीय अक

२०९ द्र , हनु ना , तृतीय-चतुर्थ अक

२१० वही, ३/२१-२२

२११ द्र , उ च , अक १, पृ ७५

२१२ द्र , वही, अक २, पृ १८०

२१३ द्र , वही, अक २, १८४-८६

२१४ द्र , कल्याण, तीर्थांक, पृ २४४/४५

२१५ द्र , म च , अक ७, पृ ३०६

२१६ द्र , पौ को , पृ ८

२१७ द्र , बा रा , अक १०, पृ ३५४-५५

२१८ वही, १०/६१

२१९ द्र., वही, अक १०, पृ ५७-५८

२२० द्र , उ.च , अक २, पृ १३६

२२१ द्र , स ना भौ , पृ १५४-५५

२२२ द्र , पौ को , पृ ३७१

२२३ द्र , बा रा , अयोध्या , सर्ग ५४

२२४ द्र , उ च , अक १, पृ ६८

२२५ स्वय दृष्ट

२२६ द्र , म च , अक ५, पृ २१२-२३

२२७ द्र , अ रा , अक ४, पृ २०४, अक ५, पृ २६२

२२८ द्र , उ च , अक १, पृ ८०

२२९ द्र , प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृ २५२

२३० द्र , कल्याण, तीर्थांक, पृ ३०७

२३१ द्र , कुन्द , प्रथम अक

२३२ द्र , वही, अक २, पृ ४३

२३३ द्र , वही, अक २, पृ ४५

२३४ द्र , वही, अक २, पृ ५६-५७

२३५ द्र , उ च , अक २, पृ १३०

२३६ द्र ,वा रा , बाल सर्ग २

२३७ द्र., वही, अयोध्या, सर्ग ५६

२३८ प्रययौ चित्रकूटाद्रि वाल्मीकेर्यत्र चाश्रम ।
गत्वा रामोऽथ वाल्मीकेराश्रम ऋषिसकुलम्।।
अध्यात्मरामायण, अयोध्या ६/४३

२३९ द्र , डॉ मञ्जुला सहदेव, महर्षि वाल्मीकि एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ १२६-२७

२४० स्वय दृष्ट

२४१ द्र , महर्षि वाल्मीकि एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ १०६-११५

२४२ द्र , म च , अक १, पृ १३

२४३ द्र , वा रा , बाल , सर्ग २१

२४४ द्र , बा रा अक ३, पृ ६२

२४५ द्र , म च , अक १, पृ ३६-३७

२४६ द्र , अ रा , २/१४-२३

२४७ द्र , अयोध्या से रामेश्वरम्, पृ ५

२४८ द्र , वा रा , अरण्य सर्ग ५

२४९ द्र, म च , ५/८-९

२५० द्र , क-कल्याण, तीर्थांक, पृ १२३
ख - स ना भौ , पृ १६७

२५१ अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका ।। अग्नि पु , १०९/२४

२५२ द्र , वा रा , बालकाण्ड, पञ्चम सर्ग

२५३ अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्।। वही, बाल ५/६

२५४ द्र , कुन्द अक १, पृ २५, म च , अक ७, पृ ३०५

२५५ द्र , बा रा अक ६ पृ १८०

२५६ सोपस्नेहतया वृक्षाणामभित खल्वयोध्यया भवितव्यम्। प्रति , अक १, पृ. ९०

२५७ द्र , अ रा , ७/१४७

२५८ द्र , कुन्द , अक ५, पृ १५२, म च , अक ४, पृ. १९१, आ चू , अक १, पृ २१

२५६ स्वय दृष्ट

२६० अस्ति किल किष्किन्धा नाम वनौकसा निवास। प्रति, अक ६, पृ १८४

२६१ द्र, अभि, प्रथम अक

२६२ द्र, म च, अक ५, पृ २३५-२४३

२६३ द्र, वही, अक ६, पृ २४५

२६४ द्र, अ रा, अक २, पृ ६५, अक ४, पृ २०४, अक ५, पृ ३०७, ३१८, अक ६, पृ ३२६

२६५ क- द्र, कल्याण, तीर्थाक, पृ ३०५

ख - डॉ कृष्णनारायण पाण्डेय, अयोध्या से रामेश्वरम्, पृ १८

२६६ द्र, प्रति, अक १, पृ २८

२६७ द्र, कुन्द, अक १, पृ १५

२६८ तदिद रघुसिहाना सिहासनमलङ्कुरु।
राजन्वन्त प्रतन्वन्तु मुदमुत्तरकोशला ।। अ रा ७/१४७

२६९ द्र, आ चू, ३/५

२७० बा रा, अक ६, पृ २११, १६५

२७१. द्र, स ना भौ, पृ ७७

२७२ द्र, काव्यमीमासा, परिशिष्ट-२, पृ २६७

२७३. द्र., म च, अक ४, पृ १८८

२७४. द्र., अ रा, अक ५, पृ २६५

२७५. भ्रातु शोकाज्जटावानजिनवृततनु पालयामास नन्दिग्रामे तिष्ठन्नयोध्या रघुपतिपुनरागामिभोगाय वीर ।। हनु ना, ३/११

२७६. स्वय दृष्ट

२७७ द्र, म पु, अध्याय १०४-१०७

२७८ प्रयाग सर्वतीर्थेभ्यस्तीमुच्चैस्तरामयम्। ससाराब्धे पर पारमिहस्थैरवलोक्यते।।
सत्यमेव प्रयागोऽय मोक्षद्वारमुदीर्यते। देव्यौ यमभितो गगायमुने वहत श्रियम्।।
श्यामो नाम वट सोऽयमेतस्याद्भुतकर्मण। छायामप्यधिवास्तव्यै पर ज्योतिनिर्षिव्यते।।
अ-रा, ७/१२७-२६

२७९ बा रा., १०/६१

२८० वही, ६/७२

२८१ स्वय दृष्ट

२८२ विदेहेषु मिथिला नाम नगरी । अ रा , अक २, पृ १२५

२८३ द्र , वही, अक २-३, पृ १२५-१२७, उ च , अक १, पृ ५३, बा रा , अक ३, पृ ६५, अक ४, पृ १२०

२८४ कुन्द , अक २, पृ ४७

२८५ वही, अक ६, पृ १८७

२८६ वही, अक ६, पृ १६२

२८७ बा रा , १०/६३

२८८ द्र , स ना भौ , पृ १४०

२८६ क-द्र अयोध्या से रामेश्वरम्, पृ ८-६
ख - द्र , कल्याण, तीर्थांक, पृ १५१-५२

२६० मत्स्यपुराण, १८४/२

२६१ अ रा , ७/१२०

२६२ प्लवमानैरपारोऽय जनै ससारसागर ।
द्वीपे वाराणसीनाम्नि विश्राम्तैरिह तीर्यते। अ रा , ७/१२१

२६३ इयमितो भगवतो भर्गस्य केलिवासो वाराणसी।
बा रा , अक १०, पृ ३६६

२६४ वही, १०/६२

२६५ द्र , अ रा , अक ५, पृ २६१

२६६ द्र , प्रति , अक २, पृ ७७

२६७ इगुदीपादप सोऽय शृगवेरपुरे पुरा।
निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत्समागम ।। उ च , १/२१

२६८ द्र , म च., अक ४, पृ १६२

२६६ द्र , अ.रा अक ५, पृ २६१-६२

३०० ततो गच्छेत् राजेन्द्र शृगवेरपुर महत्। यत्र तीर्थे महाराज रामो दाशरथि पुरा।। तस्मिन् तीर्थे महाबाहो स्नात्वा पापै विमुच्यते।। महा- वन , ८५/६५-६६

३०१. द्र , शृंङ्गवेरपुरम् पृ १२ तथा चित्रकूट की रोमाञ्चकारी यात्रा, पृ. १८

३०२ द्र , उ च., १/४, अक १, पृ. ३३, अक ४, पृ ३०१

३०३ क - शृङ्गवेरपुरम्, पृ. १६, ख - सस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश, पृ १४४, ग - अयोध्या से रामेश्वरम्, पृ ६

उपसंहार

सस्कृत वाङ्मय में 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग बहुत ही व्यापक अर्थ में द्रष्टव्य है। शब्दकोषकारों ने साहित्य में उपलब्ध प्रकृति शब्द के विषयानुकूल स्वभाव राजा-अमात्यादि राज्य के सविधायी सात तत्त्व, पुरवासी जन, स्वरूपावस्था, त्रिगुणात्मिका प्रकृति, परमात्मा, पञ्चभूत कारण, शिल्पी, योनि, जन्तु, नैसर्गिक स्वभाव, रूप, आकृति, वश-परम्परा, मूल स्रोत, स्त्री, माता, चराचर-ससार, छन्द विशेष का नाम, प्रत्यय से पूर्व धातु एव नाम आदि अनेक अर्थ किए हैं। परन्तु आज जब किसी नाटक-काव्य आदि में प्रकृति के अध्ययन पर विचार होता है तो प्रकृति का अर्थ–पर्वत, नदी, वन, सूर्य, चन्द्र, प्रात , साय, रात्रि, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि ग्रहण किया जाता है। हिन्दी के आधुनिक कवियों–मैथिलीशरण गुप्त, जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त तथा आलोचकों–प रामचन्द्र शुक्ल, प. हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ने प्रकृति शब्द का यही अर्थ ग्रहण किया है।

दृश्यमान प्रकृति पर्वत-वन आदि का परमात्मा एव मानव से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राकृतिक पदार्थ आविर्भूत हुए हैं तथा वह स्वय अपने विविध रूप धारण कर इस प्रकृति का आश्रय ग्रहण करता है। ब्रह्मा का रूप धारण कर कमल को अपना निवास बनाता है। विष्णुरूप में रहता हुआ जल (क्षीरसागर) में शयन करता है तथा शिव रूप को अगीकार कर कैलास पर्वत की शोभा बढाता है। वह ब्रह्म अपने सभी रूपों में प्रकृति के उपादानों को ग्रहण करता है।

मानव प्रकृति को चिर सहचरी के रूप में प्राप्त करता है। जननी की गोद से अवतरित हुआ मानव प्रकृति के अक में आश्रय ग्रहण करता है। जननी उसकी जन्मदात्री माँ है तो प्रकृति उसकी पालिका एव पोषिका है। प्रकृति ने प्रत्येक क्षेत्र में मानव के विकास में अपना योगदान दिया है। जीवन को समुचित रूप से चलाने के लिये मानव ने जिन चार-आश्रमों की व्यवस्था की है, उनमें प्रकृति का सामीप्य सहज ही उपलब्ध रहता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में जब मानव गुरुजनों के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिये जाता था, तो वहाँ सर्वत्र प्रकृति का साम्राज्य होता था क्योंकि गुरुओं के शिक्षा केंद्र पर्वत, वन

एव नदी आदि से सुरम्य प्राकृतिक वातावरण के मध्य होते थे। अन्य आश्रमों में भी प्रकृति मानव को सदा सुख, समृद्धि एव शान्ति प्रदान करती थी।

मानव की मूल-प्रकृति आध्यात्मिक है जिसे उदद्दीप्त एव विकसित करने में प्रकृति की विशेष भूमिका रहती है। भारतीय मनीषी-ऋषियों की चिन्तन शक्ति का विकास पर्वतों की कन्दराओं एव नदियों के सगम पर ही हुआ है। उन्होंने प्रकृति के पदार्थो से ही योग की शिक्षा प्राप्त की है। आज मानव प्रकृति से दूर भाग रहा है। वह प्रकृति को मात्र भोग के साधन जुटाने की वस्तु समझ बैठा है। परन्तु जब भोग-विलास में डूबा हुआ मानव अपने को शारीरिक एव मानसिक दोनों रूपों में अस्वस्थ अनुभव करता है तो वह पर्वत-नदी आदि की शरण लेता है और ये प्राकृतिक उपादान उसे आत्मिक सुख एव शान्ति प्रदान करते हैं।

कवित्व-शक्तिमय मानव (कवि) का मन प्राकृतिक पदार्थो की ओर अनायास ही आकृष्ट होता है तथा उसमें निमज्जित हो जाता है। वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से प्रकृति के प्रत्येक दृष्य को बडी गहराई तक देखता है तथा प्रतिभा का आश्रय प्राप्त कर उसे शब्दों का आकार देता है। यही कारण है कि वैदिक वाड्मय से लेकर आज तक का सम्पूर्ण साहित्य प्राकृतिक उपादानों के हृदयस्पर्शी चित्रण से परिव्याप्त है। ऋषियों ने वेदों में यद्यपि अग्नि, वरुण, मरुत, सूर्य, उषा, सोम, पर्जन्य, सरित, रात्रि आदि प्राकृतिक पदार्थो को देवत्व प्रदान कर उनकी स्तुति की है तथापि प्राकृतिक दृश्य काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से अद्भुत एव रोचक हैं। उपनिषदों में भी प्रकृति ने अपना स्थान बनाया है। इनमें मुख्यत दार्शनिक विषयों को अधिक सरल, सरस तथा स्पष्ट करने के लिये प्रकृति को उपमान के रूप में उद्धृत किया गया है।

आदिकाव्य रामायण की रचना का प्रेरणा-बिन्दु महर्षि वाल्मीकि को प्रकृति के मध्य घटित एक कारुणिक प्राकृतिक दृश्य के रूप में प्राप्त होता है। उनके मुख से सहज ही व्याध को शाप देने के रूप में अनुष्टुप् छन्दोबद्ध वाणी प्रस्फुटित होती है और ब्रह्मा जी प्रकट होकर उन्हें 'रामायण' की रचना का निवेदन करते हैं। रामायण में प्रकृति सर्वत्र द्रष्टव्य है। रामायण कथा के अनेक प्रसग प्रकृति से प्रत्यक्ष जुडे हैं। अयोध्याकाड में राम के वनगमन प्रसग से लेकर अरण्यकाण्ड एव किष्किन्धाकाण्ड तक तो प्रकृति की कथा विस्तार में मुख्य भूमिका है। इसमें चित्रकूट, मन्दाकिनी नदी, सन्ध्या, हेमन्त ऋतु, वर्षा ऋतु, शरद्ऋतु, पम्पा सरोवर, चन्द्रोदय आदि का वर्णन बहुत ही

मनोज्ञ है। रामायण की अपेक्षा महाभारत कथा-बहुल ग्रन्थ है, अत इसमें प्रकृति चित्रण को कम स्थान मिला है। यहा प्रकृति का वर्णन किसी घटना-विशेष अथवा मार्ग आदि का सकेत करने के लिये आया है। पुराण साहित्य में प्रकृति को मुख्यत उपमान के रूप में स्थान मिला है। व्यास जी ने किसी पात्र के चरित्र की उत्कृष्टता को बताने अथवा उपदेश वचन में प्राकृतिक उपमानों का आश्रय लिया है।

परवर्ती सस्कृत साहित्य में महाकाव्य, गद्य-काव्य, नाटक, गीतिकाव्य आदि सभी विधाओं में कवियों ने जो भी काव्य रचना प्रस्तुत की है उसमें प्रकृति को उन्होंने समुचित स्थान दिया है। कोई भी कवि प्रकृति की उपेक्षा नहीं कर सकता है। महाकवि कालिदास एव भवभूति ने प्रकृति में मानवीय भावनाओं को अपनी कवि-दृष्टि से देखा है, अनुभव किया है तथा अपने काव्य में उसे एक पात्र की भूमिका दी है।

सस्कृत आचार्यो ने साहित्य (काव्य-नाटक) आदि में कवियों के प्रकृति प्रेम को देखकर सम्भवत काव्यादि में प्रकृति वर्णन को आवश्यक माना है। इसके अतिरिक्त कवि-समय, कवि शिक्षा शकुन स्वप्न आदि में प्रकृति की महत्ता को स्वीकार किया है। आधुनिक आलोचकों ने तो प्रकृति रस की कल्पना तक कर डाली है।

भारतीय सस्कृति में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम समवाय सम्बन्ध से व्याप्त हैं। भारत-भू पर जन्मे प्रत्येक मानव का मन सहज ही राममय हो जाता है। राम को आत्मसात् कर डाकू रत्नाकर आदिकवि वाल्मीकि के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने भगवान् राम के चरित को आधार मानकर रामायण ग्रन्थ की रचना की जो आदिकाव्य माना जाता है। परवर्ती कवि भास, कालिदास, भवभूति आदि ने राम के चरित को आधार बनाकर शताधिक ग्रन्थों की रचना की है। सस्कृत साहित्य की सभी विधाओं–महाकाव्य, खण्डकाव्य, चम्पूकाव्य, नाटक, गद्यकाव्य, स्तोत्र आदि में रामचरित को भरपूर स्थान मिला है। यहा प्रस्तुत पुस्तकमें सगृहीत राम-परम्परा के नाटकों का परिचय द्रष्टव्य है–

भास सस्कृत-साहित्य के प्रथम नाटककार माने जाते हैं। इनके तेरह नाटक उपलब्ध हैं जिनमें अभिषेकनाटक और प्रतिमानाटक रामकथा पर आश्रित हैं। अभिषेकनाटक में भास ने वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से लेकर लकाकाण्ड के उत्तरार्द्ध (सीता-हरण के पश्चात् राम-सुग्रीव मित्रता

से लेकर राम के राज्याभिषेक) तक की कथा को छ अकों में उपनिबद्ध किया है। इस नाटक में सुग्रीव एव राम का अभिषेक होने से इसका 'अभिषेकनाटक' नाम सर्वथा उचित ही है। नाटककार ने समुद्र-लघन, जटायु-राम-मिलन, बाली-वध आदि प्रसगों को कुछ परिवर्तन के साथ समायोजित किया है। प्रतिमानाटक में रामायण की सम्पूर्ण कथा को कुछ परिवर्तन और मौलिकता के साथ बहुत ही सक्षिप्त रूप में सात अकों में उपनिबद्ध किया गया है। नाटक का नामकरण अयोध्या के बाहर-बनाए गये प्रतिमागृह पर आधारित है।

भास के पश्चात् दिङ्नाग कवि आते हैं। जिन्होंने रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा को अपने कुन्दमालानाटक में छ अकों में उपनिबद्ध किया है।

इसमें कुछ मौलिक कथा-सन्दर्भ में भी हैं। यथा वाल्मीकि ऋषि के साथ जाते हुये सीता का गगा जी को कुन्द-पुष्पों की माला को उपहार रूप में देने का निवेदन तथा कुन्दमाला को देख राम का उसके प्रति आकर्षण। ये सन्दर्भ नाटक के केन्द्र-बिन्दु हैं। इन्हीं के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है।

रामचरित लेखन परम्परा के कवियों में महाकवि भवभूति का नाम श्रेष्ठ कवि के रूप में माना जाता है। इनके महावीरचरित एव उत्तररामचरित नाटक रामकथा पर आश्रित हैं। महावीरचरित में रामायण की सम्पूर्ण कथा सात अकों में समाविष्ट है। इसमें श्रीराम का महावीर स्वरूप चित्रित होने से नाटक का नामकरण सार्थक है। भवभूति ने मूलकथा में कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन किये हैं जिससे उन्होंने जहा एक ओर कैकेयी के चरित्र की रक्षा की है वहीं नाटक के नायक राम के व्यक्तित्व को भी उनके महावीर रूप के अनुकूल अकित किया है। उत्तररामचरित में रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा (राम के लका-विजय के बाद का चरित) को सात अकों में प्रस्तुत किया है। यह नाटक भवभूति की उत्कृष्ट कृति मानी जाती है। इसमें कवि ने करुण रस को एकमात्र रस के रूप में स्थापित किया है तथा उस परम्परा को तोड़ा है जिसके अनुसार नाटक का प्रधान-रस वीर अथवा शृगार माना गया है। प्रकृति का मानवीकरण नाटक की प्रमुख विशेषता है।

महाकवि मुरारि ने अनर्घराघव में रामायण-कथा को कुछ नवीनता के साथ प्रस्तुत किया है। इस नाटक में महावीरचरित का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। मुरारि ने रामायण की कथा में जो परिवर्तन किये हैं उनमें भी महावीरचरित से साम्य देखा जा सकता है। सप्तम अक में नाटककार ने

महाकाव्य के समान विविध नगरों, पर्वतों नदियों का चित्रण कर डाला है। नाटक में नाटकीय कला की अपेक्षा पाण्डित्य का प्राधान्य है। महाकवि शक्तिभद्र ने आश्चर्यचूडामणि नाटक में रामायण के अरण्यकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की प्रमुख घटनाओं को सात अकों में उपनिबद्ध किया है। इस नाटक में सीताजी की चूडामणि के स्पर्श से रावण के कपटवेष का भेद खुल जाता है जिसके आधार पर नाटक का शीर्षक आश्चर्यचूडामणि अनुकूल है। नाटक में अद्‌भुत घटनाओं का प्राचुर्य होने से इसका प्रधान रस अद्‌भुत प्रतीत होता है।

हनुमान् कवि कृत हनुमन्नाटक रामायण की कथा पर आश्रित १४ अकों का महानाटक है। इसमें कवि ने कुछ कथा प्रसगों का परिवर्तन भी किया है। घटनाओं के वर्णन में मौलिकता है। इसमे श्रीराम को साक्षात् नारायण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि नाटक में हनुमान जी का उत्कर्ष व्यक्त किया गया है इसलिये इसका नाम हनुमन्नाटक है। इस नाटक की अन्य विशेषता है कि इसमें गद्य की अपेक्षा पद्य को अधिक स्थान मिला है। नाट्योचित सवाद रचित बालरामायण भी एक महानाटक है। मूल कथा में कुछ मौलिक कथा-प्रसग द्रष्टव्य हैं, जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण माया-दशरथ एव माया-कैकेयी का प्रसग है, जिसके आधार पर कवि ने कैकेयी पर लगे पारम्परिक कलक को धोने का सफल प्रयास किया है। नाटक में पात्रों की बहुलता है। वीर एव अद्‌भुत रस की विशेष योजना है।

महाकवि जयदेव ने रामकथा को उपजीव्य बनाकर प्रसन्नराघव की रचना की है। इस नाटक में कवि ने रामायण की सीता स्वयवर से लेकर राम द्वारा रावण का वध कर अयोध्या लौटने तक की कथा को सात अकों में कुछ नवीन उद्‌भावनओं के साथ उपनिबद्ध किया है। पचम अक में गंगा-यमुना आदि नदियों के वार्तालाप एव षष्ठ अंक में इन्द्रजाल की घटना के सयोजन से अनेक कथा-प्रसगों का वर्णन हुआ है जो कवि का मौलिक चिन्तन है। प्रसन्नराघव के पश्चात् महादेवकृत अद्‌भुतदर्पण नाटक का नाम उल्लेखनीय है। यह अद्‌भुत घटनाओं से परिपूर्ण १० अकों का विचित्र महानाटक है। नाटक का नामकरण नाटक के विशेष कथा-प्रसग के आधार पर हुआ है। रावण का श्वसुर मय उसे उपहार रूप में एक अद्‌भुत दर्पण देता है जिसमें तीन योजन के घेरे में होने वाली सभी क्रियाओं को प्रतिबिम्बित देखा जा सकता था। घटनाओं का बाहुल्य है। अगीरस के रूप

में अद्‌भुत रस आस्वाद्य है।

लक्ष्मणसूरिकृत पौलस्त्यवध छ अकों का नाटक है। इसमें कवि ने विराध की मृत्यु के बाद ही रामायण की कथा को बिना किसी परिवर्तन के प्रस्तुत किया है। छठे अक में उपरूपक का सयोजन नवीन कल्पना है।

विश्वेश्वरदयालु विरचित प्रसन्नहनुमन्नाटक में पाच अक हैं। इस नाटक में राम-सुग्रीव मित्रता से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा को कुछ नवीन कल्पनाओं के साथ सघटित किया गया है। यथा राम-सुग्रीव मित्रता के प्रसग में दिखलाया गया है कि हनुमान् तथा सुग्रीव को राम की दिव्यता का पहले से ही ज्ञान है। वे स्वय राम से मित्रता के इच्छुक होकर उनके पास जाते हैं। तृतीय अक में हनुमान् जी के माध्यम से सीता का चूडामणि के साथ एक लम्बा पत्र भेजना पूर्णत नवीन कल्पना है।

उपर्युक्त सभी रामाश्रित नाटकों में उनके रचयिताओं ने प्रकृति का सर्वथा विषयानुकूल सरस वर्णन किया है। नाटककारों ने प्रकृति के आलम्बन, उद्‌दीपन एव मानवीय भावमय-सभी रूपों को प्रस्तुत कर अपने प्रतिभा-कौशल का परिचय दिया है।

श्रीराम के चरित का चित्रण करते हुये नाटककारों को प्रकृति का उन्मुक्त हृदय से वर्णन करने का अवसर सहज ही प्राप्त हुआ है। राम की लीलाओं का कार्यक्षेत्र प्रकृति का विशाल प्रागण रहा है। उनकी जीवनधारा प्रकृति के स्वच्छन्द परिवेश में प्रवाहित हुई है। राम धर्म-रक्षण, सज्जन-परित्राण दुष्ट-दमन के सकल्प का निर्वाह विशेषत प्राकृतिक स्थलों पर करते हुये देखे जाते हैं। नाटककार जब राम की लीलाओं का चित्रांकन करता है तो उसका हृदय पार्श्ववर्ती प्राकृतिक दृश्यों की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता और उसकी प्रतिभा अनायास ही उन दृश्यों को सहृदय के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु तत्पर हो जाती है। सभी आलोच्य नाटकों का प्रकृति वर्णन इसका प्रमाण है।

प्रथम नाटककार महाकवि भास एव तत्परवर्ती दिङ्नाग के नाटकों में प्रकृति का जो आलम्बन रूप में वर्णन मिलता है वह विषय एव भाव की दृष्टि से प्रभावोत्पादक, हृदयस्पर्शी तथा सूक्ष्म है। इनका प्रकृति वर्णन कथा की गति को शिथिल नहीं करता, अपितु उसमें भाव-सौन्दर्य का पुट प्रदान करता है। नाटकीयता को सशक्त बनाता है। महाकवि भवभूति और उनके उत्तरवर्ती कवियों ने रामकथा के साथ जहा भी प्रकृति का दर्शन किया, वहीं उसके वर्णन में प्रतिभा प्रदर्शन करने का अवसर नहीं छोडा, जिससे कहीं-कहीं

नाटक की नाटकीयता को भी आघात लगा है। मुरारि, जयदेव, राजशेखर आदि मध्यकालीन कवियों ने नाट्यशास्त्रीय सीमा का उल्लघन कर अपने नाटकों में प्रकृति के विविध अगों—सूर्योदय, सूर्यास्त, सायकाल, रात्रि, चन्द्रोदय, पर्वत, नदी आदि का महाकाव्य शैली में वर्णन किया है। कहीं-कहीं एक ही विषय को १५-१५ श्लोकों में वर्णित किया है। उनकी इस वर्णन-तृष्णा ने नाटक के कथा-प्रवाह में अवरोध प्रदान किया है। आधुनिक कवियों में लक्ष्मणसूरि, विश्वेश्वरदयालु ने नाट्य नियम के अनुरूप ही प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया है।

प्रकृति में मानवीय भावों को उद्दीप्त करने की नैसर्गिक क्षमता है। कविजनों ने इस तथ्य को अपने हृदय से अनुभव किया है। प्राकृतिक वातावरण ने सदा कवि की शक्ति को स्फूर्ति दी है। कवि अपनी रचनाओं में समागत पात्रों को जब प्रकृति के सान्निध्य में देखता है तो वह पात्रों के मनोगत भावों में सचरण पाता है तथा उसे अपने रचना कौशल से तदनुरूप ही प्रस्तुत करता है। आलोच्य नाटकों में ऐसे अनेक कथा-प्रसग हैं जहा प्राकृतिक दृश्य नाटक के पात्रों के जीवन को प्रभावित करते हैं। मन को उद्वेलित करते हैं तथा यथावसर शान्ति प्रदान करते हैं। नाटककारों ने उन सब स्थलों को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। राम एव सीता की सयोग-वियोगावस्था में राम के हृदय को प्रकृति ने उनकी सेविका एव सहचरी बनाकर जिस रूप में उद्वेलित किया है उससे सामान्य पाठक भी भाव-विभोर हो जाता है। महाकवि मुरारि, शक्तिभद्र एव राजशेखर आदि ने सयोगावस्था में राम एव सीता के भावों को उद्दीप्त करने हेतु प्रकृति का पूर्णत अनुकूल वातावरण बनाने में सफलता प्राप्त की है। आलोच्य नाटककारों ने प्रस्तुत संवेदनात्मक प्राकृतिक चित्रों को प्रस्तुत कर जहा एक ओर अपनी अपूर्व कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है वहीं सदृश्य रसिकजनों को आत्म-विभोर करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। उद्दीपात्मक प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से भवभूति सबसे सशक्त एव प्रभावी कवि कहे जा सकते हैं।

प्रबुद्ध कवि कथा के अनुकूल पात्रों का सयोजन करता है और पात्रों के अनुरूप कथा का निर्वाह करता है। सुधीजन ग्रन्थों में अपना आदर्श पात्र ढूंढते हैं। कथा की आवश्यकता के अनुसार पात्र के चरित्र का निर्माण कवि की कवित्व शक्ति का केंद्र-बिन्दु होता है। अपने इस कार्य की सफलता में कवि को प्रकृति सहयोग देती है। प्रकृति के शत-सहस्र पदार्थ कवि के

दृष्टि-पथ में छा जाते हैं और कवि अपने पात्र के चरित्र को अधिक प्रभावशाली तथा आकर्षक बनाने के लिए प्राकृतिक उपमानों का सयोजन करता है। आलोच्य नाटकों में राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान् आदि पात्रों को भारतीय वाड्मय एव सस्कृति के अनुकूल आदर्श रूप प्रदान करने के लिये सभी कवियों ने प्रकृति के उपमानों को समाविष्ट किया है मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम एव जगत् वदनीया मा सीता के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करने में प्राकृतिक उपमानों का सग्रह कवियों की काव्य-प्रवीणता का बोधक है।

प्रकृति एव मानव का शाश्वत नैसर्गिक सम्बन्ध है। मानव का सम्पूर्ण कार्य-व्यापार प्रकृति के सान्निध्य में प्रतिफलित होता है। कवियों ने प्रकृति को मानव की सहचरी, सहायिका के रूप में देखा है और उसे मानववत् चेतन ही अनुभव किया है। आलोच्य नाटककारों ने प्रकृति को सजीव बनाने में अपने कला-नैपुण्य का पूर्ण सदुपयोग किया है। गगा, यमुना आदि नदियॉ, सम्पाति, जटायु आदि पक्षियों को पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाकवि दिड्नाग ने मानव से भी अधिक सहृदय वन के पशु-पक्षी, हरिण, हस, मोर आदि को दिखाया है, जबकि वे वन में अकेली दु खी होती हुई सीता को देखकर व्याकुल हो जाते हैं।

उत्तररामचरित के कथा-प्रवाह के प्राकृतिक पात्र राम, सीता आदि के समान अपनी स्वाभाविक एव प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह करते देखे जाते हैं। कवि ने वन में असहाय सीता की रक्षा के लिय गगा एव पृथिवी को नियुक्त किया है। वन-देवता वासन्ती की सशरीर प्रस्तुति भी अद्वितीय है। तमसा एव मुरला सीता की सहचरी हैं जो शोकाकुल सीता को प्रत्येक स्थिति में सान्त्वना देती हैं। भवभूति की कवि-दृष्टि ने प्रकृति के कोमल उपादानों में ही मानवीय भावों को नहीं देखा अपितु कठोर तत्त्वों में भी मानव-सुलभ सवदेनाओं का अनुभव किया है। शून्य जनस्थान में सीता के विरह में सन्तप्त राम के विलाप से पत्थर भी द्रवीभूत हो जाते हैं तथा वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है। अन्य कवियों—मुरारि, जयदेव आदि ने भी प्रकृति में मानवीय व्यापारों का सयोजन करने में सफलता प्राप्त की है। सम्पूर्ण नाट्य साहित्य में कालिदास के बाद भवभूति का प्रकृति को चेतनता एव सजीवता प्रदान करने में विशेष स्थान है, कहीं-कहीं तो भवभूति कालिदास से भी आगे निकल गये हैं।

भगवान् श्रीराम ने अयोध्या में अवतरित होकर भारतभू के विविध स्थलों पर अपनी लीलाए की हैं तथा उन्हें पवित्र, पावन बना दिया है। उनमें से अधिकतर प्राकृतिक प्रदेश वन, नदी, पर्वत, आश्रम, सरोवर आदि हैं। रामचरित के आधारभूत सभी ग्रन्थों में राम के जीवन से सम्बद्ध सभी प्राकृतिक स्थलों का विस्तारपूर्वक चित्रण हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थकारों ने उन सभी स्थलों का भ्रमण किया है, दर्शन किया है तथा उनके वैशिष्ट्य का अनुभव किया है। रामकथाश्रित नाटकों में भी वन-पर्वत आदि का ऐसा हृदयस्पर्शी वर्णन हुआ है कि सहृदय पाठक नाटकों को पढने का आनन्द लेने के साथ-साथ प्रसगानुकूल आए पवित्रस्थलों का दर्शन-सा करता हुआ अनुभव करता है।

नाटककारों ने नदी-पर्वत आदि का चित्राकन यद्यपि काव्यात्मक दृष्टि से किया है। कहीं-कहीं ये वर्णन अतिरञ्जित भी हो सकते हैं तथापि इन नाटकों में प्राप्त तत्तत् स्थलविषयक सामग्री भारत-भूमि के पावन धार्मिक स्थलों के अध्येताओं, समीक्षकों एव इतिहासकारों के लिये कोश का काम कर सकती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

अग्निपुराण : सम्पा श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य सरस्वती यन्त्रालय, कलकत्ता, १८८२ ई

अद्भुतदर्पण : महादेव, सम्पा भवदत्त शास्त्री, द्वितीय आवृत्ति, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, १९३८

अध्यात्मरामायण : गीता प्रेस, गोरखपुर, एकादश सस्करण, सम्वत् २०१५

अनर्घराघव : मुरारि, व्या श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम सस्करण-स २०१७

अभिज्ञानशाकुन्तल : कालिदास, सम्पा डॉ शिवराज शास्त्री, लीला कमल प्रकाशन, मेरठ, द्वितीय सस्करण-१९९१

अभिषेक नाटक : भास, सम्पा डॉ गगा सागर राय, चौखम्बा सस्कृत सस्थान, वाराणसी, प्रथम सस्करण-स. २०४४

अमरकोष : अमर सिह, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, सम्वत् १९७८

अयोध्या से रामेश्वरम् : डॉ कृष्ण नारायण पाण्डेय, अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर

अविमारक : भास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९९२ ई

आधुनिक कवि-२ : (भूमिका, पन्त) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सम्वत् २००६

आधुनिक संस्कृत नाटक १-२ : रामजी उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९९१

आर्या सप्तशती : गोविन्दाचार्य, टीका श्री विश्वेश्वर पण्डित, चौखम्बा सस्कृत सिरीज आफिस, बनारस १९२४

आश्चर्यचूडामणि : शक्तिभद्र, प रमाकान्त झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९८८।

आसन : प दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, आनन्दाश्रम, किला पारडी, सूरत।

उत्तररामचरित : भवभूति (घनश्याम टीका), सम्पा पी वी काणे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, चतुर्थ सस्करण-१९०२

उत्तररामचरित : भवभूति, टी श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, तृतीय सस्करण-१९७३

उत्तररामचरित : भवभूति, व्या श्री शेषराज शर्मा, चौखम्बा, सस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, तृतीय सस्करण १९५९

ऋक्-सूक्त संग्रह : व्या. डॉ हरिदत्त शास्त्री, भण्डा, सुभाष बाजार, मेरठ, १९७४

ऋग्वेद : वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम, अजमेर सम्वत् २०१९

ऋतुसंहार : कालिदास, व्या प लक्ष्मी प्रपन्नाचार्य, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९७७

ऐतिहासिक नामावली : विजयेन्द्र कुमार माथुर, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली १९६९ ई

कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ : प. रामचन्द्र शुक्ल, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गाधी मार्ग, लखनऊ, तृतीय सस्करण-१९७४

कल्याण-तीर्थांक : सम्पा. हनुमान्प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस गोरखपुर, १९५७

कल्याण-मत्स्यपुराणांक : गीताप्रेस गोरखपुर, १९८४-८५

कल्याण-शिक्षांक : गीता प्रेस, गोरखपुर, १९८८

कल्याण-श्रीरामांक : गीताप्रेस, गोरखपुर, १९७२

कादम्बरी : बाण, व्या डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, तृतीय संस्करण १९७४

कामायनी : जयशकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सम्वत् २०००

कालिदास और प्रकृति : डॉ पुष्पा हजेला, विवेक पब्लिकेशस, समद रोड, अलीगढ, प्रथम सस्करण १९८७

कालिदास की लालित्य-योजना : हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन लि , ८ फैज बाजार, दिल्ली-६, द्वितीय सस्करण १९७०

काव्य-प्रकाश : मम्मट, सम्पा डॉ श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, चतुर्थ सस्करण-१९७४

काव्य-मीमासा : राजशेखर, अनु पण्डित केदारनाथ शर्मा सारस्वत, विहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, द्वितीस सस्करण १९६५

काव्यादर्श : दण्डी, सम्पा प रगाचार्य शास्त्री, भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, द्वितीय सस्करण-१९७०

किरातार्जुनीय : भारवि, लक्ष्मीवेंकटेश्वर मुद्रणालय, कल्याण-मुम्बई, सवत् १९८१

कुन्दमाला · दिड्नाग, सम्पा श्री मदनमोहन शर्मा, सत्य प्रकाशन, बाजार वकीलाँ, होशियारपुर १९५५

कुन्दमाला . दिड्नाग, सम्पा प्रो सी मिश्र, खन्ना बुक डिपो, अड्डा टाडा, जालधर शहर, १९५५

कुमारसम्भव :कालिदास, व्या प प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, छठा सस्करण, १९९०

गगा-लहरी : पण्डितराज जगन्नाथ, अनु श्रीमती दर्शन देवी अग्रवाल, सूदन प्रकाशन, सहारनपुर, जवाहर पार्क, बेहट रोड, प्रथम सस्करण १९७१

गाथासप्तशती : हाल, सम्पा नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम सस्कारण, सम्वत् २०१७

गीतगोविन्दकाव्य : जयदेव, व्या प श्री केदारनाथ शर्मा, चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, पचम सस्करण-सम्वत् २०३३

गीताञ्जलि : टैगोर (अग्रेजी अनुवाद), मेक्मिलन इण्डिया लिमिटेड, मद्रास, १९८७

चन्द्रालोक : व्या श्री नन्द किशोर, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी, चतुर्थ सस्करण १९६०

चरकसंहिता :चरक, सम्पा डॉ गगासहाय पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम सस्करण, सम्वत् २०२६

चारुदत्त : भास, व्या श्री कपिलदेव गिरि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय सस्करण स २०२३

चित्रकूट की रोमांचकारी यात्रा : शकू महाराज, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम आवृत्ति १९८७

चिन्तामणि भाग १ :रामचन्द्र शुक्ल, इडियन प्रेस (पब्लिकेशस) प्राइवेट

लिमिटेड, प्रयाग, १६७५

छान्दोग्य उपनिषद् आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १६१०

जयेन्द्र योग-प्रयोग · डॉ रमेश कुमार, सम्पा डॉ रुद्रदेव त्रिपाठी, मेघ प्रकाशन, ब्रह्मपुरी, दिल्ली, प्रथम सस्करण १६८२

जानकीहरण ·कुमारदास, सम्पा श्रीकृष्ण दास, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, १६६७

झरना जयशकर प्रसाद, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, दसवीं आवृत्ति, सम्वत् २०२६

दशकुमारचरित · दण्डी, टीकाकार - श्री विश्वनाथ झा, मोतीलाल बनारसीदास, बगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

धर्मयुग : पत्रिका, वर्ष ४५, अक २२, नवम्बर (उत्तरार्ध) १६६४

नाट्यदर्पण · श्री रामचन्द्र - गुणचन्द्र, सम्पा डा देवीचन्द्र शर्मा, साहित्य भडार, सुभाष बाजार, मेरठ।

निरुक्त : यास्क, टीका छज्जूराम शास्त्री, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दरियागज, दिल्ली, प्रथम स -१६६३

नैषधीयचरित श्रीहर्ष, व्या श्री शेषराज शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय स १६८१।

पल्लव : सुमित्रानन्दन पन्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, आठवॉ सस्करण १६६७

पंचवटी श्री मैथिलीशरणगुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव झासी, सत्तरवॉ स , सम्वत् २०३४

पौराणिक कोश : सम्पा राणाप्रसाद शर्मा, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, द्वितीय स १६८६

पौलस्त्यवध : एम लक्ष्मणसूरि, भूमिका- के एस रामास्वामी, मद्रास १६१४

प्रकृति और काव्य : (सस्कृत साहित्य) डा रघुवश, नेशनल पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली, प्रथम सस्करण

प्रतिमानाटक ·भास, व्या आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, चतुर्थ स १६८६

प्रयागदर्शिका अखिलेशकुमार मिश्र, भार्गव प्रेस, बाई का बाग, इलाहाबाद, प्रथम स १९९३

प्रसन्नराघव . जयदेव, टीका डॉ रमाशकर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, प्रथम सस्करण १९७०

प्रसन्नराघव जयदेव, व्या शेषराज शर्मा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीय स सम्वत् २०२९

प्रसन्नहनुमन्नाटक . विश्वेश्वरदयालु, हरिहर यन्त्रालय, इटावा, सम्वत् २०००

प्रसाद साहित्य–प्रकृति दर्शन . डॉ एस टी अरुणाकुमारी, सजय बुक सेन्टर, गोलघर, वाराणसी, प्रथम स १९८९

बालभारत : राजशेखर, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९४९

बालरामायण ·राजशेखर, सम्पा डा गगा सागर राय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी प्रथम स १९८४

बुद्धचरित : अश्वघोष, सम्पा श्री रामचन्द्रदास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६६

बृहत् हिन्दी कोश : प कालिकाप्रसाद, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय स सम्वत् २०२०

भक्तिकाव्य में प्रकृति-चित्रण : डॉ सुखदेव, अभिनव प्रकाशन, वैस्ट सीलमपुर, दिल्ली, प्रथम स १९७४

भवभूति और उनकी नाट्य कला : डॉ अयोध्याप्रसाद सिह, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली प्रथम स. १९६९

मध्यकालीन संस्कृत नाटक . रामजी उपाध्याय, सस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर प्रथम स. १९७४

मनुस्मृति : निर्णय सागर, प्रेस, बम्बई, षष्ठ सस्करण १९२०

महर्षि वाल्मीकि एक समीक्षात्मक-अध्ययन : डॉ. (कु) मञ्जुला सहदेव, पजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, प्रथम सस्करण १९८०

महाकवि भवभूति डॉ गगासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय सस्करण १९९०

महाकवि भास : डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्रथम सस्करण १९७२

महाभारत : गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वितीय सस्करण, सम्वत् २०२३

महावीरचरित : भवभूति, व्या आचार्य रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय सस्करण सम्वत् २०२५

महावीरचरित : भवभूति, अनु रामप्रताप त्रिपाठी, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद, प्रथम स १९७३

मानक हिन्दी कोश : रामचन्द्र वर्मा, साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम सस्करण

मालतीमाधव : भवभूति, अनु राम प्रताप त्रिपाठी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम स. १९७३

मुण्डकोपनिषद् : आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली, आनन्दाश्रम, मुद्रणालय।

मृच्छकटिक : शूद्रक, सम्पा डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, तृतीय स १९७२

मेघदूत : कालिदास, व्या डॉ. देवीचन्द्र शर्मा, ज्ञान प्रकाशन, सुभाष बाजार, मेरठ, प्रथम स १९८४

मेघदूत महिमा : प्रो बी पी. भास्कर, पैरामाउण्ट पब्लिशिग हाऊस, नई दिल्ली

यजुर्वेद : नाग प्रकाशन, दिल्ली १९९४

रघुवंश : कालिदास, व्या डॉ श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ स १९९०

रत्नावली : श्रीहर्ष, सम्पा. डॉ रमाशकर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, प्रथम स १९७०

रश्मिबन्ध : सुमित्रानन्दन पन्त, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २३वॉ सस्करण- १९८४

रसमीमांसा : प रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सम्वत् २००६

रससिद्धान्त : डॉ नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिग हाऊस, २३ दरियागज, नई दिल्ली, प्रथम स १९८७

रसार्णसुधाकर : शिगभूपाल, सम्पा डॉ रेवाप्रसाद द्विवेदी, सस्कृत परिषद्, सागर, विश्वविद्यालय, सागर, १९९९

राम का स्वरूप : डा सी पी. राजगोपालन नायर, लोक भारती प्रकाशन,

इलाहाबाद, प्रथम स १९९१

रामचरितमानस : तुलसी, गीताप्रेस, गोरखपुर

रावणवध (भट्टिकाव्य) : सम्पा गोपालदत्त पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय स १९७६

वाल्मीकीयरामायण : गीताप्रेस, गोरखपुर १९९०

वाल्मीकि रामायण एवं संस्कृतनाटकों में राम : डॉ (कु) मजुला सहदेव, विमल प्रकाशन, रामनगर, गाजियाबाद, प्रथम स १९७६

वासवदत्ता : सुबन्धु व्या प शकरदेव शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९६७

विद्धशालभञ्जिका : राजशेखर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५

विष्णुपुराण : अनु श्रीमुनिलाल गुप्त, गीताप्रेस, गोरखपुर, दसवॉ स , सम्वत् २०४३

वीरवर्धमानचरित : श्री सकलकीर्त्ति, सम्पा प. हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम सस्करण १९७४

वेणीसंहार : भट्टनारायण, टीका प रामचन्द्र शुक्ल, रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण १९७१

वेदान्तसार : सदानन्द, महेशचन्द्र भारतीय, विमल प्रकाशन, रामनगर, गाजियाबाद, प्रथम स १९७८

वैदिक ऋषि : एक परिशीलन : डॉ. कपिल देव शास्त्री, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय प्रकाशन, कुरुक्षेत्र, १९७८

वैदेही-वनवास : हरिऔध, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, सवत् १९९६

शब्दकल्पद्रुम : राजा राधाकान्त बहादुर, नाग पब्लिशर्स, जवाहरनगर, दिल्ली, १९८८

शिवराजविजय : अम्बिकादत्त व्यास, व्या डॉ देवनारायण मिश्र, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, तृतीय सस्करण १९८६

शिशुपालवध :माघ, अनु श्रीरामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम स २००६

शृङ्गवेरपुरम् : डॉ दीनानाथ शुक्ल, शृगवेरपुर धाम विकास सस्थान, शृगवेरपुर

श्रीमद्भगवद्गीता . गीता प्रेस, गोरखपुर, दसवॉ सस्करण, स २०१६

श्रीमद्भागवत महापुराण : प्रथम-द्वितीय खण्ड, द्वितीय सस्करण-सम्वत् २००८

श्वेताश्वर उपनिषद् : आनन्दाश्रम ग्रन्थावली, आनन्दाश्रम मुद्रणालय

संस्कृत आलोचना : बलदेव उपाध्याय, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान, हिन्दी भवन, लखनऊ, तृतीय सस्करण-१६७८

संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश : डॉ कृष्णकुमार, मयक प्रकाशन, भूषण भवन, मण्डी बॉस, मुरादाबाद, १६८३

संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : प चन्द्रशेखर पाण्डेय, साहित्य निकेतन, कानपुर, चतुर्दश स १६८०

संस्कृत-हिन्दी-कोश : वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, द्वितीय स १६६६

साहित्यदर्पण : विश्वनाथ, व्या श्रीशालग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, सप्तम सं , १६७३

सौन्दरनन्द : अश्वघोष, सम्पा सूर्यनारायण चौधरी, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, तृतीय सस्करण, स २०२६

स्वप्नवासवदत्तम् : भास, व्या गणेशदत्त शर्मा, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, प्रथम स १६६८

हनुमन्नाटक : श्रीहनुमान्, सम्पा जगदीश मिश्र, चौखम्बा सस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम स सम्वत् २०२४

हर्षचरित : बाणभट्ट, व्या जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीय सस्करण १६७२

हलायुधकोश . सम्पा जयशकर जोशी, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, द्वितीय स १६६७

हितोपदेश . नारायण पण्डित, सम्पा नारायण राम आचार्य, निर्णय सागर मुद्रणालय, बम्बई २, दशम सस्करण १६४६

हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण : डॉ किरणकुमारी गुप्त, सरोज सर्वेक्षण, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १६६७

हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण : डॉ सन्तोषकुमार श्रीवास्तव, राज्यश्री प्रकाशन, तिलक द्वार, मथुरा, प्रथम स. १६८२

हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन : डॉ परमलाल गुप्त, रचना प्रकाशन, खुल्दाबाद, इलाहाबाद, प्रथम स १९७३

हिन्दी गद्य-साहित्य में प्रकृति चित्रण : ओम्प्रकाश सिहल, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम स १९९१

हिन्दी नाट्यशास्त्र : भरतमुनि, सम्पा श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा सस्कृत सस्थान, वाराणसी, द्वितीय स सम्वत् २०४०

हिन्दी रामकाव्य : नये सन्दर्भ : डॉ प्रमिला अवस्थी, चिन्तन प्रकाशन, मछरिया रोड, नौबस्ता, कानपुर, प्रथम स १९९३

हिन्दी रामकाव्य में स्वभावोक्ति : डॉ कौशल्या भारद्वाज, मथन पब्लिकेशस, रोहतक, प्रथम स १९८२

हिन्दू धर्मकोश . डॉ राजबली पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान, हिन्दी समिति, लखनऊ, प्रथम सस्करण १९७८

नामपदानुक्रमणी

डॉ. (श्रीमती) दुर्गेश सिंहल

जन्म : 17 अगस्त 1964

शिक्षा . एम ए सस्कृत (लब्धस्वर्णपदक)
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
पी-एच डी मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ।

सम्प्रति : अध्यापन कार्य मे रत पानीपत नगर के प्रतिष्ठित उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बाल विकास मे सस्कृत विभागाध्यक्षा।

सम्पर्कसूत्र : अग्रसेन कालोनी, पानीपत।

ISBN 81-85504-37-7

NEW ARRIVALS : सद्यःप्रकाशित ग्रन्थ

उदात्त जीवन के राजमार्ग : भावयोग, गायत्री-योगानुशासन, भारतीय वाड्मय और पराविद्या — *डॉ० शिवदास* 490/-

व्याकरणशास्त्रीय लोकन्यायरत्नाकर : नीतिवाक्य, मुहावरा, लोकोक्ति, सूक्ति, दृष्टांतादि संवलित बृहल्लोकन्याय कोश — *डॉ० भीमसिंह वेदालकार* 950/-

जीवनपर्वनाटकम् (हिन्दी अनुवाद सहित) — *डॉ० ओम्प्रकाश पाण्डेयः* 200/-

विश्ववारा संस्कृति : वैदिक मन्त्र-विमर्श और मूल देवी-देवता — *डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय* 195/-

साम्बपञ्चाशिका : वासुदेव श्रीकृष्णपुत्र श्रीसाम्बविरचित, शैवाचार्य क्षेमराजरचित वृत्ति, मूलपाठ, टिप्पणियां और हिन्दी व्याख्या — *प्रो० नीलकण्ठ गुरुटू* 300/-

अथर्ववेदीय गोपथ-ब्राह्मण : संस्कृति, समाज, धर्म और दर्शन (मूल सहित) — *डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय*

बाणभट्ट का काव्य-संसार — *डॉ० जगन्नाथ पाठक* 170/-

अप्रचलित-रूपक-प्रणेता वत्सराज की लोकप्रियता (वत्सराज के रूपकों में काव्य-तत्त्व, नाट्य-तत्त्व तथा इतिहास) — *डॉ० रामजियावन पाण्डेय* 350/-

भारतीय विचारधारा में दिक् और काल की अवधारणा : वैदिक, औपनिषदिक, पौराणिक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक — *प्रो० के के मण्डल* 250/-

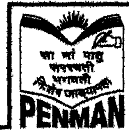
राम-परम्परा के नाटक और प्रकृति (भास, भवभूति, मुरारि, शक्तिभद्र, हनुमान्, राजशेखर, जयदेव प्रभृति नाटककार) — *डॉ० श्रीमती दुर्गेश सिंहल* 350/-

GITAGOVINDAṂ (गीतगोविन्दम्) : Sacred Profanities : A Study of Jayadeva's Gitagovında (with English Trans. & Sanskrit Text) — *Dr N.S R Ayengar* 350/-

A MODERN INTRODUCTION TO INDIAN ETHICS (Indian Moral Problems & Concepts) — *Prof (Dr) S S Barlingay* 320/-

STAVACINTĀMAṆI (स्तवचिन्तामणि) of Bhaṭṭanārāyana (Sanskrit Text with Trans. into Hindi & English) — *Ram Shankar Singh* 450/-

ŚRI HARṢEŚVARAMĀHĀTMYAṂ (श्रीहर्षेश्वरमाहात्म्यम्) The Glory of Lord Harṣeśvara, An Eminent Śiva-Dhāma of Kashmir based on Ādı-Purāna — *Prof N K. Gurtoo* 190/-



पेनमैन पब्लिशर्स
संस्कृति और साहित्य का विशिष्ट पुस्तक केन्द्र
7309/5, प्रेम नगर, शक्ति नगर
दिल्ली-110007. दूरभाष : 011-3980319